परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

❊ जन्मदिवस 19–03–1971 ❊ मुनिदीक्षा–11–05–1989 ❊ आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

हिन्दी जैनसाहित्य में कृष्ण का स्वरूप विकास

लेखक
डॉक्टर प्रीतम सिंघवी

प्रकाशक
पार्श्व प्रकाशन
अहमदाबाद-१४ (गुजरात)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

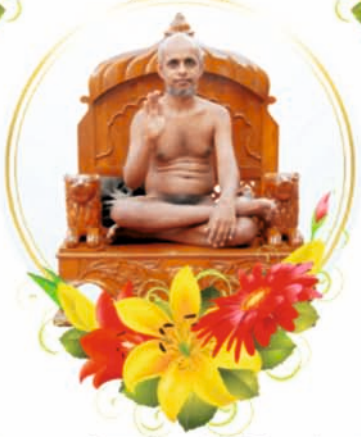

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

हिन्दी जैन साहित्य में

कृष्ण का स्वरूप-विकास

डॉ. प्रीतम सिंघवी

सम्मति

हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप विकास डॉ. (श्रीमती) प्रीतम सिंघवी द्वारा गुजरात युनिवर्सिटी की पीएच.डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबंध है । इस मौलिक एवं बोधवर्धक शोध प्रबंध में विद्वान लेखिका ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी जैन साहित्य के आधार पर वासुदेव श्रीकृष्ण के स्वरूप का गवेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है ।

डॉ. (श्रीमती) सिंघवी ने इस तथ्य को सप्रमाण सिद्ध किया है कि वैष्णव-परंपरा में जहाँ श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार माने गये है, वहाँ जैन साहित्य में उन्हें सौंदर्य, प्रेम, दयालुता, वीरता और शरणागत वत्सलता जैसे मानवोचित गुणों से मंडित 'शलाका पुरुष' के रूप में चित्रित किया गया है कहीं-कहीं उन्हें जैन तीर्थंकर का चचेरा भाई भी बताया गया हैं । जैन साहित्य में निरूपित कृष्ण अहिंसक, विनयी, क्षमाशील, शांतिदूत है । उनका रसिक और कूटनीतिज्ञ रूप जैन काव्य में स्वचित ही देखने को मिलता है ।

श्रीमती (डॉ.) सिंघवी ने प्रस्तुत शोधप्रबंध में अत्यंत तटस्थता के साथ जैन साहित्य में श्रीकृष्ण के स्वरूप-वैशिष्ट्य का अनुशीलन किया है । उनका यह शोधकार्य सर्वथा मौलिक एवं बोधवर्धक है । मुझे विश्वास है, इसके प्रकाशन से कृष्ण-काव्य के अध्ययन अनुशीलन के लिए एक नया गवाक्ष उद्घाटित होगा ।

हिन्दी भवन
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद-१४.
दिनांक- १४.१.९२

डॉ. अम्बाशंकर नागर
निर्देशक,
भारतीय भाषासांस्कृतिक केन्द्र

हिन्दी जैन साहित्य में

कृष्ण का स्वरूप-विकास

डॉ. प्रीतम सिंघवी

पार्श्व प्रकाशन : अहमदाबाद

HINDI JAIN SAHITYA MEN KRISHNA KA SVAROOP VIKAS

By

DR. PRITAM SINGHVI

प्रकाशक

बाबूभाई एच. शाह

पार्श्व प्रकाशन

निशापोल, झवेरीवाड, रिलीफरोड,

अहमदाबाद–380 001

प्रथम संस्करण : 1992

मूल्य : Rs. 100-00

मुद्रक

हिन्दुस्तान ओफसेट

२२, दूसरी मंजील, एलीसब्रीज शोपींग सेन्टर,

टाउनहोल के सामने, एलीसब्रीज,

अहमदाबाद–380 006.

चिर स्मरणीय स्व. पूज्य पिताश्री
श्री नाथुलाल जी साहब बोहरा की स्मृति में,
जिनके आशीर्वचनरूप बीज के प्रस्फुटन
का ही यह साकार फल है ।

डा. प्रीतम सिंघवी

अभिप्राय

श्रीमती प्रीतम सिंघवी ने "हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप विकास" शोध प्रबन्ध लिखा है। हिन्दी साहित्य से पूर्व जो वेद से लेकर जैन-बौद्ध साहित्य-संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश में लिखा है, उसमे कृष्ण स्वरूप का जो विकास हुआ है, उसका निरूपण करके हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण चरित्र का जो रूप मिलता है उसका विवेचन किया है। उनका यह प्रयत्न सर्वप्रथम है। ऐसा मेरे अल्पज्ञान के आधार पर कहूँ तो अनुचित नहीं होगा।

वैदिक साहित्य में विष्णु के अवतार रूप से कृष्ण का चरित निष्पन्न हुआ है जबकि जैन धर्म में अवतारवाद का कोई स्थान नहीं होने से जैन परंपरा ने अपनी दृष्टि से महापुरुषों का (शलाका पुरुषों का) विभाजन जो किया है वह इस प्रकार है-। २४ तीर्थंकर और १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रति वासुदेव सब मिलकर ६३ शलाकापुरुष कालचक्र के उत्सर्पिनी और अवसर्पिनी में होते हैं। प्रस्तुत अवसर्पिनी में जो ९ वासुदेव हुए उनमें एक श्री कृष्ण भी है।

वास्तविक परिस्थिति यह है कि जैनों ने अपने यहाँ अर्थात् जैन समाज में जो तीर्थंकर हुए उनको तो महापुरुषों में स्थान देना ही था। किन्तु समग्र समाज में भी जो महापुरुष माने गए उनकी उपेक्षा भी जैन कर नहीं सकते थे। अतएव उन्होंने कृष्ण-राम जैसे समग्र समाज को जो मान्य थे उन्हे भी अपने महापुरुषो में समाविष्ट कर दिया किन्तु वर्तमान कालचक्र में उन्हें तीर्थंकर का दरजा दिया नहीं। आगे चलकर वे भी तीर्थंकर पदवीप्राप्त कर सकेंगे ऐसी भी व्यवस्था बना दी है।

प्रस्तुत में श्रीमती सिंघवी ने कृष्ण चरित जो कि जैन मतानुसार वासुदेव कोटि में आता है, उसका विस्तार से अनेक ग्रन्थो की तुलना करके किया हैं।

विशेषकर श्री कृष्ण के जीवन के तीन पक्ष – बाल गोपाल, राजनीतिक नेता और आध्यात्मिक नेता – के विषय में हिन्दी ग्रन्थो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

उनके इस परिश्रम से, वाचक को अदश्य लाभ होगा ऐसा में मानता हूँ।

अहमदाबाद
७-१-९२

दलसुख मालवणिया
पद्म भूषण

प्राक्कथन

भारत अध्यात्म-प्रधान देश है। समय-समय पर यहाँ अनेक महापुरुष उत्पन्न हुए जिन्होंने अपने-अपने समय में विशिष्ट प्रतिष्ठा प्राप्त की। कई महापुरुषोंने तो जनमानस पर इतना गहरा प्रभाव डाला कि उन्हें ईश्वर का अवतार मान लिया गया। उनकी पूजा, भक्ति, उपासना आज भी की जाती है। पुराणों में दस एवं चौबीस अवतारों की चर्चा है। यद्यपि उनमें से सभी ने वैसी लोकश्रद्धा प्राप्त नहीं की जैसी श्रीराम और कृष्ण ने प्राप्त की।

विषय की मौलिकताः– द्वारकाधीश कृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओं को आधार बनाकर जैन साहित्यकारों ने विपुल साहित्य का, विभिन्न भारतीय भाषाओं में सृजन किया है। यह साहित्य संस्कृत, प्राकृत तथा हिन्दी भाषा में जैन साहित्यकारों और मुनियों ने लिखा है। जैनेतर समाज तथा अधिकांश जैन समाज इससे अनभिज्ञ है। बहुत सारा साहित्य हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में है, जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुए हैं। श्रीकृष्ण के ऐतिहासिक, पौराणिक तथा धार्मिक स्वरूप को हिन्दी जैन साहित्य में उद्घाटित करने के लिए स्वतंत्र रूप से अनुसंधान का अभाव-सा है। प्रस्तुत विषय को अध्ययन के लिए चयन करने का उद्देश्य प्रस्तुत साहित्य को प्रकाश में लाना तथा उसमें वर्णित कृष्ण के तीनों स्वरूपों – योगी धर्मात्मा का स्वरूप, ललित मधुर गोपाल का स्वरूप तथा वीर शलाका-पुरुष के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन करना है।

भारतीय धर्म और संस्कृति के इतिहास में कृष्ण का व्यक्तित्व विलक्षण व बहुआयामी है। वे एक ओर यदि योगेश्वर हैं तो दूसरी ओर प्रणयलीला में लीन रहनेवाले प्रेमी भी हैं। प्रखर कूटनीतिज्ञ-राजनीतिज्ञ तथा आदर्श सखा, विचारक, गृहस्थ और उपदेशक भी हैं। ऐसा कहा जाता है कि वे सोलहों कलाओं से परिपूर्ण हैं। भारतवर्ष के अधिकांश हिन्दुओं की आस्था है कि श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार थे –"*कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।*" हिन्दी के प्रमुख कवि श्री घनानन्द ने भी कहा है कि जो कर्षण के द्वारा पापों का नाश करे वही कृष्ण है। हमारे देश के धार्मिक क्षेत्र में श्रीकृष्ण अपने लोकरंजक व्यक्तित्व के कारण साहित्याकारों, कवियों एवम् जनसाधारण के कण्ठहार रहे हैं। भारतीय साहित्य की तीनों धाराओं – जैन, बौद्ध और वैदिक में, उनके जीवन के विविध रूपों की मनोहर झाँकियाँ उपलब्ध हैं।

श्रीकृष्ण शारीरिक, मानसिक, आत्मिक एवं आध्यात्मिक–सभी प्रकार की सुषमाओं से विभूषित थे। दार्शनिकों, भक्तों एवम् कवियों के अनुसार उनका शारीरिक संस्थान अत्युत्तम था और शरीर की प्रभा निर्मल इन्दीवर के समान थी। उनकी वाणी गम्भीर और मधुर थी। उनका शरीर–बल भी अप्रतिम था। वे अद्वितीय योद्धा और कुशल सेनानायक थे। इनकी मेधा विमल और बुद्धि सर्जनात्मक शक्ति से अलंकृत थी। वे महान, धीर–वीर, कर्तव्य–परायण, बुद्धिमान, नीतिवान, स्वभाव से दयालु, शरणागत–वत्सल, विनयी और तेजस्वी थे। वे कर्मयोगी थे, – निष्काम कर्मयोगी। उन्होंने अपने जीवन में सतत निष्काम कर्म को अपनाया। वही उनका जीवनसन्देश और गीता का ज्ञान बन गया। अकर्मण्यता और आलस्य को उन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया। इसके साथ ही उन्होंने कोरे भाग्यवाद को निरासित कर पुरुषार्थवाद का महत्त्व स्थापित किया।

सबसे बड़ी बात जो कृष्ण के विषय में कही जा सकती है वह यह है कि श्रीकृष्ण ने अपनी ओर से कभी किसी को नहीं सताया और न अपनी ओर से व्यर्थ ही युद्ध करके रक्तपात किया, या न कहीं किसी पर युद्ध थोपने का प्रयास किया। यहाँ तक कि आततायी जरासंध और शिशुपाल को भी प्रायश्चित्त के अनेक अवसर प्रदान किए।

जैन कृष्णचरित्र के अनुसार कृष्ण न तो कोई दिव्य पुरुष थे, न तो ईश्वर के अवतार या स्वयं भगवान, वे मानव ही थे। ईश्वर की तमाम उदात्त एवं उत्कट शक्तियाँ भी मानव–जीवन में ही अपनी सम्पूर्ण भव्यता के साथ प्रस्फुटित होती हैं तब विश्व उनके समक्ष विस्मयानन्द विमुग्ध होकर नत मस्तक होता है और सहस्र–सहस्र कण्ठों से उनका अभिवादन करता है। कृष्ण ऐसे ही असाधारण पुरुष थे। वे स्वभाव से अहिंसावादी थे। जैन ग्रन्थों में एक भी ऐसा प्रसंग नहीं आया है जिसमें श्रीकृष्ण ने शिकार खेला हो, और मांसाहार किया हो। यह उन पर उनके चचेरे भ्राता अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) का प्रभाव माना जाता है जो जैनों के २२ वें तीर्थंकर हुए।

श्रीकृष्ण के जीवन के प्रसंगों को पौराणिक साहित्य में विस्तार से आलोकित किया गया है। किन्तु बहुत से ऐसे प्रसंगों का वर्णन भी इस साहित्य में है, जिनका वर्णन बौद्ध या जैन साहित्य में नहीं हुआ है। तथापि महाभारत, हरिवंशपुराण, श्रीमद्भागवत पुराण आदि में उपलब्ध कृष्णकथा तथा जैन साहित्य में उपलब्ध कृष्णकथा पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो दोनों परम्पराओं की कथाओं के चरितनायक कृष्ण एक ही लगते हैं।

क्योंकि कंस–वध, द्वारका में राज्य–स्थापना, रुक्मिणी से विवाह, कालसंवर के प्रसंग, जरासंध–वध इत्यादि के प्रसंग दोनों में ही लगभग समान रूप में उपलब्ध हैं । दोनों में ही कृष्ण की अद्वितीय वीरता तथा पराक्रम का यशोगान हुआ है ।

दोनों विचारधाराओं के अन्तर की दृष्टि से जैन–कथा के अरिष्टनेमि विषयक प्रसंग, महाभारत में वर्णित युद्ध का स्वरूप तथा उसमें कृष्ण द्वारा गीता के तत्त्वज्ञान का उपदेश एवं श्रीमद्भागवत पुराण में वर्णित् कृष्ण गोपियों के प्रसंगों पर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है ।

साम्य और अन्तर के ये प्रसंग कृष्ण–चरित के ऐतिहासिक स्वरूप के अनुसंधान में उपयोगी हो सकते हैं । वस्तुतः द्वारकाधीश कृष्ण के ऐतिहासिक एवं पौराणिक दोनों रूपों का अध्ययन अपेक्षित है । महाभारत की कथा में कृष्ण के जिस पराक्रमपूर्ण लोकोत्तर व्यक्तित्व का वर्णन है, वह जैन–कथा में भी उपलब्ध है । महाभारत में कृष्ण, भगवान विष्णु के अवतार, भगवान वासुदेव के रूप में प्रतिष्ठित हैं और उनके वासुदेवावतार का प्रयोजन दुष्टों का दलन है ।[१]

जैन कथा में कृष्ण शलाका(श्रेष्ठ)पुरुष वासुदेव कहे गए हैं ।[२] इस स्वरूप में वे महान वीर एवं शक्तिशाली अर्द्ध चक्रवर्ती नरेश के रूप में प्रतिष्ठित हैं । इस प्रकार कृष्ण के वीर स्वरूप की मान्यता दोनों परंपरा में है ।

महाभारतेतर वैष्णव पौराणिक साहित्य में कृष्ण के वीर नायक के लोकरक्षक व्यक्तित्व के साथ–साथ उनके गोकुल–प्रवास में गोप–बालाओं

१– *मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः ।*
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्व महीतले ।।

–महाभारत : भीष्म पर्व : ६६/८

२– *शलाका–पुरुषों के सम्बन्ध में जैन–परंपरागत विशिष्ट मान्यता है । इस मान्यता के अनुसार एक काल खण्ड में त्रेसठ शलाका पुरुष लोक में जन्म लेते हैं । इनकी त्रेसठ संख्या इस प्रकार है:–*

२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव तथा ९ बलदेव ।

जैन मान्यतानुसार काल अनादि अनन्त चक्र है । इस चक्र के दो मुख्य काल–खण्ड हैं (१) उन्नतिकाल (उत्सर्पिणी) (२) अवनति काल (अवसर्पिणी)

प्रत्येक काल–खण्ड के छः विभाग हैं–अति सुख रूप, सुख रूप, सुख–दुःख रूप, दुःख–सुख रूप, दुःख रूप, अति दुःख रूप । ये विभाग कालचक्र के विभिन्न आरे हैं । इनमें प्रवहमान होकर काल–चक्र सदा चलता रहता है । यह सुख से दुःख की ओर एवं पुनः दुःख से सुख की ओर क्रमशः चलता रहता है ।

के साहचर्य के सन्दर्भों के कारण, उनके नायकत्व के माधुर्य-स्वरूप का शनैःशनैः विकास एवं विस्तार होता गया है। ललित काव्यों एवं उनकी परम्परा पर लिखी गई हिन्दी काव्य-कृतियों में कृष्ण के इसी ललित-मधुर शृंगारिक व्यक्तित्व को उत्तरोत्तर प्रधानता प्राप्त होती गई है और कृष्ण का वीर राजपुरुष का व्यक्तित्व वर्णन की दृष्टि से गौण होता गया है। अबलत्ता इसमें कथा-पुराण-वाचकों एवं भावुक भक्तों का भी योग है। जैन साहित्यिक कृतियों में यह स्थिति नहीं है। वहाँ कृष्ण के वीर राजपुरुष के स्वरूप का वर्णन ही प्रमुख रहा है। कोई भी व्यक्ति यदि पक्का राजनीतिज्ञ हो और धर्मात्मा भी हो तब उस व्यक्ति का स्वरूप कैसा होगा ? यह बात जानने के लिए श्रीकृष्ण का जैन साहित्य में वर्णित स्वरूप एक उत्तम उदाहरण है। भागवत तथा महाभारत के कृष्ण की तुलना में जैन साहित्य में वर्णित कृष्ण का स्वरूप अधिक न्यायपूर्ण तथा तर्कसंगत है। जैन साहित्य में कृष्ण के कपट, तथा झूठ को भी जैन दृष्टि से तर्कसंगत तथा सत्य माना जा सकता है, जबकि वैदिक दृष्टि से ऐसा प्रतीत नहीं होता।

प्रस्तुत ग्रन्थ तुलनात्मक शोध के क्षेत्र में एक नवीन और हरी-भरी पगडण्डी की ओर संकेत करता है। इस क्षेत्र में अद्यवधि अनेक सम्भावनाओं के लिए अवकाश है। इससे ज्ञान-पिपासा बुझती नहीं, वरन् और अधिक बढ़ती है, जिसके परिणाम-स्वरूप हमारे समक्ष नये हीरे-मोती अपनी आभा दिखाते हैं। उनसे हमारी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक एकतादेवी का स्वर्ण-किरीट जगमगा उठता है। यह कहने में कोई आपत्ति नहीं है कि प्रस्तुत ग्रन्थ इस दिशा में एक छोटा-सा, संतुलित और विधेयात्मक प्रयास है। आशा है, विद्वज्जन इसका स्वागत करेंगे।

शोध एक यात्रा की समाप्ति नहीं, वरन् दुर्गम पथ पर अग्रसर होने और सरस्वती की आराधना में तत्पर होने का उत्क्रम है।

कृतज्ञता-ज्ञापन

"हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप विकास" विषयक मेरे इस अध्ययन एवं चिन्तन को मूर्त रूप प्रदान करने में जिन महापुरुषो, विचारको, लेखकों, गुरुजनों एवं मित्रों का सहयोग रहा है उन सबके प्रति आभार प्रदर्शित करना मैं अपना पुनीत कर्तव्य समझती हूँ।

आदरणीय पंडितवर्य, आगमवेत्ता, महामनीषी उदारमना पद्म भूषण प्रो. दलसुखभाई मालवणियाजी की प्रेरणा और मार्गदर्शन के बिना यह कार्य असम्भव था। उनके ऋण का उल्लेख मात्र करती हूँ क्योंकि मेरी इच्छा है कि मै सदैव

उनकी ऋणी बनी रहूँ । डॉ बी.एस. अग्रवाल, श्री रूपेन्द्रकुमारजी पगारिया, डॉ. चंदा, डॉ. ओझा, डॉ. नागर आदि गुरुजनों की मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपने बहुमूल्य विवेचन और सुझावों से मुझे प्रोत्साहित किया ।

डॉ. महावीर कोटिया, आचार्य चन्द्रशेखर सूरिजी, आचार्य देवेन्द्र मुनि एवं अन्य अनेक विद्वानों एवं लेखकों की भी आभारी हूँ, जिनके साहित्य ने न केवल मेरे चिन्तन को दिशा-निर्देश दिया है वरन् जैन ग्रन्थों के अनेक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भों को बिना प्रयास के मेरे लिए उपलब्ध कराया है ।

उन गुरुजनों के प्रति, जिनके व्यक्तिगत स्नेह, प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन ने मुझे इस कार्य में अभूतपूर्व सहयोग दिया हैं, यहाँ श्रद्धा प्रकट करना भी मेरा अनिवार्य कर्तव्य है । सौहार्द, सौजन्य एवं संयम की मूर्ति डॉ. भायाणी सा. की मैं अत्यन्त आभारी हूँ । अपने स्वास्थ्य तथा व्यक्तिगत कार्यों की चिंता नही करते हुए भी उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ के अनेक अंशों को ध्यानपूर्वक पढा या सुना एवं यथावसर उसमें सुधार एवं संशोधन के लिए निर्देश भी दिया । मैं नहीं समझती हूँ कि केवल शाब्दिक आभार व्यक्त करने मात्र से मैं उनके प्रति अपने दायित्व से उऋण हो सकती हूँ ।

लेखनकार्य की व्यस्तता के अवसर पर मेरे पति तथा बच्चों का जो समय-समय पर सराहनीय सहयोग रहा है, उसके लिये मैं आभारी हूँ ।

इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने में पार्श्व प्रकाशन द्वारा जो सहयोग प्रदान किया गया उसके लिये भी मैं हृदय से आभारी हूँ ।

यह मेरा प्रथम प्रयास है । इस प्रयास में मेरा अपना कुछ भी नहीं है, सभी गुरुजनों का दिया हुआ है, इसमें मैं अपनी मौलिकता का भी क्या दावा करुँ ? मैंने तो अनेकानेक आचार्यों, विचारकों एवं लेखकों के शब्द एवं विचार-सुमनों का संचय कर माँ सरस्वती के समर्पण हेतु इस माला का ग्रथन किया है । जिसे आपके समक्ष प्रस्तुत कर रही हूँ ।

डॉ. प्रीतम सिंघवी

अनुक्रम

प्रकरण	पेज नं.
• प्रथम अध्याय प्राचीन साहित्य में श्रीकृष्ण के स्वरूप का उद्‌भव एवम् विकास	१–३८
• द्वितिय अध्याय "हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण–कथा का स्वरूप, उसकी रूपरेखा तथा प्रमुख घटनाएँ"	३९–७०
• तृतीय अध्याय हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप वर्णन	७१–११४
• चतुर्थ अध्याय वैदिक काल से आधुनिक काल तक वैष्णव साहित्य में कृष्ण के स्वरूप–विकास और हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के स्वरूप विकास से उसकी तुलना	११५–१६५
• परिशिष्ट–१ संदर्भ ग्रन्थ सूची	१६६

हिन्दी जैन साहित्य में

कृष्ण का स्वरूप-विकास

डॉ. प्रीतम सिंघवी

प्रथम अध्याय

"प्राचीन साहित्य में श्रीकृष्ण के स्वरूप का उद्‌भव एवम् विकास"

भूमिकाः–

भारत के प्राचीन साहित्य एवं संस्कृति में भगवान श्रीकृष्ण का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित कथाएँ वैष्णव, जैन और बौद्ध सम्प्रदायों से सम्बन्धित साहित्य में विविध रूपों में प्राप्त होती हैं । वैष्णव सम्प्रदाय की दृष्टि से भगवान श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकार किये जाते हैं तो जैन–परम्परा में वे एक भावी तीर्थंकर के रूप में । बौद्ध–परम्परा में भी श्रीकृष्ण को बुद्ध भगवान के अवतार के रूप में मानकर उनके प्रति अपनी आस्था प्रकट की है । यही नहीं, इन तीनों सम्प्रदायों के अतिरिक्ति कुछ अन्य भारतीय सम्प्रदायों के साहित्य में भी श्रीकृष्ण सम्बन्धी विविध कथाएँ देखने में आती हैं । आधुनिक युग में तो कुछ विद्वानों ने श्रीकृष्ण और क्राइस्ट तक को एक सिद्ध करने की भी कोशिश की है । इन सब ऐतिहासिक तथ्यों का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल वैष्णव सम्प्रदाय में ही नहीं, बल्कि भारत के विभिन्न धार्मिक एवम् सांस्कृतिक ग्रन्थों में "कृष्ण" सम्बन्धी विभिन्न कथाएँ मिलती हैं । कृष्ण से सम्बन्धित दर्शन एवं भक्ति की व्यापकता को देखते हुए इस ब्रात में कोई सन्देह नहीं है कि भारतीय धर्मसाधना, साहित्य एवम् समाज पर श्रीकृष्ण के स्वरूप एवम् चरित्र का प्रभाव हजारों वर्षों से चला आ रहा हैं । हम यहाँ अपने शोध प्रबन्ध के विषय का अनुशीलन से पहले, एक पृष्ठभूमि के रूप में यह स्पष्ट करना आवश्यक समझते हैं कि जैन साहित्य में कृष्ण सम्बन्धी साहित्य की रचना से पूर्व 'कृष्ण' शब्द का प्रयोग तथा श्रीकृष्ण के स्वरूप का विकास किन–किन मतों, और किन–किन भाषाओं में, किन–किन रूपों में स्थापित हो चुका था ।

१. वैदिक साहित्य में कृष्ण :–

(क) वेदों में कृष्ण – प्राचीन धर्म, दर्शन, संस्कृति एवम् साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद ही है । वैदिक वाङ्मय में कृष्ण के असाधारण, अद्‌भुत एवम् अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है । किन्तु यह समझना समीचीन न होगा कि कृष्ण नामक एक

ही विशिष्ट व्यक्ति हुए हैं । विशाल अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि देवकी पुत्र कृष्ण से भिन्न अन्य कृष्ण भी हुए हैं । जिनका अपनी-अपनी विशेषताओं के कारण साहित्य में उल्लेख हुआ हैं । 'ऋग्वेद संहिता' में अनेक बार कृष्ण का नाम आया हैं । कृष्ण सूत्रों के रचयिता भी माने गये हैं । सूत्रों के रचयिता कृष्ण आंगिरस गोत्र के थे ।

ऋग्वेद के अष्टम् मण्डल, ७४ वें मंत्र के स्रष्टा ऋषि कृष्ण बतलाये गये हैं ।[१] अष्टम् मण्डल के ८५, ८६, ८७ तथा दशम् मण्डल के ४२, ४३, ४४ वें सूत्रों के ऋषि का नाम भी कृष्ण ही है । किन्तु विद्वानों का अभिमत हैं कि ये कृष्ण देवकीपुत्र कृष्ण से भिन्न हैं ।[२] कृष्ण ऋषि के नाम पर कार्ष्णायन गोत्र प्रचलित हुआ । विद्वानों का अनुमान है कि इस गोत्र-प्रवर्तक के नाम पर ही वसुदेव के पुत्र का नाम कृष्ण रखा गया है ।[३] ऋग्वेद की अन्य दो शाखाओं में अपत्य बालक के रूप में 'कृष्णिय' शब्द आया है ।[४] आंगिरस ऋषि के शिष्य कृष्ण का नाम कौषीतकि ब्राह्मण में मिलता है ।[५] ऐतरेय आरण्यक में कृष्ण हरित नाम आया है ।[६] कृष्ण नामक एक असुर राजा अपने दस सहस्र सैनिकों के साथ अंशुमती (यमुना) के तटवर्ती प्रदेश में रहता था बृहस्पति की सहायता लेकर इन्द्र ने उसे पराजित किया ।[७] ऋग्वेद में इन्द्र को कृष्णासुर की गर्भवती स्त्रियों का वध करने वाला भी कहा है ।[८] ऋग्वेद में 'विष्णु' शब्द का प्रयोग अनेकार्थ और विपुल है । किन्तु इसकी एक विशेषता यह है । कि वह सर्वत्र एक दिव्य महान् और व्यापक शक्ति का प्रतीक रहा है । विष्णु के विविध रूपों का वर्णन जे. गोंडा नामक विद्वान ने विस्तारपूर्वक किया है ।[९] विष्णु की शक्ति का उत्तरोत्तर विकास ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है । विष्णु के वैशिष्ट्य की कथाएँ शतपथ ब्राह्मण[१०] और तैतिरीयारण्यक में मिलती हैं । और उसकी महत्ता

१- *ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास : प्रभुदयाल मित्तल, पृ. १५-१६ ।*

२- *वैष्णविज्म-शैविज्म-भण्डारकैर, पृ. १५ ।*

३- *हिन्दी साहित्य में राधा : द्वारकाप्रसाद मित्तल, पृ.२८ ।*

४- *वही, पृ. २८ ।*

५- *ऋग्वेद १-११६-२३, १७-७ ।*

६- *कृष्णो हतांगिरसो ब्राह्मणाम् छंसीय तृतीयं सवनं ददर्श*
- सांख्यायन ब्राह्मण अ. ३ आनन्दाश्रम पूना ।

७- *ऐतरेय आरण्यक ३/२/६ ।*

८- *ऋग्वेद १/१०/११ ।*

९- *जे. गोंडा : एक्सपेक्ट ऑफ अरली वैष्णविज्म, पृ.३ ।*

१०- *शतपथ १/२/५ । १४-१-१ ।*

मैत्रेय उपनिषद और कठोपनिषद[1] में भी बताई गई है।

शतपथ ब्राह्मण में 'नारायण' का भी उल्लेख है।[2] ऋग्वेद में पांचरात्र सत्र का प्रयोजक पुरुष तथा पुरुष-सूक्त का कर्ता भी नारायण को बताया हैं।[3] तैतिरीयारण्यक में नारायण को सर्वगुण-समपन्न कहा है।[4]

श्री धर्मानन्द कोसाम्बी ने ऋग्वेद की तीन ऋचाओं[5] का उदाहरण देकर, यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि इन ऋचाओं में जिस कृष्ण का उल्लेख हुआ है, यह महाभारत के श्रीकृष्ण हो सकते हैं।

कोसाम्बी के इस दृष्टिकोण का विश्लेषण करने से पहले हम यहाँ इन ऋचाओं का अर्थ देना आवश्यक समझते हैं।

"वह शीघ्रगामी कृष्ण दस हजार सेना के साथ अंशुमती नदी के समीप आया। चारों ओर महाशब्द करने वाले उस कृष्ण के पास इन्द्र आया और सन्धि करने के विचार से उसने कृष्ण से मित्रता की बातचीत आरम्भ की। अपनी सेना से कहा, "अंशुमती की तंग घाटी में जंगल में छीपकर बैठे हुए उस दूरगामी और आकाश के समान तेजस्वी कृष्ण को मैं देख रहा हूँ और वीरों, मेरी इच्छा है कि अब तुम उससे युद्ध करो। "तदनन्तर उस कृष्ण ने अपनी सेना अंशुमती नदी की घाटी में एकत्र की और बडा पराक्रम दिखाया चारों ओर से चढाई करने वाली इस देवेतर सेना को इन्द्र ने बृहस्पति की सहायता से पराजित किया (अथवा इन्द्र ने इस सेना के आक्रमण सहन किए।)"

इन्ही ऋचाओं के आधार पर श्री कोसाम्बी ने यह निष्कर्ष व्यक्त किया है कि कृष्ण पर आक्रमण करने के लिए इन्द्र के अपने देश से अंशुमती नदी तक पहुँचने पर वहाँ कृष्ण ने ऐसे विकट स्थान पर अपनी सेना का

१- *कठोपनिषद ३/६।*

२- *शतपथ ब्राह्मण १३-३-४।*

३- *ऋग्वेद १२/६/१, १२/१०/९०।*

४- *तैतिरीयारण्यक १०/११।*

५ *"अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रो।*
आगतमिन्द्रः शच्या धमन्तमपस्नेहितीर्नृपणा अधत॥
द्रप्समपश्यं - विष्णु चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिव्यामि वो वृष्णो युध्यताओ।
अद्य द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेअधारयत्तत्वं तित्विषाणः
विशो अदेवीरम्या चरतीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे"
ऋग्वेद ३/९६/१३/१५।

व्यूह रचा कि इन्द्र के लिए उस पर आक्रमण करना कठिन हो गया। पराजय न होने को ही विजय मानकर इन्द्र वहाँ से पीछे हटा या यह कहिए कि इस संकट से वृहस्पति ने उसे बचाया।

ऋग्वेद में कृष्ण-इन्द्र के संघर्ष के इस उल्लेख पर विचार करने के साथ ही भागवत पुराण के दशम् स्कन्ध के चौब्रीसवें और पच्चासवें अध्यायों में वर्णित कृष्ण-इन्द्र के संघर्ष की कथा का भी कोसाम्बी ने उल्लेख किया है। तद्नुसार -"नन्दादिक गोपालों ने यज्ञ से इन्द्र को सन्तुष्ट करने का विचार किया, पर कृष्ण को यह बात पसन्द नहीं आई। उसने सादा भोजन करने को बाध्य किया और गोप-गोपियों को लेकर वह गोवर्धन पर्वत की ओर चला गया। इसका यह कार्य इन्द्र को अच्छा नहीं लगा और उसने मूसलाधार वर्षा करके गोकुल का नाश करने का प्रयत्न किया। तब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत हाथ पर उठा लिया और उसके नीचे गोकुल को आश्रय देकर इन्द्र की कुछ नहीं चलने दी"

श्री कोसाम्बी के अनुसार भागवत की इस दन्तकथा का और ऋग्वेद की उपर्युक्त ऋचाओं का निकट सम्बन्ध होना चाहिए। भागवत की कथा इन्द्र को देवत्व प्राप्त होने के बाद की है, तथापि उसमें कुछ ऐतिहासिक अंश होना चाहिए। इस कथा से, उपर्युक्त ऋचाओं पर विचार करते हुए पढ़ने पर, यह निष्कर्ष मिलता है-इन्द्र ने पराक्रमी कृष्ण पर आक्रमण किया। इन्द्र के पास अश्वारोही होने के कारण उसकी सेना बलवती थी। कृष्ण का बल था गाय, बैल और तेज चलनेवाली सेना। पर कृष्ण ने ऐसा स्थान ढूँढ निकाला कि उसके सामने इन्द्र की कुछ न चली, उसकी अश्वारोही सेना कुछ काम न आ सकी। अन्त में उसे अपनी सेना लेकर लौट जाना पड़ा।"[१]

पौराणिक-साहित्य में देवेतर (असुर) राजाओं से इन्द्र के संघर्ष की अनेक कथाएँ वर्णित हैं। इससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि इन्द्र जिस जन(कबीला)का प्रमुख था, वह जैसे-जैसे भारत भूमि पर आगे बढ़ा, उससे पहले बसे हुए जनों से संघर्ष हुआ। ऋग्वेद में जिन पांच प्रमुख जनों (कबीलो) का उल्लेख है, उनमें यदु कबीला भी था।[२] इन्द्र से संघर्ष में इस कबीले के साहसी युवकों का नेतृत्व पराक्रमी कृष्ण ने किया-यह हम ऋग्वेद की उपर उद्धत ऋचाओं से अर्थ ग्रहण कर सकते हैं। अस्तु। जो भी हो, परन्तु इस ऋग्वेदिक उल्लेख से यह स्पष्ट है कि इन्द्र का यह प्रतिस्पर्धी

१- *भारतीय संस्कृति और अहिंसा-धर्मानन्द कोसाम्बी, हिन्दी अनुवादः पृ.४७-४८*

२- *प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति-दामोदर धर्मानन्द कोसाम्बी, (हिन्दी अनुवाद-पृ. १४६)*

कृष्ण ऋग्वेद काल में अपने अद्वितीय पराक्रम तथा वीरता के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था ।

: ख : उपनिषदों में कृष्ण :-

उपनिषद-साहित्य में पर्याप्त प्राचीन मानी जानेवाली रचना 'छान्दोग्य उपनिषद्' में देवकीपुत्र कृष्ण के आध्यात्मिक गुरु घोर आंगिरस का वर्णन मिलता है । इस उपनिषद् के अध्याय ३, खण्ड १७ में आत्मयज्ञोपासना का वर्णन है । इस यज्ञ की दक्षिणा के रूप में तप, दान, आर्जव-(सरलता), अहिंसा और सत्य वचन का उल्लेख है ।[१] यह यज्ञ-दर्शन घोर आंगिरस ऋषि ने देवकीपुत्र कृष्ण को सुनाया था इस उपदेश को सुनकर कृष्ण की अन्य विद्याओं के विषय में कोई तृष्णा नहीं रही । घोर आंगिरस ने कृष्ण को यह भी उपदेश दिया था कि जब मानव का अन्त समय निकट आये तब उसे तीन मन्त्रों का जप करना चाहिए

१- त्वं अक्षतमसि-तू अविनश्वर है ।

२- त्वं अच्युतमसि-तू एकरस में रहने वाला है ।

३- त्वं प्राणसंशितमसि-तू प्राणियों का जीवनदाता है ।[२]

इस, प्रकार हम कह सकते हैं कि देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का सर्व प्रथम उल्लेख हमें छान्दोग्य उपनिषद् में मिलता हैं ।

: ग : महाभारत में कृष्ण :-

'महाभारत' में कृष्ण दो रूपों में निरुपित हुए मिलते हैं । एक तो महापुरुष के रूप में एवम् दूसरे देवता के रूप में । 'महाभारत' का रचनाकाल ३५० ई. पूर्व माना गया है ।[३]

'महाभारत' का महद् अंश प्रक्षिप्त माना जाता है । 'हरिवंशपुराण' 'महाभारत' का लिखा अंश अर्थात् प्रक्षिप्त अंश है । इसमें श्रीकृष्ण की

१- *अतः यत् तपोदानमार्जवमहिंसा सत्यवचनमिताि अस्य दाक्षीणा ।*

- छान्दोग्य उपनिषद् ३।१७।८

२-. *तद्वैतद् घोरं आंङ्गिरस; कृष्णाय देवकी पुत्रायोक्त्वोवाचाऽपिपास एव स बभूव, सोऽन्तवेलायामेतत्त्रयं प्रतिपद्ये ताक्षतमस्यच्युतमसि प्राणसँ-शितमसीति*

छान्योग्योपनिषद : पृ. ३, खण्ड १८

३- *वैष्णव धर्म नो संक्षिप्त इतिहास-के. शास्त्री, पृ. ३९*

लीलाओं का वर्णन किया गया है । विन्टर निट्ज ने इसको 'महाभारत' का प्रक्षिप्त अंश माना है । इसका रचनाकाल चौथी शताब्दी है ।[१] विन्टर निट्ज ने 'महाभारत' के तीन संस्करण माने हैं, अर्थात् 'महाभारत' तीन बार संपादित हुआ है । प्रथम संस्करण में ८८०० श्लोक हैं । दूसरे संस्करण में २४००० श्लोक हैं और तीसरे संस्करण में १००००० (एक लाख) श्लोक हैं ।[२] 'महाभारत' के जिस अंश में कृष्ण का महापुरुष के रूप में चित्रण हुआ है, वह अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन है तथा देवता एवम् ब्रजवासी गोपाल कृष्ण के रूप का जो अंश है, वह परवर्ती काल्पनिक एवम् प्रक्षिप्त अंश है ।[३] कृष्ण जब पाण्डवों के सलाहकार के रूप में होते हैं तब वे पूर्ण मानव हैं । 'महाभारत' काल में कृष्ण एक ओर जहाँ वीर योद्धा थे, तो दूसरी ओर से वासुदेव, नारायण और ईश्वर के अवतार भी थे । अधिक विद्वानों की यह मान्यता है कि महाभारत–काल में कृष्ण में अवतारत्व का आरोप होने लगा था ।[४] 'महाभारत' में 'गोविन्द' शब्द मिलता है । उसका अर्थ गोचारण करने वाले कृष्ण नहीं, किन्तु 'गो' अर्थात् पृथ्वी, विंद अर्थात् रक्षा करने वाले । यह एक प्रसिद्ध पुराणकथा है कि विष्णु ने वराह अवतार लेकर पृथ्वी की रक्षा की थी । डॉ. भण्डारकर ने 'गोविन्द' शब्द को गो+विंद शब्द से व्युत्पन्न माना है । डॉ. भण्डारकरने केशीनिसूदन को भी कृष्ण का नाम न मानकर इन्द्र का विशेषण माना है ।[५] जैसे गोविन्द, गोपाल, कृष्ण जैसे विशेषणों का सम्बन्ध कृष्ण से कर लिया गया, वैसे ही ऋग्वेद में प्रयुक्त गो, वृष्णि, गोप, ब्रज, राधा, रोहिणी इन नामों का कृष्ण के साथ सम्बन्ध न होने पर भी इनको कृष्ण के साथ जोड़ दिया गया है । जिस प्रकार घोर आंगिरस कृष्ण का सम्बन्ध 'महाभारत' के कृष्ण के साथ जोड दिया गया है, उसी तरह गोविन्द, गोपाल, कृष्ण, गो, गोप, विष्णु, राधा, रोहिणी और अर्जुन शब्दों का सम्बन्ध भी पुराणकाल में कृष्ण के साथ जोड दिया गया है ।[६] 'महाभारत' में द्वारकावासी कृष्ण के जीवन का वर्णन मिलता है और वह भी बाल एवम् किशोर नहीं, पर समर्थ योद्धा, राजनीतिज्ञ एवम् दार्शनिक के रूप में । कृष्ण के वासुदेव नाम की प्रतिष्ठा 'महाभारत' में तीन रूपों में बताई गई है–

१– हरिवंश का सांस्कृतिक अध्ययन : आमुख–१२

२– वही–

३– वही–पृ.४०

४– सूर साहित्य : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.२४ ।

५ वैष्णविज्म एण्ड शैविज्म : भण्डारकर, पृ. ५१ ।

६– वही, पृ.५१ ।

(१) व्यापकता की दृष्टि से जगत् के निवास रूप एवम् जगत के प्रकाशक सूर्य रूप होने से ।[१]

(२) वृष्णियों से वासुदेव नाम से प्रसिद्ध होने के कारण ।[२]

(३) वासुदेव उपाधिधारी पौण्ड्रक राजा पुरुषोत्तम तथा करवीरपुर के राजा शृगाल का वध करके अपने एक मात्र वासुदेवत्व को प्रमाणित करने के कारण ।[३]

डॉ. भण्डारकर मानते है कि– "वासुदेव, नारायण तथा विष्णु के एकीकरण ने वैष्णवधर्म, भागवत धर्म या सात्वत धर्म के लिए एक पुष्ट आधारभूमि तैयार की ।"[४]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कृष्ण के ऐतिहासिक व्यक्तित्व को किंचित् अंश में प्रस्तुत करने का सर्व प्रथम प्रयास 'महाभारत' में हुआ है । 'महाभारत' किसी अंश में ऐतिहासिक ग्रन्थ तो है ही 'महाभारत' में कृष्ण के व्यक्तित्व की तीन स्थितियाँ तो स्पष्ट हैं । – (१) सामान्य मानव, अर्जुन के मित्र और पाण्डवों के हितेच्छु एवम् सलाहकार, (२) लौकिक एवं अलौकिक शक्ति सम्पन्न, (३) परब्रह्म ।[५]

'महाभारत' में कृष्ण नर रूप में अवरित होकर भी नारायण रूप की सभी विशिष्टताओं से युक्त हैं । "नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्" कहकर महाभारतकार ने उनका अभिनन्दन किया है । उनके दिव्य मानवीय स्वरूप के दर्शन हमें 'महाभारत' में होते हैं ।

'महाभारत' के कृष्ण का व्यक्तित्व आकर्षक है । इन्द्रनीलमणि के समान उनका श्याम–वर्ण शोभायुक्त था । कमल सदृस उनके नेत्र थे, सुंडौल, मनमोहक उनकी बाह्य छबि थी । अपने अप्रतिम रूप के साथ ही वे अतुल बलसम्पन्न भी थे उनका उत्तम चरित्र सभी प्रकार के श्रेष्ठ गुणों और आदर्शों की खान है । वे महान वीर, मित्रजनों के प्रशंसक, जाति और बन्धु–बान्धवों के प्रेमी, क्षमाशील, अहंकाररहित, ब्राह्मणभक्त, भयातुरों का भय दूर करने वाले, मित्रों का आनन्द बढाने वाले, समस्त प्राणियों को शरण देने वाले,दीन–दुःखियों को पालने में तत्पर, शास्त्रज्ञान–सम्पन्न. धनवान,

---

१– महाभारत, शान्तिपर्व, अध्याय ३४२, श्लोक २०–२१ ।

२– 'गीता'– वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि, ०–३७ ।

३– 'हरिवंश पुराणं विष्णु पर्व ४४/२२–२९ ।

४– हिन्दी कृष्णकाव्य : परम्परा का स्वरूप विकास, पृ.१७ ।

५– दि कल्चरल हेरीटेज ऑफ इन्डिया– डो. राम स्वामी ऐलियोर, वोल्यूम–२ पृ.८५ ।

सर्वभूतवन्दित, शरणागत को वर देने वाले, शत्रु को अभय देने वाले, धर्मज्ञ, नीतिज्ञ, वेदों के वक्ता, तथा जितेन्द्रय कहे गये हैं ।[1] वे धैर्यशाली, पराक्रमी, बुद्धिमान और तेजस्वी हैं ।[2]

इस प्रकार कृष्ण लोक के रक्षक, धर्म व नीति के संस्थापक और आदर्श पुरुषोत्तम हैं ।

कृष्ण का प्रमुख कृत्य दुष्ट-दलन घोषित करके महाभारत के रचयिता ने कृष्ण की वीरता तथा पराक्रम का ही वर्णन किया है । अपनी बात स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ 'महाभारत' उद्योग-पर्व का एक प्रसंग उद्धृत कर रहे हैं । प्रसंग इस प्रकार है-

कृष्ण पाण्डवों की ओर से दूत बनकर कौरवसभा में गए इस अवसर पर कृष्ण को कैद करने की योजना दुर्योधन ने बनाई । यह बात विदुर को मालूम पड़ी दुर्योधन की भत्सर्ना करते हुए विदुर ने कृष्ण के पराक्रम, बल तथा वीरता का इस प्रकार वर्णन किया है :-[3]

१- " *वीरो मित्रजन श्लाघी, ज्ञाति-बन्धुजनप्रियः ।*
क्षमावाश्चानहंवादी, ब्रह्मज्ञो ब्रह्मनायकः ।
भयहर्ता भयार्तानां, मित्राणां नन्दिवर्धनः ॥
शरण्यं सर्वभूतानां दीनानां पालने रतः ।
श्रुतवानर्थसम्पन्नः सर्वभूत नमस्कृतः
समाश्रितानां वरदः शत्रूणामपि धर्मवित्
नीतिज्ञो नीतिसम्पन्नो, ब्रह्मवादी जितेन्दियः ॥

महाभारत अनुशासन पर्व, १४७/१९-२० ।

२- *तस्मिन धृतिश्च, वीर्य च प्रज्ञा चौजश्चमाधवे ।*

उद्योग पर्व ९५/९ ।

३- " *दुर्योधन निबोधैदं बचनं मम साम्प्रतम् ।*
सौमद्वारे दानवेन्द्रो द्विविदो नाम नामतः ।
शिलावर्षेण महता छादयामास केशवम् ॥ ४१
ग्रहीतुकामो विक्रम्य सर्वेयत्नेन माधवम् ।
ग्रहीतुं नाशकच्चैनं तं त्वं प्रार्थयते बलात् ॥ ४२
प्राग्ज्योतिष्पतं शौरि नरकः सह दानवैः ।
ग्रहीतुं नाशक्त तत्र तं त्वं प्रार्थयसे बलात् ॥ ४३
अनेक युगवर्षायुर्निहत्य नरकं मृध ।
नीत्वा कन्या सहस्रणि उपयेमे यथाविधि ॥ ४४

(शेष अगले पृष्ठ पर)

सौमद्वार में द्विविद नाम से प्रसिद्ध बानर-राज रहता था। उसने एक दिन पत्थरों की भारी वर्षा करके कृष्ण को आच्छादित कर दिया। उसने अनेक पराक्रमपूर्ण उपायों से कृष्ण को पकड़ना चाहा, परन्तु इन्हें नहीं पकड़ सका प्राग्जोतिष्पुर में नरकासुर ने कृष्ण को बन्दी बनाने की चेष्टा की परन्तु वह भी सफल न हो सका। कृष्ण ने नरकासुर को मारकर उसके यहाँ बन्दी सहस्रों राज-कन्याओं का उद्धार किया। निर्मोचन में छह हजार बड़े-बड़े असुरों को इन्होंने पाशों में बाँध लिया। वे असुर भी जिन्हें बन्दी नहीं बना सके उन कृष्ण को तुम बलपूर्वक वश में करना चाहते हो।[1]

भरत श्रेष्ठ, इन्होंने बाल्यावस्था में पूतना का वध किया था, और गोपों की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को धारण किया था। अरिष्टासुर, धेनुक, महाबली चाणुर, अश्वराज केशी और कंस भी कृष्ण के हाथ से मारे गए थे। जरासंध, दन्तवक्र, पराक्रमी शिशुपाल और बाणासुर भी इन्हीं के हाथ से मारे गए हैं तथा अन्य बहुत से राजाओं का भी इन्होंने संहार किया है। अमित तेजस्वी कृष्ण ने वरुण पर विजय पायी है तथा अग्निदेव को भी

निर्मोचने षट् सहस्रा : वाशैर्वद्वा महासुराः।
ग्रहीतुं नाशकंक्षचैनं तं त्वं प्रार्थ्यसे बलात् ॥ ४५
अनेन हि हता बाल्ये पूतना शकुनी तथा।
गोवर्धनो धारीतश्च गवार्थे भरतर्षभ ॥ ४६

१- *"अरिष्टो धेनुकश्चैव चाणूरश्च महाबलः।*
अश्वराजश्च निहतः कंसश्चारिष्टमाचरन् ॥ ४७
जरासंधश्च वक्रश्य शिशुपालश्च वीर्यवान्।
वाणश्च निहत : संख्यौ राजानश्य निषूदिताः ॥ ४८
वरुणो निर्जितो राजा पावकश्चामितौजसा।
पारिजातं च हरता जितः साक्षाच्छचीपतिः ॥ ४९
एकार्णबे च स्वपता निहतो मधुकैटभो।
जन्मान्तरमुपागम्य हयग्रीवस्तथा हतः ॥ ५०
अये कर्ता न क्रियते कारणं चापि पौरुषे।
यद् यदिच्छेद्यँ शौरिस्तत् तत् कुर्यादयत्मतः ॥ ५१
तं न बिदृयति गोविन्द घोरविक्रममच्युतम् ;
आशी विषमिवं कृद्धं तेजोराशिमनिन्दितम् ॥ ५२
प्रधर्षयन् महाबाहुं कृष्णमविलष्टकारिणम्।
पतंगोअग्निमिसद्य सामात्यो न भविष्यति ॥ ५३

महाभारत : उद्योग पर्व ३०/४१-५३।

पराजित किया है । पारिजातहरण करते समय इन्होंने साक्षात् शचिपति इन्द्र को भी जीता है । इन्होंने एकार्णव के जल में सोते समय मधु और कैटभ नामक दैत्यों को मारा था और दूसरा शरीर धारण करके हयग्रीव नामक राक्षस का भी इन्होंने वध किया था ये ही सबके कर्ता हैं, इनका दूसरा कोई कर्ता नहीं है । सबके पुरुषार्थ के कारण भी ये ही हैं । ये जो भी चाहें वह अनायास ही कर सकते हैं । अपनी महिमा से कभी च्युत न होने वाले इन गोविन्द का पराक्रम भयंकर है । तुम इन्हें अच्छी तरह नहीं जानते । ये क्रोध में भरे हुए विषघर सर्प के समान भयानक हैं । ये सत्पुरुषों द्वारा प्रशंसित एवं तेज की राशी हैं । अनायास ही महान पराक्रम करने वाले महाबाहु कृष्ण का तिरस्कार करने पर तुम अपने मंत्रियों सहित उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे पतंगा अग्नि में पड़कर भस्म हो जाता है ।

इस समस्त विवरण में विदुर के माध्यम से कृष्ण की वीरता तथा पराक्रम का ही वर्णन है । कृष्ण की वीरता काल पाकर पूजनीय बनी 'महाभारत' में उनके वीरतापूर्ण कृत्यों के साथ उनकी वासुदेव संज्ञा अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है । भीष्म पर्व में ब्रह्माजी द्वारा भगवान विष्णु से की गई प्रार्थना में यह स्पष्ट उल्लेख है कि प्रभो, आप वासुदेव नाम से विख्यात होकर कुछ काल तक मनुष्य लोक में रहें और वहाँ असुरों का वध करें ।"[१]

इस उल्लेख के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृष्ण की वासुदेव संज्ञा का सम्बन्ध उनके वीरतापूर्ण कृत्यों तथा पराक्रम से है । कृष्ण के वासुदेव स्वरूप की पूजा मूलतः उनकी वीरता व पराक्रम की पूजा है । भगवान वासुदेव का आविर्भाव ही दुष्टों का दमन कर पृथ्वी का भार उतारने के लिए हुआ था

'महाभारत' के पश्चात् कृष्ण सम्बन्धी जो कथाएँ विभिन्न पुराणों में आई हैं, उनका संक्षिप्त अनुशीलन हम आगे दे रहे हैं ।

: घ : पुराणों में कृष्ण :–

वैदिक साहित्य के पश्चात् विभिन्न अवतारों के चरित्रों के आख्यान पुराण साहित्य में मिलते हैं । पुराणों की संख्या १८ है, उन सब में कृष्ण का वृत्तान्त नहीं है, केवल विष्णु, वायु, श्रीमद्भागवत्, कूर्म, वामन, ब्रह्माण्ड, स्कन्द, अग्नि, लिंग, ब्रह्मवैवर्त, गरुड, ब्रह्म तथा पद्मपुराण में है ।

१– मानुषं लोकमातिष्ठ वासुदेव इति श्रुतः ।
असुराणां वधार्थाय सम्भवस्य महीतले ।।"

महाभारत : भीष्म पर्व

पुराणों का क्रम 'शब्दकल्पदुम' के अनुसार निम्नलिखित रूप में माना जाता है–

१. ब्रह्म पुराण	१०. ब्रह्मवैवर्त पुराण
२. पद्म पुराण	११. लिंग पुराण
३. विष्णु पुराण	१२. वराह पुराण
४. शिव पुराण	१३. स्कन्ध पुराण
५. भागवत पुराण	१४. वामन पुराण
६. नारद पुराण	१५. कूर्म पुराण
७. मार्कण्डेय पुराण	१६. मत्स्य पुराण
८. अग्नि पुराण	१७. गरूड पुराण
९. भविष्य पुराण	१८. ब्रह्माण्ड पुराण

इसी शब्द–कोश में सूतजी और ब्रह्मा के संवादों के माध्यम से मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द और अग्नि पुराणों को तामस पुराणों के रूप में, ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन पुराण को राजस पुराणों के रूप में और विष्णु, नारद, भागवत, गरूड, पद्म और वराह पुराण को सात्त्विक पुराण के रूप में बताया गया है । इसी कोश में आगे चलकर ब्रह्मा ने पुराणों के नाम सूतजी को इस प्रकार बतलाए हैं ।

१. ब्रह्म पुराण	१०. ब्रह्मवैवर्त पुराण
२. पद्म पुराण	११. लिंग पुराण
३. विष्णु पुराण	१२. वराह पुराण
४. वायु पुराण	१३. स्कन्ध पुराण
५. भागवत पुराण	१४. वामन पुराण
६. नारद पुराण	१५. कूर्म पुराण
७. मार्कणडेय पुराण	१६. मत्स्य पुराण
८. अग्नि पुराण	१७. गरूड पुराण
९. भविष्य पुराण	१८. ब्रह्माण्ड पुराण

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपने 'पुराण विमर्श' नामक ग्रन्थ में पुराणों का समय इस प्रकार निर्धारित किया है–

१. ब्रह्म पुराण	ई.स. १३ वीं शती
२. पद्म पुराण	ई..स. १६ वीं शती

३–	विष्णु पुराण	ई.स. १००से ३०० ई. तक
४.	वायु पुराण	ई.स. ३५०–५५० के बीच का
५.	श्रीमद्भागवत	ई. छठी शती
६.	नारदीय पुराण	ई. ७०० से ९०० के बीच
७.	मार्कण्डेय पुराण	ई. ४०० से ५०० के बीच
८.	अग्नि पुराण	ई. ७०० से ९०० ई.के बीच
९.	भविष्य पुराण	ई. १० वीं शती
१०.	ब्रह्मवैवर्त पुराण	ई. नवम दसम शती
११.	कलंग पुराण	ई. अष्टम् नवम् शती
१२.	वराह पुराण	ई. नवम्–दशम् शती
१३.	स्कन्ध पुराण	ई. सप्तम्–नवम् शती
१४.	वामन पुराण	ई. ६०० से ९०० के बीच
१५.	कूर्म पुराण	ई. ६०० से ७०० के बीच
१६.	मत्स्य पुराण	ई. २०० से ४०० के बीच
१७.	गरूड पुराण	ई. ९०० के आसपास
१८.	ब्रह्माण्ड पुराण	ई. ६०० से ९०० के बीच

यदि हम आचार्य बलदेव उपाध्याय की इस मान्यता को स्वीकार करें तो पुराणों की रचना का क्रम इस प्रकार होगा–

१.	विष्णु पुराण	ई.स. १०० से ३०० के मध्य
२.	मत्स्य पुराण	ई.स. २०० से ४०० "
३.	वायु पुराण	ई.स. ३५० से ५५० "
४.	मार्कण्डेय पुराण	ई.स. ४०० से ५०० "
५.	श्रीमद्भागवत	ई.स. ५०१ से ६०० "
६.	कूर्म पुराण	ई.स. ६०० से ७०० "
७.	वामन पुराण	ई.स. ६०० से ९०० "
८.	ब्रह्माण्ड पुराण	ई.स. ६०० से ९०० "
९.	स्कन्द पुराण	ई.स. ६०१ से ९०० "
१०.	अग्नि पुराण	ई.स. ७०० से ९०० "
११.	नारदीय पुराण	ई.स. ७०० से ९०० "
१२.	लिंग पुराण	ई.स. ७०१ से ९०० "के मध्य

१३.	वराह पुराण	ई.स. ८०१ से १०००
१४.	ब्रह्मवैवर्त पुराण	ई.स. ८०१ से १०००
१५.	गरुड पुराण	ई.स. ९०० से आसपास
१६.	भविष्य पुराण	ई.स. ९०१ से १३०० ई.
१७.	ब्रह्म पुराण	ई.स. १२०१ से १३०० ई.
१८.	पद्म पुराण	ई.स. १५०१ से १६००

अर्थात् सर्व प्रथम विष्णु पुराण की रचना हुई और अंत में पद्म पुराणकी । अब हम इन पुराणों में आचार्य बलदेव उपाध्याय द्वारा दिए गए कालचक्र के अनुसार कृष्ण के स्वरूप-विकास का शोध-परक अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं ।

विष्णु पुराण :-

विष्णु पुराण छः अंशों में विभक्त है । इसके चौथे अंश के १५ वें अध्याय में श्रीकृष्ण के जन्म का वर्णन है । और पाचवें अंश में कृष्ण का चरित्र विस्तार से दिया है । इसमें यह वर्णन वासुदेव-देवकी के विवाह से प्रारंभ होता है । इसमें अर्जुन का उल्लेख है, पर महाभारत के युद्ध का कहीं संकेत मात्र भी नहीं मिलता है । इस पुराण में कृष्ण की लीलाओं, उनके रास खेलने तथा उनके देह-त्याग तक का वर्णन है ।

वायु पुराण :

वायु पुराण के द्वितीय खण्ड के चौंतीसवें अध्याय में स्यमंतक मणि की कथा के वर्णन में कृष्ण का विवरण आया है । वायु पुराण के द्वितीय खण्ड के बयालीस वें अध्याय में श्रीकृष्ण को अक्षर ब्रह्म के परे और राधा के साथ गोलोक-लीला विलासी बताया है ।[१] इस पुराण के अनुसार यही उपनिषदों का अरूप, अनिर्देश्य और अनिर्वाच्य ब्रह्म है । यही किसी नाम द्वारा अभिहित न किया जानेवाला परम् तत्त्व है, जिसे सात्वत वैष्णव श्रीकृष्ण कहते हैं ।

श्रीमद्भागवत :-

श्रीमद्भागवत महापुराण १२ स्कन्धों में विभक्त है । दशम् स्कन्ध सबसे बडा है । इसके ९० अध्यायों में विस्तारपूर्वक वासुदेव देवकी के विवाह से लेकर यादव कुल के नष्ट होने तक का वर्णन किया गया है । इस पुराण में कृष्ण की बाल-लीलाओं एवम् रसिक लीलाओं का

१- *वायु पुराण : द्वितीय खण्ड - अ.४२*

विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है । गोपिकाओं के साथ कृष्ण रासलीला करते हैं । राधा का इसमें कहीं नाम नहीं है । इससे स्पष्ट होता है कि कृष्ण-चरित्र में राधा को इस पुराण के रचना काल तक नहीं जोड़ा गया था राधा इस पुराण के रचनाकाल की कल्पना है ।

श्रीमद्भागवत के कृष्ण को परम् ब्रह्म भी बताया गया है ।[१] इसके सत्रहवें और उन्नीसवें अध्याय में गोपों और गायों को दावानल से बचाने का उल्लेख है । इक्कीसवें अध्याय में वेणुगीत है । बावीसवें अध्याय में चीर-हरण लीला का वर्णन है । गीता और भागवत दोनों ने श्रीकृष्ण को ज्ञान, शान्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज-इन छह गुणों से विशिष्ट माना हैं ।

श्रीमद् भागवत में कृष्ण के रूपों का चित्रण इस प्रकार हुआ है । -

१. अद्भुत-कर्मा असुर-संहारक कृष्ण, २. बालकृष्ण ३. गोपी बिहारी कृष्ण ४. राजनीतिवेत्ता, कूटनीति-विशारद श्रीकृष्ण ५. योगेश्वर श्रीकृष्ण ६. परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण

भागवत के द्वितीय स्कन्ध के सप्तम् अध्याय में कृष्ण और बलराम के अवतारों की ओर संकेत किया गया है । तृतीय अध्याय में अन्य लीलाओं का वर्णन है । दशम् स्कन्ध के पूर्वार्ध में श्रीकृष्ण का बालचरित्र तथा गोपी-विहार है । दशम स्कन्ध में लीलाओं का विशद् चित्रण हैं । एक वाक्य में कहा जाय तो श्रीमद्भागवत् में महाभारत, गीता आदि का समन्वय हुआ है । उसमें एक ओर महाभारत में कुरुक्षेत्र के युद्ध में पाण्डवों के सखा वीर कृष्ण का रूप तथा दूसरी ओर गीता के साधुओं के परित्राण तथा पापियों के विनाशक एवं धर्म की स्थापना कर निष्काम कर्मयोग का उपदेश देने वाले श्रीकृष्ण का रूप निहारने को मिलता है ।

कूर्म पुराण :

कूर्म पुराण के पूर्वार्ध में यदुवंश का वर्णन है । पच्चीसवें अध्याय में कृष्ण पुत्र प्राप्ति के लिए महादेव आदि की आराधना करते हैं । सत्ताईसवें अध्याय में साम्ब आदि कुमारों का वर्णन है । इस पुराण में श्रीकृष्ण का स्वधाम-गमन का भी विस्तृत वर्णन किया गया है ।

वामन पुराण :

वामन पुराण में केशी, सुर तथा कालनेमि के वध की कथा है ।

ब्रह्माण्ड पुराण :

---

१. *श्रीमद्भागवत : दशम स्कन्ध ८-४५, ३-१३, २४, २५*

ब्रह्माण्ड पुराण के बीसवें अध्याय में कृष्ण के जन्म लेने आदि की घटनाएँ हैं ।

अग्नि पुराण :

'अग्नि पुराण' के १२ वें अध्याय में कृष्णावतार की कथा वर्णित है । तथा इसी पुराण के अध्याय १३,१४,१५ में 'महाभारत' की कथा का वर्णन किया गया है जिसमें कृष्ण-चरित का उल्लेख है । 'अग्नि पुराण' विषय की व्याप्ति की दृष्टि से भारतीय संस्कृति का विश्वकोश कहलाता है । कई दृष्टियों से यह अन्य पुराणों की अपेक्षा श्रेष्ठ है । इसमें अलंकारशास्त्र का भी निरूपण हुआ है ।

लिंग पुराण :

'लिंग पुराण' के प्रथम खण्ड के ४९ वें अध्याय में कृष्ण भगवान का आविर्भाव और चरित्र वर्णन है ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण :

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में श्रीकृष्ण के चरित का पूर्ण विवेचन है । उसके तेरहवें अध्याय में 'कृष्ण' शब्द की अनेक दृष्टियों से व्याख्या की गई है 'कृष्ण' शब्द का 'क' अक्षर ब्रह्मवाचक, 'ऋ' अनन्तवाचक, 'ष' शीर्षवाचक, 'ण' धर्मवाचक, 'अ' विष्णुवाचक, और विसर्ग नर-नारायण अर्थ का वाचक है ।[१] सर्वाधार, सर्वबीज, और सर्वमूर्ति स्वरूप होने के कारण वे कृष्ण कहलाते हैं ।

इस पुराण में कृष्ण के अर्धनारीश्वर रूप का भी वर्णन किया गया है । इसके अनुसार राधा कृष्ण ही विश्व संचालक सत्ता के दो रूप हैं । राधा कृष्ण के तत्त्व और लीलाओं का इस पुराण में विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है । कृष्ण की भाँति इसमें राधा को भी अवतार माना गया है । इसमें राधा-पूजा पद्धति, राधा-कवच इत्यादि का निर्देश है ।

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' के सृष्टि प्रकरण में भी अन्य पुराणों की अपेक्षा बहुत अन्तर है । अन्य सब पुराणों में अव्यक्त परम् ब्रह्म को ही सृष्टि का निमित्त बताया गया हैं । और उसी से मूल प्रकृति तथा ब्रह्मा, विष्णु आदि देवों की उत्पत्ति बतलाई है, पर 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में सब का स्रोत एक मात्र गोलोक निवासी श्रीकृष्ण को कहा है ।

उक्त पुराणों के अध्याय 'श्रीकृष्णगुणा कीर्तनम्' में कृष्ण के गुणों का

---

१. *ब्रह्मवैवर्त पुराण : १३/५५-६८ ।*

कीर्तन निरुपित किया गया है ।

गरूड पुराण :

'गरूड पुराण' के आचार काण्ड में कृष्ण–लीलाओं का वर्णन है । इसमे पूतना–वध, यमलार्जुन उद्धार, कालियदमन, गोवर्धन धारण, केसी–चाणूर वध, संदीपनि गुरु से शिक्षालाभ आदि सभर कथाएँ संक्षेप में दी गई हैं । गोपियों का तथा कृष्ण की रुक्मिणी, सत्यभामा, आदि अष्ट पत्नियों का उल्लेख है, किन्तु राधा का नाम नहीं आया है । २३ वें अध्याय में गीता का सार भी प्रस्तुत किया है । २७ वें अध्याय में जाम्बवती के साथ कृष्ण पाणिग्रहण का वर्णन भी है ।

ब्रह्म पुराण :

'ब्रह्म पुराण' में कृष्ण की कथा विस्तार से दी गई है । ब्रह्मपुराण में अध्याय १८० से २१२ तक में कृष्ण–चरित वर्णित है । इसमें कृष्ण की बाल एवं रासक्रीडा आदि का वर्णन किया गया है । इसके अंतिम अध्याय में आभीरों के साथ अर्जुन का युद्ध, म्लेच्छों के द्वारा यादवस्त्रीहरण, परीक्षित को राज्य देकर युधिष्ठिर का वन–गमन इत्यादि का वर्णन है ।

पद्म पुराण :

'पद्म पुराण' के पाताल खण्ड में कृष्ण चरित का वर्णन आया है । श्रीकृष्ण के महात्म्य का प्ररूपण ६९ वें अध्याय से ७२ वें अध्याय तक है । और ७३ से ८३ अध्याय तक वृन्दावन आदि का महात्म्य और कृष्ण लीला का वर्णन है ।

स्थानाभाव के कारण हमने यहाँ पुराणों में वर्णित कृष्ण के स्वरूप की अत्यन्त सांकेतिक रूपरेखा ही प्रस्तुत की है । किन्तु इस रूपरेखा से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि अधिकांश पुराणों में कृष्ण के विभिन्न स्वरूपों से संबंधित जो मान्यताएँ स्थापित की गई थीं, उनके कारण ही पुराणोत्तर कालीन धर्म, समाज, लोक–संस्कृति और साहित्य पर उनका व्यापक प्रभाव पडा है ।

हरिवंश पुराण :

यह एक वैष्णव पुराण है । तथा इसका उद्देश्य कृष्ण चरित्र का उत्कर्ष तथा उसका विस्तार करना है । सामान्यतः इसे 'महाभारत' का खिल (ऐपिडिक्स) कहा गया है । अर्थात् 'महाभारत' में अपूर्ण रह गई कुछ घटनाओं की पूर्ति के लिए यह एक 'उपसंहार' भाग की तरह लिखा गया है । इसकी गणना

कई विद्वान एक स्वतंत्र उपपुराण के रूप में भी करते हैं।[१]

'हरिवंश पुराण' में गोपाल कृष्ण सम्बन्धी सबसे अधिक कथाएँ हैं। यह पुराण गाथात्मक है। और लौकिक शैली में निर्मित है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसको ईसा की पहली शताब्दी की कृति माना है।[२] इसमें पूतना-वध, शकट-भंग, यमलार्जुन-पतन, माखन-चोरी, कालिय-दमन, धैनुक-वध, गोवर्धन-धारण-आदि लीलाओं का विस्तार से वर्णन है। विष्णु पर्व में कृष्ण जीवन की सम्पूर्ण कथा है।[३] कृष्ण के सौन्दर्य का निरूपण है।[४]

यमालार्जुन-भंग में कृष्ण व बलराम के अंगों का वर्णन है।[५] हरिवंश के कृष्ण आबालवृद्ध सभी को प्रिय हैं। ज़ब कभी गोकुल में उपद्रव होता तब गोपिकाएँ श्रीकृष्ण को सुरक्षित देखने के लिए आकुल-व्याकुल हो जाती थीं। उसमें रास-लीला का भी वर्णन है। श्रीकृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित किया गया है। जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि यादव कुल के थे और कृष्ण के अतिबन्धु थे। इसका भी इस पुराण में उल्लेख मिलता है। 'महाभारत' की लक्षाधिक श्लोक संख्या 'हरिवंश पुराण' को इसका अंश मान लेने पर ही पूरी होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा और विषय-वैविध्य की दृष्टि से पुराण एक काल में निर्मित नहीं हुए हैं, अपितु इनकी विभिन्न कालों में रचना हुई है। साम्प्रदायिक आचार्य अपनी-अपनी परम्परा के अनुकूल इन पुराणों में श्रीकृष्ण के चरित्र का निरूपण करते हैं।

: २ : बौद्ध साहित्य में कृष्ण :

बौद्ध-कृष्ण कथा 'घट जातक'में मिलती है। जातकों को कुछ विद्वान महाभारत तथा रामायण का पूर्ववर्ती मानते हैं।[६] किन्तु घट जातक को जातकों में अर्वाचीन माना गया है।[७] इसका कारण यह है कि यह जातक कृष्णकथा के विकसित रूप की ओर संकेत करता है। डॉकटर भायाणी का मत है कि घट जातक के ब्राह्मण साहित्य की किसी प्रसिद्ध कथा के प्राचीन

---

१. *'हिन्दुत्व' - रामदास गौड़, पृ. ४९।*
२. *हिन्दी साहित्य में राधा - पृ. ४१।*
३. *विष्णुपर्व अध्याय १२८।*
४. *हरिवंश पुराण अ. २०, श्लोक १९-२०-२१।*
५. *अध्याय ७, श्लोक ७।*
६- *आर. डेविडस, बुद्धिस्ट इन्डिया, पृ.८०*
७- *आर.जी. भण्डार, वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड दि माइनर रिलीजस सिस्टम्स, १९१३, पृ. ३८*

स्वरूप के रूपान्तर होने की पूर्ण सम्भावना है । किन्तु इतना ध्यान में रहे कि ईसा की पांचवीं शताब्दी के बाद कोई भी जातक कथा नहीं लिखी गई है ।[१]

'घट जातक' के अनुसार बौद्ध-कृष्ण-कथा रूप इस प्रकार है-उत्तरापथ के कंस प्रदेश के असितांजन नगर के राजा महाकंस की तीन संतानों में कंस और उपकंस दो पुत्र थे और देवगर्भा एक पुत्री थी । देवगर्भा के जन्म पर भविष्यवेत्ता ब्राह्मणों ने कहा था कि उसके गर्भ से जो पुत्र होगा वह कंस प्रदेश और कंस-वंश का नाश करेगा । महाकंस की मृत्यु के पश्चात् जब कंस राजा बना और उपकंस युवराज हुआ तो उन्होंने कुल का नाश बचाने के लिए बहिन को आजीवन कुमारी रखने का निर्णय किया और एक दण्डीय प्रासाद बनाकर उसमें देवगर्भा को अकेली रख दिया । दासी नन्दगोपा को इसकी परिचारिका तथा नन्दगोपा के पति अन्धकवृष्णि को एकदण्डीय प्रासाद का रक्षक नियुक्त किया गया ।

इसी समय उत्तर मथुरा में महासागर राजा राज्य करता था जिसके सागर और उपसागर दो पुत्र थे । उपसागर और उपकंस में बडी मित्रता थी जब सागर मथुरा का राजा बना तब उसकी अकृपा का भाजन बनने के कारण उपसागर को मथुरा त्याग कर अपने मित्र उपकंस की शरण में जाना पडा । वहाँ वह राज्यसेवा में रख लिया गया । क्रमशः उसकी दृष्टि एकदण्डीय प्रासाद पर गई और दासी नन्दगोपा के द्वारा उसे उसकी एकान्तवासिनी देवगर्भा के विषय में ज्ञात हुआ । उपसागर को देवगर्भा के प्रति एकाएक अनुराग हो गया । देवगर्भा ने उपसागर को भाई के साथ आते-जाते राजमार्ग में देखा तो वह भी उपसागर पर अनुरक्त हो गई । फिर तो नन्दगोपा की सहायता से दोंनों प्रेमियों का गुप्त-मिलन होने लगा । यह रहस्य तब प्रकट हुआ जब देवगर्भा गर्भवती हुई । विवश होकर भाइयों ने देवगर्भा का विवाह उपसागर से कर दिया । साथ ही उन्होंने निर्णय लिया कि अगर उसे पुत्री प्राप्त हो तो भले ही जीवित रहे लेकिन अगर पुत्र प्राप्त हुआ तो उसका वध कर दिया जाएगा ।

समय पर देवगर्भा को पुत्री प्राप्त हुई । भाईयों ने उत्सव मनाकर उसका नाम अंजनादेवी रखा । बहिन-बहनोई के भरण-पोषण के लिए उन्होंने गोवर्धमान नामका गाँव उन्हें दिया और उपसागर के साथ देवगर्भा वहाँ रहने लगी ।

देवगर्भा फिर गर्भवती हुई, दैव योग से उसी समय नन्दगोपा भी गर्भवती बनी । जिस दिन देवगर्भा को पुत्रोत्पत्ति हुई उसी दिन नन्दगोपा ने

---

१ *घट जातक, जर्नल आव द गुजरात रिसर्च सोसायटी, वर्ष १८, सं. ४, अक्टुबर १९५६*

पुत्री प्रसव किया । भाई पुत्र का वध करेंगे, इस डर से देवगर्भा ने अज्ञात रूप से अपना पुत्र नन्दगोपा को देकर उसकी पुत्री ले ली । इस तरह देवगर्भा को दस पुत्र हुए और नन्दगोपा को दस पुत्रियाँ हुई दोनों में अज्ञात-रूप में अदल-बदल होता रहा । देवगर्भा के सबसे बड़े पुत्र का नाम वासुदेव था अन्य पुत्र बलदेव, चन्ददेव, सूर्यदेव, अग्निदेव, वरुणदेव, अर्जुन, प्रार्जुन, धृत पंडित तथा अंकुर थे । दासी-पुत्र के नाम से ये पुत्र बढ़ने लगे ।

बड़े होकर दसों भाई बड़े दृढ-चित्त और स्वच्छन्द निकले और चारों ओर लूट-पाट करने लगे । प्रजा ने उनके उत्पात से तंग आकर राजा से निवेदन किया । एक दिन उन्होंने राजकोष लूट लिया । अंधकवृष्णि राजा के सामने प्रस्तुत किया गया । प्राण संकट में जानकर अंधकवृष्णि ने राजा से अभयवचन प्राप्त किया और सारा सत्य प्रकट कर दिया । अब कंस उपकंस को अपने प्राणों और कुल की ओर चिन्ता हुई । अमात्यों की मंत्रणा से दसों भाइयों को पकड़कर मार डालने का षडयंत्र रचा गया । चाणूर और मुष्टिक नामक मल्लों से मल्लयुद्ध करने के लिए उन्हें चुनौती भेजी गई । दसों भाई अखाड़े में प्रविष्ट हुए और देखते-देखते बलदेव ने दोनों मल्लों का काम तमाम कर दिया । कंस ने उन्हें पकड़ने की आज्ञा दी उसी क्षण वासुदेव ने उसकी ओर अपना चक्र प्रेरित किया और राजा तथा उसके भाई का सिर धड से अलग हो गया । दर्शक-प्रजा वासुदेव के चरणों पर गिर पड़ी और उसने उन्हें अपना रक्षक घोषित किया ।

इस तरह दसों भाई मामा के राज्य असितांजन नगर के अधिपति बन गए । इसके बाद वे जम्बूद्वीप की दिग्विजय के लिए निकले । अयोध्या के राजा कालसेन को विजित कर वे द्वारावती नगरी पहुँचे । वहाँ उन्हें एक अपूर्व चमत्कार दिखाई पड़ा । ज्यों ही वे द्वारावती पर आक्रमण करते वह नगरी अदृश्य हो जाती, उनके लौटते ही वह यथापूर्व दृश्यमान होने लगती । अन्त में निराश होकर दसों भाई निकटस्थ कृष्ण द्वैपायन मुनि के पास गए और सहायता की याचना की । मुनि ने चमत्कार का रहस्य बताते हुए उन्हें द्वारावती के रक्षक गर्दभ भेषधारी यक्ष के पास भेजा और उसकी अनुकम्पा से युक्ति सीखकर वे द्वारावती पर अधिकार करने में सफल हुए ।

समस्त जम्बूद्वीप को अधिकृत कर दसों भाइयों ने उसे दस भागों में बाँट लिया और एक-एक भाग पर राज्य करते हुए वे द्वारावती में रहने लगे । बाद में अंकुर ने अपना भाग बहिन को सौंप दिया और वह स्वयं व्यापार में लग गया ।

महाराज वासुदेव के बड़े पुत्र की मृत्यु हुई तो वे पुत्रशोक में उन्माद को प्राप्त होकर रात-दिन उसके पलंग का पाया पकड़कर बैठे रहने लगे। उन्हे स्वस्थ चित्त बनाने के सारे प्रयत्न विफल हो गए तब धृत पंडित ने भाई का शोक दूर करने के लिए एक युक्ति सोची। वह स्वयं पागल बन बेठा और चन्द्रमा के खरगोश की तरह रट लगाने लगा। वासुदेव बाहर निकले और भाई से बोले-अप्राप्य की आशा क्यों करते हो ? धृत पंडित ने कहा- मैं तो उस वस्तु को माँग रहा हूँ, जो दृष्टि से दिखाई पड़ रही है। तुम तो उस वस्तु के लिए शोक-मग्न हो जिसका नाम-निशान भी नहीं रह गया है। भाई की उक्ति सुनते ही वासुदेव का शोक दूर हो गया।

एक बार पुत्र प्राप्ति के विचार से वासुदेव आदि दसों भाई कृष्ण द्वैपायन मुनि की दिव्यदृष्टि की परीक्षा के लिए गए। वे साथ में एक छोटे लडके को, उसका गर्भवती स्त्री का सा पेट बनाकर, ले गए और मुनि से बोले - इसे पुत्र होगा या पुत्री ? राज-पुरुषों की दुष्टता से कुपित होकर मुनि ने कहा - इस व्यक्ति को आज से सातवें दिन लकडी की एक गाँठ पैदा होगी और उससे समस्त वासुदेव-वंश का नाश हो जाएगा। मुनि की वाणी से कृद्ध होकर कुमारों ने उसके गले में रस्सी का फँदा डालकर उसे मार डाला।

'सगर्भ' लड़के की देखरेख की जाने लगी सातवें दिन उसके पेट से एक गाँठ निकली तो उसे तुरन्त जला दिया गया और राख को नदी में बहा दिया गया। प्रवाहित होती हुई राख नदी के मुहाने पर फैल गई। थोड़े दिनों में वहाँ कुछ झाड़ियाँ उग आईं एक दिन सब भाई अन्य यदुवंशियों के साथ जलक्रीडा के लिए नदी के मुख के पास गए। खान-पान की व्यवस्था हुई। फिर नशें में चूर होकर वे एक दूसरे से कलह पर उतर आए। आस-पास की झाडियों से लकडियाँ तोड़कर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। एक ने राख से उत्पन्न हुई झाड़ी में हाथ लगाया तो उसके हाथ में एक पान आया जो देखते-देखते एक मुंगरी बन गया। यह देखकर सबने यही किया और हर एक के हाथ में एक मुंगरी हो गई। फिर आमने-सामने मुंगरियाँ चलने लगी और एक-एक करके सब धराशायी हो गए। केवल, वासुदेव, अंजना और राजपुरोहित बच गए। वे रथ में बैठकर भाग निकले।

कालमृतिका अटवीं में पहोंचने पर उनका सामना एक गंधर्व से हुआ। जो पूर्व-जन्म में मुष्टिक मल्ल था और बलदेव से अपने वैर का बदला लेने के लिए गन्धर्व बनकर यहाँ उपस्थित था। उसके युद्ध का आह्वान सुन ज्यों ही बलदेव उसकी ओर बढ़े उसने उन्हें कन्द-मूल की तरह खा डाला।

भाई को खोकर वासुदेव, अंजना और राजपुरोहित के साथ आगे बढ़े। द्वारावती की सीमा पर पहुँच कर वे एक झाडी के नीचे विश्राम करने लगे और अंजना तथा राजपुरोहित को गाँव से कुछ खाद्यान्न लाने के लिए भेज दिया। इतने में जरा नामक पारधी ने दूर से झाडी को हिलती देखकर वन्य पशु के भ्रम के भाला फेंका जिससे वासुदेव का पदतल बिंध गया उनकी आर्तवाणी सुनकर जरा उनके सामने प्रकट हुआ और पश्चात्ताप करने लगा। वसुदेव ने उसे समझाया – "पछताने की कोई बात नहीं है। मेरे पूर्वज कहते थे कि जरा से बिंध कर मेरी मृत्यु होगी।"

इतने में अंजना और राजपुरोहित गाँव से लौटे। वासुदेव ने उन्हें एक विद्या सिखाई और फिर उनका प्राणान्त हो गया।

इस प्रकार वासुदेव के कुल में अंजना के अतिरिक्त सब का नाश हो गया।

(३) जैन साहित्य में कृष्ण – जैन साहित्य की परम्परा

जैन साहित्य परम्परागत रूप में तीर्थंकर महावीर (ई. पूर्व सन् ५९९–५३७) की देशना से सम्बद्ध है। मान्यतानुसार महावीर के प्रमुख शिष्य (गणधर) गौतम इन्द्रभूति ने जिनवाणी को बारह अंग ग्रन्थों एवं चौदह पूर्वों के रूप में व्यवस्थित किया था।

जो साधु इस वाणी का अवधारण कर सका, वह 'श्रुतकेवली' कहलाया। 'श्रुत केवली' शब्द से यह ध्वनित है कि जिनवाणी प्रारम्भ में श्रुत रूप में ही सुरक्षित रही। जिस प्रकार वेद–वेदांग बहुत समय तक श्रुत रूप में रहे, लगभग वही स्थिति प्रारम्भ में जैन साहित्य की भी थी। श्रुत केवली केवल पांच ही हो सके, जिनमें अंतिम भद्रबाहु थे।[१]

भद्रबाहु (ई. पू. ३२५) के समय मगध में बारह वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा इस समय भद्रबाहु अपने साधु संघ के साथ मगध से चले गए थे। दुर्भिक्ष की इस लम्बी अवधि में सूत्र के लुप्त होते जाने का खतरा उत्पन्न हो गया। अतः दुर्भिक्ष के पश्चात् भद्रबाहु स्वामी की अनुपस्थिति में पाटलीपुत्र नगर में मुनि स्थूलभद्र की अध्यक्षता में श्रमण संघ आयोजित किया गया और इसमें लुप्त होते जा रहे सूत्रों को व्यवस्थित एवं संकलित करने का प्रयास किया गया।[१] इस प्रयास में प्रथम ग्यारह अंग ग्रन्थ ही

१– *श्वेतांबर मान्यतानुसार पाँच श्रुत केवली हैं। – प्रभव स्वामी, शभव, यशोभद्र, सम्भूत विजय, भद्रबाहु।*

दिगम्बर मान्यतानुसार– आर्यविष्णु (नन्दि), नन्दिमित्र, अपराजित, आर्य गोवर्धन, भद्रबाहु (जैन धर्म का मौलिक इतिहास : आचार्य श्री हस्तिमलजी महाराज, खण्ड २, पृ.३१५

संकलित किए जा सके ।[१] बारहवाँ अंग ग्रन्थ दृष्टिवाद तथा चौदह पूर्वों का ज्ञान निःशेष हो गया । जो अंग ग्रंथ संकलित किये जा सके, उनकी प्रामाणिकता को लेकर भी मतभेद हो गया । भद्रबाहु स्वामी के साथ मगध से जो साधु संघ चला गया उसने इसे प्रामाणिक स्वीकार नहीं किया । इस प्रकार सूत्र की प्रामाणिकता को लेकर महावीर का अनुयायी साधु संघ दो वर्गों में विभक्त हो गया । एक वर्ग–श्वेतांबर सम्प्रदाय–उपलब्ध ग्यारह अंग ग्रन्थों को प्रामाणिक स्वीकार करता है । जबकि दूसरा वर्ग (दिगम्बर सम्प्रदाय) समस्त आगम साहित्य को विच्छिन्न मानता है ।

श्वेतांबर सम्प्रदाय द्वारा मान्य आगमिक साहित्य का वर्तमान में उपलब्ध संकलन आचार्य देवर्दिगणि की अध्यक्षता में आयोजित श्रमण संघ (ई. सन्. ४५३–४६६, स्थान–वलभीनगर, काठियावाड–गुजरात) द्वारा किया गया था ।[२] इस प्रकार श्वेतांबर सम्प्रदाय द्वारा प्रामाणिक स्वीकार किया जानेवाला आगमिक साहित्य महावीर–निर्वाण के लगभग एक हजार वर्ष के बाद संकलित हुआ था ।

श्वेतांबर मूर्तिपूजक इनमें पैंतालीस ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते हैं । जबकि श्वेतांबर स्थानकवासी तथा तेरापंथी मात्र बत्तीस ग्रन्थों को प्रामाणिक रूप में स्वीकार करते हैं ।

(क) प्राकृत जैन कृष्ण–साहित्य –

ब्राह्मण धर्म के ह्रास के साथ–साथ संस्कृत भाषा का महत्त्व भी घटा और लोक–प्रचलित भाषाओं को प्रश्रय मिला । वर्धमान महावीर और गौतमबुद्ध ने अर्धमागधी प्राकृत को अपने उपदेशों का माध्यम बनाया तथा शिक्षित वर्ग में भी प्राकृत भाषा का प्रयोग होने लगा । अतः भारतीय मध्ययुग की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि तथ्यों की सम्यक् जानकारी प्राकृत वाङ्मय से जितनी सम्भव है उतनी किसी अन्य साहित्य से नहीं । प्राकृत साहित्य का इस दृष्टि से विशेष महत्त्व है ।

जैन धर्म सम्बन्धी अधिक रचनाएँ अर्धमागधी प्राकृत में उपलब्ध होती हैं । इसमें सिद्धान्त–ग्रन्थ तथा टीकाएँ, दोनों सम्मिलित हैं । विद्वानोंने

१– *जैनधर्म : श्री कैलाशचन्द शास्त्री, पृ ४०५*

२– *आगम–साहित्य के संकलन के निम्न प्रयत्न हुए–*

प्रथम – महावीर–निर्वाण के १६० वर्ष बाद (ई.सन् पूर्व २६७ में) स्थूलभद्राचार्य की अध्यक्षता में पाटलीपुत्र में

द्वितीय – ई.सन् ३२७–३४० के मध्य मथुरा में स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता में एवं तृतीय ई.सन् ४५३–४६६ के मध्य वल्लभी में आचार्य देवर्द्धिगणी की अध्यक्षता में । इस समय यही संकलन उपलब्ध माना जाता है ।

सिद्धान्त–ग्रन्थों को आगम साहित्य तथा इतर सिद्धान्त ग्रन्थों को आगमेतर साहित्य के अन्तर्गत विभाजित किया है । वर्धमान महावीर ने अर्धमागधी में अपने उपदेश दिये, इसके अनेक उल्लेख मिलते हैं । आगम ग्रन्थों का विभाजन, अंग, उपांग, सूत्र आदि भेदों में मिलता है । अंग की संख्या १२ है । इनमें गद्य–पद्य, दोनों का व्यवहार किया गया है । दृष्टान्तों द्वारा जैन धर्म की व्यवहारोपयोगी बातों या तीर्थंकरों की जीवनी, ब्राह्मण तथा अन्य धर्मों के खण्डन, निर्वाण, मोक्ष आदि का विवेचन मिलता है । उक्त अंगों के १२ उपांग हैं । इनमें मृत्यु, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, आत्मा, नक्षत्र लोक, भूगोल, स्वर्ग नरक, आदि की दृष्टान्तों सहित विवेचना की गई है ।

सिद्धान्त ग्रन्थों के अन्तर्गत छेयसुत और मूल सूत्र हैं । प्रथम की संख्या छः है । इनमें जैन धर्म सम्बन्धी आचार–व्यवहार, तप आदि का विधान प्रस्तुत किया गया है । मूल सूत्र चार हैं । इनमें व्रत, अनुशासन आदि धार्मिक विषयों का विशद वर्णन है । पइण्ण (प्रकीर्ण) ग्रन्थों की संख्या १९ है । इनमें मनुष्य के जन्म, रोग सम्बन्धी उपचार, त्याग, मरण, जीवन आदि की विधियाँ दी गई हैं । दो चूलिका सूत्र हैं । इन्हें जैन धर्म का ज्ञानकोष कहा जा सकता है । ये सभी आगम ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से भी काफी महत्त्वपूर्ण हैं । इनमें से अनेक में आलंकारिक भाषा तथा समास–शैली का प्रयोग हुआ है ।

कालान्तर में जैन–धर्म श्वेताम्बर तथा दिगम्बर – दो शाखाओं में बँट गया । श्वेताम्बर शाखा के अनुयायियों ने महाराष्ट्री तथा दिगम्बर ने शौरसेनी प्राकृत में साहित्य का निर्माण किया । इन प्राकृतों को जैन–महाराष्ट्री तथा जैन–शौरसेनी की संज्ञा दी गई है । इनमें गद्य–पद्य, सभी प्रकार की रचनाएँ लिखी गई हैं । गद्य–साहित्य का विभाजन निबंध, आख्यायिका, उपन्यास, कथा–चरित आदि विद्याओं में किया गया है ।

जैन साहित्य में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में विस्तारसे प्रकाश ड़ाला गया है । द्वादशांगी के अंतिम अंग का नाम दृष्टिवाद है । उसका एक विभाग अनुयोग है । अनुयोग के दो भेद हैं – मूल प्रथमानुयोग और गंडिकानुयोग । गंडिकानुयोग में अनेक गंडिकाएँ थीं, उनमें एक गंडिका का नाम वासुदेव गंडिका है ।[१] उस गंडिका में इस अवसर्पिणी काल के नौ वासुदेवों का विस्तार से वर्णन था । अंतिम वासुदेव श्रीकृष्ण हैं, अतः उनका भी उसमें सविस्तृत वर्णन होना चाहिए । पर खेद है कि आज वह गंडिका अनुपलब्ध

१– *(क) समवायांग सूत्र १४७*

(ख) नन्दीसूत्र सूत्र ५६, पृ० १५१– १५२, मु.हस्तीमलजी, म.सा.

है । यदि वह गंडिका उपलब्ध होती तो संभवतः श्रीकृष्ण के सम्बम्ध में अन्य अनेक अज्ञात बातें भी प्रकाश में आ सकती थीं ।

उपलब्ध जैन आगम साहित्य में श्रीकृष्ण के संबंध में सामग्री बिखरी हुई मिलती है । आगमों में यद्यपि परवर्ती साहित्य की तरह व्यवस्थित जीवन-चरित्र कहीं पर भी नहीं है तथापि जो सामग्री है उसे व्यवस्थित रूप से एक स्थान पर एकत्रित करने से कृष्ण का तेजस्वी रूप हमारे सामने आता है ।

अन्तकृतदशांग,[१] समवायांग,[२] णायाधम्मकहाओ,[३] स्थानांग,[४] निरियावलिका,[५] प्रश्नव्याकरण,[६] उत्तराध्ययन[७] आदि ग्रन्थों में उनके महान व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं । जैसे कि वे अनेक गुण-सम्पन्न और सदाचारनिष्ठ थे, अत्यन्त ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी महापुरुष थे । उन्हें ओघबली, अतिबली, महाबली, अप्रतिहत और अपराजित कहा गया है । उनके शरीर में अपार बल था । वे महा रत्नवज्र को भी चुटकी से पीस डालते थे ।

जैन दृष्टि से जो तिरसठ श्लाघनीय पुरुष हुए हैं, उन सभी का शारीरिक संस्थान अत्युत्तम था ।[८] उनके शरीर की प्रभा निर्मल स्वर्णरेखा के समान होती है ।[९]

श्रीकृष्ण का शरीर मान, उन्मान और प्रमाण में पूरा, सुजात और सर्वांग

१- *वर्ग १, अध्ययन १ में द्वारिका के वैभव व वासुदेव का वर्णन है । वर्ग ३, अ० ८ वें में कृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमार का वर्णन है । वर्ग ५ में वें द्वारिका का विनाश और कृष्ण के देहत्याग का उल्लेख है ।*

२- *श्लाघनीय पुरुषों की पंक्ति में श्रीकृष्ण का उल्लेख तथा उनके प्रतिद्वंद्वी जरासंध के वध का वर्णन है ।*

३- *प्रथम श्रुतस्कंध के अध्ययन ५ वें में थावच्चा पुत्र की दीक्षा और श्रीकृष्ण का दल-बल सहित रैवतक पर्वत पर अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ जाने का वर्णन है । अ० १६ वें में अमरकंका जाने का भी वर्णन है ।*

४- *अ० ८ वें में कृष्ण की आठ अग्र महिषियों तथा उनके नामों का वर्णन है ।*

५- *प्रथम अध्याय में द्वारिका नगरी के राजा कृष्ण वासुदेव का रैवतक पर्वत पर अर्हत् अरिष्टनेमि की सभा में जाने का वर्णन है ।*

६- *चतुर्थ आश्रव द्वार में, श्रीकृष्ण द्वारा दो अग्रमहिषियों रुक्मिणी और पद्मावती के लिए किये गए युद्धों का वर्णन है ।*

७- *अध्ययन २२ में नेमिनाथ चरित तथा कृष्ण सम्बन्धी उल्लेख है ।*

८- *प्रज्ञापना सूत्र २३ ।*

९- *हारिभद्रीयावश्यक, प्रथम भाग गा० ३९२-९३ ।*

सुन्दर था। वे लक्षणों, व्यंजनों और गुणों से युक्त थे। उनका शरीर दस धनुष लम्बा था। देखने में बड़े ही कान्त, सौम्य, सभग-स्वरूप और अत्यन्त प्रियदर्शी थे। वे प्रगल्भ, धीर और विनयी थे। सुखशील होने पर भी उनके पास आलस्य फटकता नहीं था।

उनकी वाणी गम्भीर, मधुर और प्रीतिपूर्ण थी। उनका निनाद क्रौंच पक्षी के घोष, शरद ऋतु की मेघ-ध्वनि और दुंदुभि की तरह मधुर व गम्भीर था। वे सत्यवादी थे।

उनकी चाल मदमत्त श्रेष्ठ गजेन्द्र की तरह ललित थी। वे पीले रंग के कौशेय-वस्त्र पहना करते थे। उनके मुकुट में उत्तम धवल, शुक्ल, निर्मल कौस्तुभ मणि लगा रहता था। उनके कान में कुंडल, वक्षस्थल पर एकावली हार लटकता रहता था। उनके श्रीवत्स का लांछन था। वे सुगन्धित पुष्पों की माला धारण किया करते थे।

वे अपने हाथ में धनुष रखा करते थे, वे दुर्धर धनुर्धर थे। उनके धनुष की टंकार बड़ी ही उद्घोषकर होती थी। वे शंख, चक्र, गदा, शक्ति और नन्दक धारण करते थे। ऊंची गरुड़ ध्वजा के धारक थे।

वे शत्रुओं के मद को मर्दन करने वाले, युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले, अजित और अजितरथ थे। एतदर्थ वे महारथी भी कहलाते थे।[1]

श्रीकृष्ण सभी प्रकार के गुण-सम्पन्न और श्रेष्ठ चरित्रवान थे। उनके जीवन के विविध प्रसंगों से सहज ही ज्ञात होता है कि वे प्रकृति से दयालु, शरणागत वत्सल, प्रगल्भ, धीर, विनयी, मातृ-भक्त, महान वीर, धर्मात्मा, कर्तव्य परायण, बुद्धिमान, नीतिमान तथा तेजस्वी थे।

आगमेतर साहित्य में भी श्रीकृष्ण का वही व्यक्तित्व अक्षुण्ण रहा है।

आगमेतर साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ संघदासगणी विरचित वसुदेव हिण्डी है।[2] वसुदेव श्रीकृष्ण के पिता थे। उन्हीं का भ्रमण वृत्तान्त प्रस्तुत ग्रन्थ में है। देवकी लम्बक में श्रीकृष्ण के जन्म आदि का वर्णन है। पीठिका में प्रद्युम्न, शाम्बकुमार की कथा, बलराम और श्रीकृष्ण की अग्रमहिषियों का वर्णन है। इस ग्रन्थ की शैली का आधार गुणाढ्य कृत बृहत्कथा को बतलाया गया है।[3]

१- *प्रश्नव्याकरण : अ० ४, पृ० १२१७, सुतागमे भाग १।*

२- *मुनि पुण्यविजयजी द्वारा संपादित आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला-भावनगर की ओर से सन् १९३०-३१ में प्रकाशित।*

३- *कथा सरित्सागर की भूमिका : पृ० १३; डॉ.० वासुदेवशरण अग्रवाल।*

इस ग्रन्थ में कौरव–पाण्डवों का वर्णन भी हुआ है पर विशेष नहीं। इसकी भाषा प्राचीन महाराष्ट्री प्राकृत है।[१]

"चउप्पन्न महापुरिषचरियं"[२] यह आचार्य शीलांक की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें नौ प्रतिवासुदेवों को छोड़कर शेष चउप्पन्न महापुरुषों का जीवन उटंकित किया गया है। ४९, ५०, ५१ वें अध्याय में अरिष्टनेमि, कृष्ण वासुदेव और बलदेव का चरित्र चित्रित किया गया है, भाषा साहित्यिक प्राकृत है।

भव–भावना[३] इसके रचयिता मल्लधारी आचार्य हेमचन्द्र सूरि हैं। उन्होंने वि० सं० १२२३(सन् ११७०)में प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। इसमें भगवान नेमिनाथ का चरित्र, कंस का वृत्तान्त, वसुदेव–देवकी का विवाह, कृष्ण–जन्म, कंस–वध, आदि विविध प्रसंग हैं।

कुमारपाल पडिबोह[४] (कुमारपाल प्रतिबोध) – इसके रचयिता सोमप्रभसूरि हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में मद्यपान के दुर्गुण बताते हुए द्वारिका दहन की कथा दी गई है। तप के सम्बन्ध में रुक्मिणी की कथा भी आयी है।

कण्हवचरित[५] (कृष्णचरित्र) इस ग्रन्थ के रचयिता तपागच्छीय देवेन्द्रसूरि हैं। प्रस्तुत चरित में वसुदेव के पूर्वभव, कंस का जन्म वसुदेव का भ्रमण, अनेक कन्याओं से पाणिग्रहण, कृष्ण का जन्म, कंस का वध, द्वारिका नगरी का निर्माण, कृष्ण की अग्रमहिषियाँ, प्रद्युम्न का जन्म, जरासंध के साथ युद्ध, नेमिनाथ और राजीमती के साथ विवाह की चर्चा आदि सभी विषय आए हैं। इनके अतिरिक्त भी अनेक रचनाएँ हैं।

(ख) संस्कृत जैन कृष्ण–काव्य–

जैन लेखकों ने प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में ही नहीं, संस्कृत भाषा में

१– *प्राकृत साहित्य का इतिहास – डॉ.० जगदीशचन्द जैन, पृ० ३८२।*

२– *पं० अमृतलाल मोहनलाल भोजक द्वारा संपादित – प्राकृत ग्रन्थ परिषद वाराणसी द्वारा सन् १९६१ में प्रकाशित। गुजराती अनुवाद आचार्य हेमसागरसूरि द्वारा सेठ देवचन्द लालभाई द्वारा १९६९में प्रकाशित हुआ है।*

३– *ऋषभदेवजी केशरीमलजी जैन श्वेताम्बर संस्था–रतलाम द्वारा वि. संवत् १९९२ में दो भागों में प्रकाशित।*

४– *यह ग्रन्थ गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरिज़, बड़ौदा से मुनि जिनविजयजी द्वारा सन् १९२० में संपादित होकर प्रकाशित हुआ है। इसका गुजराती अनुवाद जैन आत्मानन्द सभा की ओर से प्रकाशित हुआ।*

५– *केशरीमलजी संस्था – रतलाम द्वारा सन् १९३० में प्रकाशित।*

भी विपुल कृष्ण–साहित्य लिखा है । संस्कृत कृष्ण–साहित्य के लेखक, श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा के विद्वान रहे हैं ।

हरिवंश पुराण–[१] जैन साहित्य में कृष्ण–चरित वर्णन की दृष्टि से इस पौराणिक कृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है । उपलब्ध जैन साहित्य में यह ऐसी प्रथम कृति है जिसमें कृष्ण का सम्पूर्ण जीवनचरित व्यवस्थित व क्रमबद्ध रूप में वर्णित हुआ है । कृष्ण–चरित वर्णन की दृष्टि से बाद के जैन–साहित्यकारों के लिए यह अनुकरणीय कृति रही है । इसके रचयिता दिगम्बर आचार्य जिनसेन हैं । इसमें ६६ सर्ग हैं, और १२ हजार श्लोक हैं । इसके ३२ वें सर्ग में कृष्ण के बड़े भाई बलदेव का वर्णन है । पैंतीसवें सर्ग में कृष्ण–जन्म से लेकर अंतिम सर्ग तक श्रीकृष्ण के जीवन के विविध प्रसंग विस्तार के साथ लिखे गए हैं, जैसे कालिय–मर्दन, कंस–वध, उग्रसेन की मुक्ति, सत्यभामा से विवाह, जरासंध के पुत्र का वध, जरासंध के भय से मथुरा से प्रस्थान, द्वारका–निर्माण, रुक्मिणी का विवाह, शिशुपाल–वध, प्रद्युम्न का जन्म, जाम्बवती का विवाह, जरासंध–वध, कृष्ण की दक्षिण भारत विजय, कृष्ण की रानियों के पूर्व–भव, द्वीपायन का क्रोध, द्वारिका विनाश, बलदेव–श्रीकृष्ण का दक्षिण–गमन, कृष्ण–मरण, बलदेव–विलाप, बलदेव की जिन–दीक्षा ।

हिन्दी में जैन–धर्म में हरिवंश पुराण शीर्षक कृतियाँ इससे प्रभावित रचनाएँ हैं, जैसे शालिवाहन कृत हरिवंश पुराण, खुशालचन्द काला कृत हरिवंश पुराण आदि ।

उत्तर पुराण–[२] इसके लेखक गुणभद्र हैं । उन्होंने ७१, ७२, ७३ वें पर्व में कृष्ण–कथा का उल्लेख किया है । हरिवंश पुराण की अपेक्षा इसमें कथा बहुत ही संक्षिप्त रूप में दी गई है ।

हिन्दी में खुशालचन्द काला कृत उत्तर पुराण इसी ग्रंथ से प्रभावित रचना है ।

हरिवंश पुराण और उत्तरपुराण को आधार बनाकर अन्य दिगम्बर विद्वानों ने भी श्रीकृष्ण संबंधी साहित्य की रचना की ।

१– *श्री. पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य द्वारा संपादित और भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा सन् १९६२ में प्रकाशित ।*

२– *पं. पन्नालाल जैन, साहित्याचार्य द्वारा संपादित और भारतीय ज्ञानपीठ काशी द्वारा प्रकाशित ।*

द्विसंधान या राघवपाण्डवीय महाकाव्य–[१] इसके रचयिता धनंजय हैं। इसमें १८ सर्ग हैं। इसके प्रत्येक पद्य से दो अर्थ प्रकट होते हैं। प्रत्येक पद के एक अर्थ में रामायण और दूसरे अर्थ में महाभारत की कथा का वर्णन किया गया है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो एक अर्थ में राम तथा द्वितीय अर्थ में कृष्ण–कथा का सृजन हुआ है। ध्वन्यालोक के रचयिता आनन्दवर्धन ने निम्न शब्दों में इसकी प्रशंसा की है–

"द्विसंधाने निपुणतां सतां चक्रे धनंजयः।
यथा जातं फलं तस्य, सतां चक्रे धनंजयः॥"

प्रद्युम्न–चरित–[२] श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के जीवन–चरित पर आधारित यह संस्कृत खण्ड काव्य है। इसके रचयिता महासेनाचार्य हैं। स्व० नाथूराम प्रेमी के अभिमतानुसार इसका रचनाकाल वि.सं. १०३१–१०६६ है। इसमें श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के पराक्रम का वर्णन है। प्रद्युम्न–चरित नाम से अन्य लेखकों के भी अनेक ग्रन्थ हैं। प्रद्युम्न चरित के अनुसार कालान्तर में हिन्दी जैन–साहित्य में भी खण्ड काव्य प्रस्तुत किए गए। यथा संघारू का प्रद्युम्न–चरित तथा देवेन्द्र कीर्ति का प्रद्युम्न–प्रबन्ध आदि।

भट्टारक सकलकीर्ति ने भी जिनसेन और गुणभद्र के महापुराण आदि के अनुसार ही हरिवंश पुराण और प्रद्युम्न–चरित्र लिखे हैं। जयपुर के विभिन्न ग्रन्थ–भण्डारों में इन ग्रन्थों की कई हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं।[३]

पाण्डव पुराण–[४] इसके लेखक भण्डारक शुभचन्द्र हैं। पाण्डव पुराण की कथा हरिवंश पुराण में वर्णित पाण्डवों की कथा पर आधारित है।

भट्टारक श्री भूषण की पाण्डव पुराण भी सुन्दर रचना है। इन्हीं का लिखा हुआ एक हरिवंश पुराण भी मिलता है, जिसका रचनाकाल वि.स. १६७५ है।[५] महाकवि वाग्भट्ट का नेमिनिर्वाण काव्य, ब्रह्मचारी नेमिदत्त का नेमिनाथ पुराण (वि.सं. १५७५ के लगभग) भट्टारक धर्मकीर्ति का हरिवंश पुराण (वि.स. १६७१) भी कृष्ण संबंधी सुन्दर कृतियाँ हैं।

श्वेताम्बर परम्परा में त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र एक महत्त्वपूर्ण रचना

१– *लेखक श्री धनंजय*

२– *पं. नाथूराम प्रेमी द्वारा संपादित और हिन्दी ग्रन्थ कार्यालय–बम्बई द्वारा प्रकाशित।*

३– *जिनवाणी – जुलाई १९६९, पृ० २६*

४– *प्रो० ए० एन० उपाध्ये द्वारा संपादित होकर सन् १९५४ में जैन संस्कृति संरक्षक संघ–सोलापुर से प्रकाशित हुआ है।*

५– *(क) जैन साहित्य और इतिहास – नाथूराम प्रेमी, पृ० ३८३–८४।*
(ख) संस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला – पृ० ३६१–६२।

है । यह विराट काव्यग्रन्थ है । इसके रचयिता आचार्य हेमचन्द्र हैं जो कलिकालसर्वज्ञ के नाम से विश्रुत हैं । डॉ.० व्हीलर के अभिमतानुसार विक्रम सं० १२१६ से १२२९ के मध्य में इस ग्रन्थ की रचना हुई । इसके आठवें पर्व में भगवान नेमिनाथ, कृष्ण–बलभद्र और जरासंध का विस्तृत वर्णन मिलता है । श्री कल्याणविजयजी के शिष्य ने भी ५० दोहों में त्रिषष्टि शलाका पंचाशिका की रचना की थी और किसी अन्य अज्ञात लेखक ने भी तैंतीस गाथाओं में त्रिषष्टि शलाकापुरुष–विचार करके एक ग्रन्थ लिखा है ।

त्रिषष्टिशलाकापुरुष–चरित–

हेमचन्द्र गुजरात के बड़े प्रभावशाली जैनाचार्य थे जिनका सम्बन्ध सिद्धराज जयसिंह तथा कुमारपाल जैसे गुजरात के प्रसिद्ध राजाओं से था । इनका व्याकरण–ग्रन्थ 'सिद्धहैमशब्दानुशासन' –सिद्धराज जयसिंह को समर्पित किया गया था । कहते हैं इस व्याकरण ग्रन्थ की हाथी पर सवारी निकाली गई थी । स्वयं हेमचन्द्राचार्य भी उसी हाथी पर विराजमान कराए गए थे । इनका जन्म गुजरात के एक जैन परिवार में विक्रम संवत ११४५ में हुआ था तथा मृत्यु विक्रम संवत् १२२९ में हुई ।[१] हेमचन्द्राचार्य ने इस ग्रन्थ की रचना राजा कुमारपाल के अनुरोध पर की थी । इस चरित–ग्रन्थ में परम्परागत ६३ शलाकापुरुषो का चरित–वर्णन है । इस दृष्टि से यह महापुराण की परम्परा की रचना है । इसमें जैनों की अनेक कथाएँ, इतिहास, पौराणिक मान्यताएँ, सिद्धान्त, एवं तत्त्वज्ञान का वर्णन हुआ है । ग्रन्थ में १० पर्व हैं । प्रत्येक पर्व में अनेक सर्ग हैं । कृष्ण–चरित का वर्णन आठवें पर्व में हुआ है । इसी पर्व में नेमिनाथ, बलराम, जरासन्ध आदि का चरित–वर्णित है ।

इसकी भाषा सरल व प्रसादगुण–सम्पन्न है । गुजरात का तत्कालीन समाज कृति में अच्छी तरह प्रतिबिंबित हुआ है ।

जैन श्वेताम्बर सम्प्रदाय में यह ग्रन्थ अधिक प्रचलित रहा है । इस सम्प्रदाय के साहित्यकारों ने अपनी हिन्दी कृतियों के कथानकों के लिए आगमिक कृतियों के साथ ही इस ग्रन्थ का भी प्रमुख स्रोत ग्रन्थ के रूप में उपयोग किया है ।

(ग) अपभ्रंश जैन कृष्ण–साहित्य

अपभ्रंश साहित्य में कृष्ण–विषयक रचनाओं का स्वरूप, इयत्ता, प्रकार और महत्त्व कैसा था, यह समझने के लिए सबसे पहले उस साहित्य से संबंधित कुछ सर्वसाधारण प्रास्ताविक तथ्यों पर लक्ष्य देना आवश्यक होगा ।

१– जैन सा० का बृहद् इतिहास : भाग ६; डॉ ० गुलाबचन्द चौधरी.

समय की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य पाँचवीं–छट्ठीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक पनपा और बाद में भी उसका प्रवाह क्षीण होता हुआ भी चार सौ पाँच सौ वर्ष तक बहता रहा । इतने दीर्घ समय–पट पर फैले हुए साहित्य की हमारी जानकारी कई कारणों से अत्यन्त त्रुटित है ।

पहली बात तो यह कि नवीं शताब्दी के पूर्व की एक भी अपभ्रंश कृति अब तक हमें हस्तगत नहीं हुई है । प्रायः तीन सौ साल का प्रारंभिक कालखण्ड सारा का सारा अन्धकार से आवृत सा है । और बाद के समय में भी दसवीं शताब्दी तक की कृतियों में से बहुत स्वल्प उपलब्ध हैं ।

दूसरा यह कि अपभ्रंश की कई एक लाक्षणिक साहित्यिक विधाओं की एकाध ही कृति बची है और वह भी ठीक उत्तरकालीन है । ऐसी पूर्वकालीन कृतियों के नाम मात्र से भी हम वंचित हैं । इससे अपभ्रंश के प्राचीन साहित्य का चित्र अच्छी तरह धुंधला और कई स्थलों पर तो बिलकुल कोरा है ।

तीसरा यह कि अपभ्रंश का बचा हुआ साहित्य बहुत करके धार्मिक साहित्य है, और वह भी स्वल्प अपवादों के सिवा केवल जैन साहित्य है । जैनेतर–हिन्दू एवं बोद्ध–साहित्य की और शुद्ध साहित्य की केवल दो–तीन रचनाएँ मिली हैं । इस तरह प्राप्त अपभ्रंश साहित्य जैन–प्राय है और इस बात का श्रेय जैनियों की ग्रन्थ सुरक्षा की व्यवस्थित पद्धति को देना चाहिए । यदि ऐसी परिस्थिति न होती तो अप्रभंश साहित्य का चित्र और भी खंडित एवं एकांगी रहता ।

इस सिलसिले में एक बात का भी निर्देश करना होगा । जो कुछ अपभ्रंश साहित्य बच गया है उसमें भी बहुत थोड़ा अंश अब तक प्रकाशित हो सका है । बहुत सी कृतियाँ भाण्डारों में हस्तलिखित प्रतियों के ही रूप में होने से असुलभ हैं ।

इन सब के कारण अपभ्रंश साहित्य के कोई एकाध अंग या पहलू का भी वृत्तान्त तैयार करने में अनेक कठिनाइयाँ सामने आती हैं और फलस्वरूप वह वृत्तान्त अपूर्ण एवं त्रुटक रूप में ही प्रस्तुत किया जा सकता है ।

यह तो हुई सर्व–साधारण अपभ्रंश साहित्य की बात । फिर यहाँ पर हमारा सीधा नाता कृष्ण–काव्य के साथ है । अतः हम उसकी बात लेकर चलें ।

भारतीय साहित्य के इतिहास की दृष्टि से जो अपभ्रंश का उत्कर्ष काल है, वही कृष्ण–काव्य का मध्याह्नकाल है । संस्कृत एवम् प्राकृत में

इसी काल खण्ड में पौराणिक और काव्य–साहित्य की अनेकानेक कृष्ण–विषयक रचनाएँ हुईं । "हरिवंश" "विष्णुपुराण" "भागवत पुराण" आदि की कृष्ण कथाओंने तत्कालीन साहित्य–रचनाओं के लिए एक अक्षय मूलस्रोत का काम किया है । विषय, शैली आदि की दृष्टि से अपभ्रंश साहित्य पर संस्कृत–प्राकृत साहित्य का गहरा प्रभाव पड़ा दिखाई देता है । अतः अपभ्रंश साहित्य में भी कृष्ण–विषयक रचनाओं की दीर्घ और व्यापक परम्परा का स्थापित होना अत्यन्त सहज था । किन्तु ऊपरवर्णित परिस्थितियों के कारण हमें अपभ्रंश का एक भी शुद्ध कृष्ण–काव्य प्राप्त नहीं होता । या कहिए जैनेतर कृष्ण–काव्य प्राप्त नहीं होता । और जैन–परम्परा की जो रचनाएँ मिलती हैं वे भी बहुत करके अन्य बृहत् पौराणिक रचनाओं के एक अंश के रूप में मिलती हैं । इतना ही नहीं, उनमें से अधिकांश कृतियाँ अब तक अप्रकाशित हैं । इसका अर्थ यह नहीं होता कि अपभ्रंश का उक्त कृष्ण–साहित्य काव्य–गुणों से वंचित है । फिर भी इतना तो अवश्य है कि कृष्ण–कथा जैन साहित्य के एक अंश के रूप में रहने के कारण वह तज्जन्य मर्यादाओं से बाधित है । कृष्ण–विषयक विभिन्न अपभ्रंश रचनाओं का परिचय हम नीचे दे रहे हैं–

अपभ्रंश साहित्य में अनेक कवियों की कृष्ण–विषयक रचनाएँ हैं । जैन कवियों में नेमिनाथ का चरित्र अत्यन्त रुढ़ और प्रिय विषय था और कृष्ण–चरित्र उसी का एक अंश होने से अपभ्रंश में कृष्ण–काव्यों की कोई कमी नहीं है । यहाँ पर एक सामान्य परिचय देने की दृष्टि से कुछ प्रमुख अपभ्रंश कवियों की कृष्ण–विषयक रचनाओं का विवेचन और उनके कुछ विशिष्ट अंश प्रस्तुत किये जा रहे हैं ।

जैन कृष्ण–काव्य में स्वयम्भू, पुष्पदंत, हरिभद्र और धवल कवि की रचनाएँ प्रमुख रूप से आती हैं । कवि पुष्पदंत की कृतियों के सिवा अन्य सभी कवियों की कृतियाँ अभी तक अप्रकाशित हैं । हस्तप्रतियों के आधार पर ही उनका शोधपरक अध्ययन यहाँ पर दिया जा रहा है ।

नवीं शताब्दी के अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू के पूर्व की कृष्ण–विषयक अपभ्रंश रचनाओं के बारे में हमें जो आधार मिलते हैं वे हैं– स्वयम्भू कृत छन्दोग्रन्थ "स्वयम्भू छन्द" में दिए गए कुछ उद्धरण और नाम, भोजकृत "सरस्वतीकण्ठाभरण" में प्राप्त एकाध उद्धरण हेमचन्द्रकृत "सिद्धहैमशब्दानुशासन" के अपभ्रंश विभाग में दिये गये तीन उद्धरण और कुछ अपभ्रंश कृतियों में किया हुआ कुछ कवियों का नाम–निर्देश ।

स्वयम्भू के पुरोगामियों के चतुर्मुख कवि स्वयम्भू की ही श्रेणी का एक

समर्थ महाकवि था और संभवतः वह जैनेतर कवि था। उसने एक रामायन-विषयक और एक महाभारत-विषयक - महाकाव्यों की रचना की थी। यह मानने के लिए हमारे पास पर्याप्त आधार हैं। उसके महाभारत-विषयक काव्य में कृष्णचरित्र के भी कुछ अंश अवश्य ही आए होंगे, ऐसा हम मान सकते हैं।

चतुर्मुख के सिवा स्वयम्भू का एक और ख्यातनाम पूर्ववर्ती था। उसका नाम था गोविन्द। "स्वयम्भू छन्द" में दिये गये उसके उद्धरण हमारे लिए अमूल्य हैं। गोविन्द के जो छह छन्द स्वयम्भू ने दिये हैं वे कृष्ण के बालचरित-विषयक किसी काव्य में से लिए हुए जान पड़ते हैं। इसमें कृष्ण और राधा के प्रेम-प्रसंग विषयक छन्द भी हैं। विशेष छन्दों के कारण गोविन्द कवि का काव्य जैनेतर जान पड़ता है।

"स्वयम्भू छन्द" में गोविन्द से लिए गए मत्तविलासिनी मात्रा छन्द का उदाहरण कृष्ण बालचरित्र का एक सुप्रसिद्ध प्रसंग-विषयक है। यह प्रसंग है कालियनाग के निवासस्थान बने हुए कालिन्दी ह्रद से कमल निकाल कर भेंट करने का आदेश, जो नन्द को कंस से दिया गया था। पद्य इस प्रकार है।

"एहु विसमउ सुट्ठु आएसु
पाणंतिउ माणुसहो, दिट्ठिविसु सप्पु कालियउ।
कंसु वि मारेइ धुउ, कि कहिं गम्मउ काइंकिज्जउ॥
(स्व.छं.४-१०-१)

"यह आदेश अतीव विषम था। एक ओर था मनुष्य के लिए प्राण-घातक दृष्टिविष कालिय सर्प, और दूसरी ओर था आदेश के अनादर से कंस से अवश्य प्राप्य मृत्युदण्ड, तो अब कहाँ जाया जाए और क्या किया जाए?

गोविन्द का दूसरा पद्य राधा और कृष्ण का प्रेमातिरेक प्रकट करता है। हेमचन्द्र के "सिद्धहैम" में भी यह उद्धृत हुआ है और वहीं कुछ अंश में प्राचीनतर पाठ सुरक्षित है। "स्वयम्भू छन्द" में दिया गया गोविन्दकृत वह दूसरा छन्द इस प्रकार है। (कुछ अंश हेमचन्द्रवाले पाठ से लिया गया है- ।)

"एक्कमेक्कउं जइ वि जोएदि
हरि सुट्ठु वि आअरेण तो दि देहि जहिं कहिं वि राही।
को सक्कइ संवरेवि दड्ढणअण णेहें पलुट्ठा॥ (स्व. छं.४-१०-२)

"एक-एक गोपी की ओर हरि यद्यपि पूरे आदर से देख रहे हैं तथापि उनकी दृष्टि वहीं जाती है जहाँ कहीं राधा होती है : स्नेह से झुके हुए नयनों का संवरण कौन कर सकता है भला?

इसी भाव से संलग्न "सिद्धहैम" में उद्धृत दोहा इस प्रकार है –

"हरि नच्चाविउं प्रगणइ, विम्हइ पाडिउ लोउ ।
एवहिं राह–पओहरहं, जं भावइ तं होउ ।।"

"हरि" को अपने घर के प्रांगण में नचाकर राधा ने लोगों को विस्मय में डाल दिया । अब तो राधा के पयोधरों का जो होना हो सो हो ।"

हेमचन्द्र के "त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र" (८, ५) में किया गया वर्णन इससे तुलनीय है–गोपियों के गीत के साथ बालकृष्ण नृत्य करते थे और बलराम ताल बजाते थे ।

स्वयम्भू– नवीं शताब्दी के महाकवि स्वयम्भू के दो अपभ्रंश महाकाव्यों में से एक है – "हरिवंश पुराण" या "अरिष्टनेमिचरित्र"– (रिट्ठणेमिचरिउ) । यह अभी तक उपलब्ध सभी–सम्पूर्ण कृतियों में प्राचीनतम् अपभ्रंश कृष्ण–काव्य कहा जा सकता है । अठारह सहस्र श्लोक जितने बृहत् विस्तारयुक्त इस महाकाव्य की ११२ संधियों में से ९९ संधियाँ स्वयम्भू विरचित हैं । शेष का कर्तृत्व स्वयम्भू के पुत्र त्रिभुवन का और पंद्रहवी शताब्दी में हुए यशःकीर्ति भट्टारक का है । हरिवंश के चार काण्ड इस प्रकार हैं–यादव काण्ड (१३ संधि), कुरुकाण्ड (१९ संधि), युद्ध काण्ड (६० संधि), उत्तरकाण्ड (२० संधि) । कृष्ण–जन्म से लेकर द्वारावती–स्थापन तक का वृत्तान्त यादवकाण्ड के चार से लेकर आठ संधि तक चलता है ।

स्वयम्भू ने कुछ अंशो में जिनसेन वाले कथानक में तो वैदिक–परंपरा वाले कथानक का अनुसरण किया है ।[१]

कृष्ण–जन्म का प्रंसग स्वयम्भू ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है (संधि ४, कडवक १२) ।

"भादपद शुक्ल द्वादशी के दिन स्वजनों के अभिमान को प्रज्वलित करते हुए असुर विमर्दन जनार्दन का (मानो कंस के मस्तक–शूल का) जन्म हुआ । जो सौ सिंहों के पराक्रम से युक्त और अतुलबल था, जिनका वक्षःस्थल श्रीवत्स से लांछित था, जो शुभ लक्षणों से अलंकृत एवम् एक सौ आठ नामों से युक्त था, और जो अपनी देहप्रभा से आवास को उज्ज्वल करता था, उस मधुमथन को वसुदेवने उठाया । बलदेव ने ऊपर छत्र रखते हुए उसकी बरसात से रक्षा की । नारायण के चरणांगुष्ठ की टक्कर से

१– *मल्लदेश में मथुरा पहुँचने पर मार्ग में कृष्ण धोबी को लूंट लेता है और सैरन्ध्री से विलेपन बलजोरी से लेकर गोपसखाओं में बाँट देता है– ये दो प्रसंग हिन्दु परम्परा की ही कृष्ण–कथा में प्राप्त होते हैं और ये स्वयम्भू में भी हैं ।*

प्रतोली के द्वार खुल गए । दीपिका को धारण किया हुआ एक वृषभ उसके आगे आगे चलता था । उसके आते ही यमुना–जल दो भागों में विभक्त हो गया । हरि यशोदा को सौंपा गया । यशोदा की पुत्री को बदले में लेकर हलधर और वसुदेव कृतार्थ हुए । गोपबालिका को लाकर उन्होंने कंस को दे दिया, मगर विन्ध्याचल का अधिम यक्ष उसको उठाकर विन्ध्य में ले गया ।

जैसे गगन में बालचन्द्र का वर्धन होता है, वैसे गोष्ठ के प्रागण में गोविन्द का संवर्धन होता रहा । जैसे कमलसर में स्वपक्ष–मण्डन, निर्दूषण कोई राजहंस की वृद्धि हो वैसे ही हरिवंश–मण्डल, कंसखण्डन हरिनन्द के घर वृद्धि पाते रहे ।"

इसके बाद के कडवक में कृष्ण की उपस्थिति के कारण गोकुल की प्रत्येक विषय में जो श्रीवृद्धि एवं मथुरा की श्रीहीनता हुई उसका निरूपण है । आमने–सामने आती हुई पंक्तियों में गोकुल और मथुरा इन दोनों स्थानोंकी परस्पर विरुद्ध परिस्थितियाँ ग्रथित कर के यह निरूपण किया गया है ।

पांचवीं संधि के प्रथम कडवक में बालकृष्ण को नींद नहीं आती है और वे अकारण रोते हैं, इस बात को एक सुन्दर उत्प्रेक्षा के द्वारा प्रस्तुत की गई है । कवि बताते हैं कि कृष्ण को इस चिन्ता से नींद नहीं आती थी कि पूतना, शकटासुर, यमलार्जुन, केशी, कालिय आदि को अपना पराक्रम दिखाने के लिए कब तक प्रतीक्षा करनी होगी ।

इसके बाद के कड़वक में सोते हुए कृष्ण की घुरघुराहट के प्रचण्ड नाद का वर्णन है । पाँचवीं संधि के शेष भाग में बालकृष्ण के पूतनावध से लेकर कमल लाने के लिए कालिन्दी के हृद में प्रवेश करने तक का विषय है । छठी संधि के आरम्भ के चार कड़वक कालियमर्दन को दिए गए हैं । शेष भाग में कंसवध और सत्यभामा–विवाह है ।

"विषम लीला करता हुआ विषधर कृष्ण के प्रति लपका । कलिकाल और कृतान्त जैसे रौद्र कालिय ने कालिन्दी जितना अंग फैलाया । जलचर और जलतरंग प्रतीप गमन करने लगे । उसके फणामणि से किरणजाल का विस्फुरण होने लगा । फुत्कार से वह भुवनों के अंतराल को भर देता था । उसके मुखहर से निकलते हुए निश्वासों की झपट से पहाड़ भी काँपते थे । उसकी दृष्टि की अग्निज्वाला से देवगण भी जलते थे । उसके विष से यमुना का जल–प्रवाह दूषित हो गया । कृष्ण की अवगणना करके दर्पोद्धत कालिय ने प्रचण्ड फणामंडल को ऊँचा उठाया : मानो यमुना ने अपने भुजदण्ड पसारे । "यह कोई अजेय पन्नग उत्पन्न हुआ है । उस पर हे नाथ, निःशंक होकर प्रहार करो ।" तब उग्र विषवमन करते हुए उरगने हरि के

उरःप्रदेश को लपेट लिया । यमुनाहृद में एक मुहूर्त केशव जलक्रीड़ा करने लगे । विषधर से वेष्टित हुए वे सागर में मन्दराचल की तरह घूमने लगे ।"

"अपनी श्याम कान्ति से नारायण कालिय को देख न पाये । उनको भ्रान्ति हो गई इससे नाग चीन्हा न गया । इतने में कालिय के फन के मणिगण झलमलाए । इस उद्योत से नाग को अच्छी तरह पहचान लिया । "गुणों" से कौन भला बन्धन नहीं पाता ? अब सहस्रों संग्रामों के वीर मधुमथन ने पाँच नखों से उज्जवल बनी हुई पाँच अंगुली वाले अपने भुजदण्ड पसारे । मानो वे फणामणि से स्फुरित बड़े भुजंग हों । इनसे उन्होंने कालिय के फणामण्डल को पकड़ लिया । अब कौन-सा हाथ है और कौन-सा सर्प इसका पता नहीं चलता था ।"

पुष्पदंत-

चतुर्मुख और स्वयम्भू के स्तर के अपभ्रंश महाकवि पुष्पदंत रचित "महापुराण" (ई० ९५७-९६५) की सन्धि ८१ से ९२ जैन हरिवंश की कथा से संबंधित है । सं.८४ में वासुदेव जन्म का, ८५ में नारायण की बालक्रीड़ा का और ८६ में कंस एवं चाणूर के संहार का विषय है । पुष्पदन्त के युद्धवर्णन-सामर्थ्य के अच्छे उदाहरण ८८-५ से लेकर १५ तक (कृष्ण-जरासंध युद्ध) हम पाते हैं ।

हरिभद्र और धवल-

पुष्पदन्त के बाद अपभ्रंश कृष्ण-काव्य की परम्परा में दो और कवि उल्लेखनीय हैं । वे हैं हरिभद्र और धवल । धवल की कृति अभी तो अप्रकाशित है । हस्तिलिखित प्रति के आधार पर यहाँ उसका परिचय दिया जाता है ।

हरिभद्र-

हरिभद्र का "नेमिनाहचरिउ" (११६० में रचित) अधिक विस्तार का महाकाव्य है । उनसे ६५३ छन्द समग्र कृष्णचरित को-कृष्ण जन्म से लेकर द्वारावतीदहन तक - दिया गया है । शताधिक छन्दों में कृष्णजन्म से कंसवध तक की कथा संक्षेप में दी गई है ।

धवल-

कवि धवल का "हरिवंशपुराण" ग्यारहवीं शताब्दी के बाद की रचना है । "हरिवंशपुराण" की भाषा में आधुनिकता के चिह्न सुस्पष्ट हैं । उसके कई पदों एवं प्रयोगों में हम आदिकालीन हिन्दी के संकेत पाते हैं ।

धवलकृत हरिवंश की ५३, ५४ और ५५ इन तीन सन्धियों में कृष्णजन्म से लेकर कंसवध तक की कथा है । कथा के निरूपण में और वर्णनों में बहुत कुछ रुढ़िका ही अनुसरण है ।

नवजात कृष्ण को नन्द–यशोदा के करों में वसुदेव से सौंपने का प्रसंग इस प्रकार अंकित किया गया है:–

"नन्द के वचन सुनकर वसुदेव गद्‌गद् कण्ठ से कहने लगा, –" तुम मेरा सर्वोत्तम इष्ट मित्र, स्वजन, सेवक, एवं बान्धव हो । बात यह है कि जो जो दुर्जय, अतुलबल, तेजस्वी, पुत्रों ने मेरे यहाँ जन्म पाया उन सबकी कंस ने मेरे पास से कपटभाव से वचन लेकर हत्या कर दी । तब इष्टवियोग के दुःख से तंग होकर इस बार मैं तुम्हारा आश्रय ढूँढ़ता आया हूँ ।"

बारबार नन्द के करों को ग्रहण करते वसुदेव ने कहा– "यह मेरा पुत्र तुम्हें अर्पण कर रहा हूँ । अपने पेट के पुत्र की नाईं उसकी देखभाल करना । कंस के भय से उसकी रक्षा करना । कंस ने सभी पुत्रों की हत्या करके बार बार रुलाया है । देवनियोग हो तो यह बच्चा उबरेगा । यह हमारा इकलौता है, यह जानकर इसको सँभालना ।" (५३–१४)

५३–१७ में नैमित्तिक बालकृष्ण के असामान्य गुणलक्षणों का वर्णन करता है । लोग बधाई देने को आते हैं । यहाँ पर जन्मोत्सव में ग्वालिनों के नृत्य के वर्णन में धवल ने अपनी समसामयिक ग्रामीण वेशभूषा का कुछ संकेत किया है :–

"कासु वि खवरी उप्परि नेती कासु वि लोई लक्खारती ।
कासु वि सीसे लिंज धराली कासु वि चुण्णी फुल्लडियाली ।।
कासु वि तुंगु मउड सुविसुट्ठउ ओढणु वोडु कह मि मंजिट्ठउ
सव्वहं सीसे स्तें बद्धा रीरी घडिय कडाकडि मुद्दा ।"

"किसी के कंधे पर नेती (नेत्र वस्त्र की साड़ी) थी तो किसी की लोई कमली (लाल जैसी रक्तवर्ण थी) सिर पर धारदार "लिंज" (नीज़) थी तो किसी की चुनरी फूलवाली थी । किसी का मौर ऊँचा और दर्शनीय था तो किसी की ओढ़नी और बोड़ (एक प्रकार की कंचुकी) मजीठी थे । सभी के सिर पर लाल (वस्त्र खण्ड) बंधा था और वे पीतल के कड़े कडियाँ और मुद्रिका पहने हुई थीं ।"

नन्द–यशोदा और गोपियों का दुलारा बालकृष्ण भागवतकार से लेकर असंख्य कवियों का काव्य–विषय रहा है, जिसकी पराकाष्ठा हम सूर में देखते हैं ।

लगभग आठवीं शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के अपभ्रंश साहित्य के कृष्ण-काव्य की इस झाँकी से प्रतीत होगा कि उस साहित्य में कृष्ण-चरित के निरूपण की (और विशेष रूप से बालचरित्र के निरूपण की) एक बलिष्ठ परम्परा स्थापित हुई थी। इसमें भावालेखन एवं वर्णन-शैली की दृष्टि से उल्लेखनीय गुणवत्ता का दर्शन हम पाते है।

कृष्ण-काव्य की सुदीर्घ और विविधभाषी परम्परा के कवियों में स्वम्भू और पुष्पदन्त निःसन्देह उच्च स्थान के अधिकारी हैं। और इस विषय में बाद में सूरदास आदि जो सिद्धि-शिखर पर पहुँचे हैं उसके लिए समुचित पूर्वभूमिका तैयार करने का बहुत कुछ श्रेय अपभ्रंश कवियों को देना होगा। भारतीय साहित्य में कृष्ण-काव्य की इस दीप्तिमान परम्परा में एक ओर संस्कृत-प्राकृत का कृष्ण-काव्य है तो दूसरी ओर आधुनिक भाषाओं का कृष्ण-काव्य। इन दोनों के बीच अपभ्रंश का कृष्ण-काव्य एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और निजी वैशिष्ट्य एवं व्यक्तित्व से युक्त कड़ी के रूप में विद्यमान है।

निष्कर्ष-

वैदिक साहित्य से अपभ्रंश साहित्य तक कृष्ण के स्वरूप का जो वर्णन भिन्न-भिन्न महर्षियों एवं कवियों ने किया है, उसका संक्षिप्त परिचय हमने ऊपर दिया है। इस परिचय से हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के स्वरूप विकास की पृष्ठभूमि स्पष्ट हो जाती है और हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति की जैन, बौद्ध और वैदिक - इन तीनों धाराओं ने कर्मयोगी श्रीकृष्ण के जीवन को विस्तार और संक्षेप - दोनों में युगानुकूल भाषा में चित्रित किया है। जहाँ वैदिक धर्म के अनुसार विष्णु का पूर्ण अवतार मानकर श्रद्धा और भक्ति से कृष्ण की स्तवना की है, वहाँ जैन परम्परा ने भावि तीर्थंकर और श्लाघनीय पुरुष मानकर उनका गुणानुवाद किया है तथा बौद्ध परम्परा ने भी उन्हें बुद्ध का अवतार मानकर उनकी उपासना की है।

जैन साहित्य के अनुसार कृष्ण देवकी के पुत्र थे जिन्हों ने द्वारका में जाकर एक नए राज्य की स्थापना की। वे असाधाराण पराक्रमी व अद्वितीय वीर पुरुष थे। उन्होंने अपने बाहुबल से द्वारका में अपने कुल का राज्य स्थापित किया था तथा अपने समय के राजाओं में एवं समाज में श्रेष्ठता अर्जित की। उनके असाधारण पराक्रम ने उन्हें जनमानस में पूजनीय बना दिया।

कृष्ण के असाधारण पराक्रम व वीरत्व की पूजा को शनैः शनैः प्रतिष्ठा प्राप्त होती गई तथा उनकी अपने जीवनकाल में ही लोग, पूजा करने लगे

थे । कालान्तर में द्वारकाधीश कृष्ण वासुदेव की पूजा करने वालों का एक प्रभावशाली सम्प्रदाय अस्तित्व में आया जिसके माध्यम से कृष्ण की पूजा और भी लोकप्रिय होती गई ।

कृष्ण, हिंसापूर्ण वैदिक यज्ञों के विरोधी थे, और इसके स्थान पर आत्मयज्ञों की विचारधारा को उन्होंने पोषित किया । इस विचारधारा के अनुसार तप, त्याग, हृदयकी सरलता, सत्य वचन तथा अहिंसा आदि के आचरण द्वारा आत्मशुद्धि का मार्ग ही धर्म माना गया । इस विचारधारा की शिक्षा कृष्ण ने अपने चचेरे भाई अरिष्टनेमि से प्राप्त की थी ।

जैन साहित्य में कृष्ण, श्रेष्ठ पुरुष वासुदेव हैं और साथ ही वे बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के समकालीन हैं । वे नियमित रूप से उपदेश सभाओं में उपस्थित होने वाले धर्मप्राण पुरुष हैं । समस्त जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप इन्हीं दो तथ्यों की पृष्ठभूमि में चित्रित हुआ है ।

द्वितिय अध्याय

"हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण–कथा का स्वरूप, उसकी रूपरेखा तथा प्रमुख घटनाएँ"

भूमिका : कृष्ण की लीलाएँ प्रत्येक युग में नये–नये सन्दर्भों और रहस्यों की सृष्टि करती रही हैं । कृष्ण ने एक अकल्पनीय गति और अप्रतिहत प्रवाह से अपने समय की गतिविधियों को संचालित किया था । उस समय बड़े–बड़े अत्याचारी – कंस, जरासंध, शिशुपाल और दुर्योधन जैसे दुर्धर्ष और दुर्दमनीय योद्धा विभिन्न क्षेत्रों पर अपना आंतक जमाए थे । कृष्ण ने इन सबकी शक्ति और गति को अपनी विलक्षण प्रभविष्णुता और तेजस्विता से बाधित किया था । बड़े–बड़े शत्रुओं को उन्होंने अपनी असीम निजी शक्ति के बल पर परास्त किया था ।

इस अध्ययन में हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण–कथा का स्वरूप, उसकी रूपरेखा तथा कृष्ण के जीवन से संबंधित प्रमुख घटनाओं का वर्णन भी दिया गया है; जिनको आधार मानकर बाद में विपुल हिन्दी जैन साहित्य की रचना की गई । ये घटनाएँ कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन की कथा प्रदर्शित करती हैं तथा बताती हैं कि किस प्रकार अपने अदम्य साहस और सद्‌गुणों के बल पर कृष्ण विजयी हुए । उनके जीवन की विभिन्न घटनाएँ, उनके विभिन्न स्वरूपों को उद्‌घाटित करती हैं । उनकी बालपन की घटनाएँ जो गोकुल और वृन्दावन में घटित हुईं, उनके सुन्दर, प्रतिभाशाली, चमत्कारी, रसिक और रोचक व्यक्तित्व को प्रकट करती हैं । उनका दूसरा रूप मथुरा का है जहाँ उन्होंने कंस और उनके साथियों का वध करके वहाँ के जन–समाज को अत्याचार से मुक्त किया और उग्रसेन को राज्य दिया । उनका तीसरा स्वरूप हस्तिनापुर और कुरुक्षेत्र का है, जहाँ कृष्ण ने कौरवों और पाण्डवों के बीच समझौता करने का प्रयत्न किया, पाण्डवों के दूत बने और दुर्योधन के न मानने पर कुरुक्षेत्र में रण का शंखनाद घोषित किया । उनका चौथा रूप द्वारका का है, जहाँ उन्होंने यादवों को सुसंगठित और व्यवस्थित कर एक उत्तम राज्य का निर्माण किया और वहीं से यादवों के पारस्परिक लड़ाई–झगड़े से क्षुब्ध होकर कृष्ण ने वन को प्रयाण किया और जराकुमार के शराघात के परिणाम स्वरूप अपनी लोक–लीला समाप्त की ।

जैन कथाओ में ये सभी प्रसंग किन-किन रूपों में आए हैं, उन्हीं का अनुशीलन करना हमारा प्रतिपाद्य विषय है । इस संदर्भ में हम सबसे पहले जैन कृष्ण-कथा का स्वरूप तथा रूपरेखा प्रस्तुत कर रहै हैं, तत्पश्चात् कृष्ण के जीवन से संबंधित प्रमुख घटनाओं का विवरण दिया गया है । इन घटनाओं का आधार आचार्य जिनसेन कृत "हरिवंश पुराणं" तथा खुशालचन्द काला कृत एवं शीलिवाहन कृत "हरिवंश पुराण" (हिन्दी) है ।

जैन कृष्ण-कथा का स्वरूपः-

वैदिक परम्परा की तरह जैन-परम्परा में भी कृष्णचरित्र पुराणकथाओं का ही एक अंश था । जैन कृष्णचरित्र वैदिक परम्परा के कृष्णचरित्र का ही सम्प्रदायानुकूल रूपान्तर था । यही परिस्थिति राम कथा आदि कई अन्य पुराणकथाओं के बारे में भी है । जैन-परम्परा इतर परम्परा के मान्य कथास्वरूपों में व्यावहारिक दृष्टि से एवं तर्कबुद्धि की दृष्टि से कुछ असंगतियाँ बताकर उसे मिथ्या कहती है और उससे भिन्न स्वरूप की कथा जिसे वह सही समझती है उसको प्रस्तुत करती है । तथापि जहाँ तक सभी प्रमुख पात्रों का, मुख्य घटनाओं का और उनके क्रमादि का सम्बन्ध है, वहाँ सर्वत्र जैन-परम्परा ने हिन्दू परम्परा का ही अनुसरण किया है ।

जैन कृष्णकथा में भी प्रमुख प्रसंग, उनके क्रम, एवं पात्र के स्वरूप आदि दीर्घकालीन परम्परा से नियत थे । अतः जहाँ तक कथानक का सम्बन्ध है, जैन कृष्ण-कथा पर आधारित विभिन्न कृतियों में परिवर्तनों के लिए स्वल्प अवकाश रहता था । फिर भी कुछ छोटी-मोटी तफसीलों के विषय में, कार्यों के प्रवृत्ति-निमित्तों के विषय में एवं निरूपणों की इयत्ता के विषय में एक कृति और दूसरी कृति के बीच पर्याप्त मात्रा में अन्तर रहता था । दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परा के कृष्ण चरित्रों की भी अपनी अपनी विशिष्टताएँ हैं । और उनमें से कोई एक रूपान्तर के अनुसरणकर्ताओ में भी आपस आपस में कुछ भिन्नता देखी जाती है । मूल कथानक को कुछ विषयों में सम्प्रदायानुकूल करने के लिए कोई सर्वमान्य प्रणालिका के अभाव में जैन रचनाकारों ने अपने अपने मार्ग लिये हैं ।

जैन कृष्णचरित्र के अनुसार कृष्ण न तो कोई दिव्य पुरुष थे, न तो ईश्वर के अवतार या "भगवान स्वयं" । वे मानव ही थे, हालाँकि एक असामान्य शक्तिशाली वीर पुरुष एवं सम्राट थे । जैन पुराणकथा के अनुसार प्रस्तुत कालखण्ड में तिरसठ महापुरुष या शलाका-पुरुष हो गए : चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नव वासुदेव (या नारायण), नव, बलदेव और नव प्रतिवासुदेव । वासुदेवों की समृद्धि, सामर्थ्य एवं पदवी चक्रवर्तियों

से आधी होती थीं । प्रत्येक वासुदेव तीन खण्डों पर शासन चलाता था । वह अपने प्रतिवासुदेव का युद्ध में संहार करके वासुदेवत्व प्राप्त करता था और इस कार्य में प्रत्येक बलदेव उसकी सहाय करता था । राम, लक्ष्मण और रावण क्रमशः आठवें, बलदेव, वासुदेव और प्रतिवासुदेव थे । नवीं त्रिपुटी थी कृष्ण, बलराम और जरासंध की ।

तिरसठ महापुरुषों के चरित्रों को ग्रथित करने वाली रचनाओं को "त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित" या "त्रिषष्टिमहापुरुष चरित" ऐसा नाम दिया जाता था । जब जब प्रतिवासुदेवों की गिनती नहीं की जाती थी तब ऐसी रचना "चतुष्पंचाशत्महापुरुष चरित" कहलाती थी । दिगम्बर परम्परा में इसको "महापुराण" भी कहा जाता था । महापुराण में दो भाग होते थे–आदिपुराण और उत्तर पुराण । आदिपुराण में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती के चरित्र दिये जाते थे । उत्तरपुराण में शेष महापुरुषों के चरित्र ।

सभी महापुरुषों के चरित्रों का निरूपण करनेवाली ऐसी रचनाओं के अलावा कोई एक तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, आदि के चरित्र को लेकर भी कृतियाँ रची जाती थीं । ऐसी रचनाएँ "पुराण" नाम से ख्यात थीं । कृष्ण वासुदेव का चरित्र तीर्थंकर अरिष्टनेमि के चरित्र के साथ संलग्न था । उनके चरित्रों को लेकर की गई रचनाएँ "हरिवंश" या " अरिष्टनेमि पुराण" के नाम से ज्ञात हैं ।

जहाँ कृष्ण वासुदेव और बलराम की कथा स्वतंत्र रूप से प्राप्त है वहाँ भी वह अन्य एकाधिक कथाओं के साथ संलग्न तो रहती थी ही । जैन कृष्ण–कथा नियम से ही अल्पाधिक मात्रा में अन्य तीनचार विभिन्न कथासूत्रों के साथ गुंफित रहती थी । एक कथासूत्र होता था कृष्णपिता वसुदेव के भ्रमणों की कथा । दूसरा बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमी का चरित्र । तीसरा कथासूत्र होता था पाण्डवों का चरित्र । इनके अतिरिक्त मुख्य मुख्य पात्रों के भवान्तरों की कथाएँ भी दी जाती थीं । वसुदेव ने एक सौ बरस तक विविध देशों में भ्रमण करके अनेकानेक मानव–कन्याएँ और विद्याधर कन्याएँ प्राप्त की थीं । उसकी रसिक कथा "वसुदेवहिण्डि" के नाम से जैन–परम्परा में प्रचलित थी । वास्तव में यह गुणाढ्य की लुप्त "बृहत्कथा" का ही जैन–रूपान्तर था । कृष्ण–कथा के प्रारम्भ में वसुदेव का वंशवर्णन और चरित्र आता है । वहाँ पर वसुदेव की भ्रमणकथा भी छोटे–मोटे रूप में दी जाती थी ।

अरिष्टनेमि कृष्ण वासुदेव के चचेरे भाई थे । बाईसवें तीर्थंकर होने से उनका चरित्र जैनधर्मियों के लिए सर्वाधिक महत्त्व रखता है । अतः अनेक

बार कृष्णचरित्र नेमिचरित्र के एकदेश के रूप में मिलता है । इसके अलावा पाण्डवों के साथ एवं पाण्डव–कौरव–युद्ध के साथ कृष्ण का घनिष्ठ संबंध होने से कृष्ण के चरित्र के साथ महाभारत की कथा भी ग्रथित होती थी । फलस्वरूप ऐसी रचनाओं का "जैन महाभारत" ऐसा भी एक नाम प्रचलित था । इस प्रकार सामान्यतः जिस अंश को प्राधान्य दिया गया हो उसके अनुसार कृष्णचरित्र विषयक रचनाओं का "अरिष्टनेमिचरित्र" या "नेमिपुराण", "हरिवंश", "पाण्डव पुराण", "जैन महाभारत" – आदि नाम दिये जाते थे । किन्तु इस विषय में एकवाक्यता नहीं है । अमुक विशिष्ट अंश को सामान्य प्राधान्य देनेवाली कृतियों के भिन्न भिन्न नाम भी मिलते हैं । जैसे कि आरम्भ में सूचित किया था, जैन पुराणकथाओं का स्वरूप पर्याप्त मात्रा में रुढिबद्ध एवम् परंपरानियत था । दूसरी ओर हिन्दी कृतियों में भी विषय, वस्तु आदि में संस्कृत, – प्राकृत तथा अपभ्रंश की पूर्व प्रचलित रचनाओं का अनुसरण होता था । इसलिए यहाँ पर हिन्दी कृष्ण–काव्य का विवरण एवं आलोचना प्रस्तुत करने से पहले जैन–परम्परा की मान्य कृष्ण–कथा की एक सर्वसाधाराण रूपरेखा प्रस्तुत करना आवश्यक होगा । इससे उत्तरवर्ती आलोचना आदि के लिए आवश्यक संदर्भ सुलभ हो जाएँगे । नीचे दी गई रूपरेखा सन् ७८४ में दिगम्बराचार्य जिनसेन रचित संस्कृत "हरिवंश पुराण" के मुख्यतः ३३, ३४, ३५, ३६, ४० और ४१ सर्गो पर आधारित है । श्वेताम्बराचार्य हेमचन्द्र के सन् ११६५ के करीब रचे हुए संस्कृत "त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित" के आठवें पर्व में भी सविस्तार कृष्ण–चरित है । जिनसेन के वृत्तान्त से हेमचन्द्र का वृत्तान्त कुछ भेद रखता है । कुछ महत्त्व की विभिन्नताएँ पाद–टिप्पणी में सूचित की गई हैं । हरिवंशपुराण का संकेत "हपु०" और त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र" का संकेत "त्रिच०" रखा है । कृष्णचरित्र अत्यन्त विस्तृत होने से यहाँ पर उसकी सर्वांगीण समालोचना करना संभव नहीं है । जैन कृष्णचरित के स्पष्ट रूप से दो भाग किए जा सकते हैं । कृष्ण और यादवों के द्वारावती प्रवेश तक एक भाग और शेष चरित का दूसरा भाग । पूर्वभाग में कृष्ण जितने केन्द्रवर्ती हैं उतने उत्तर भाग में नहीं हैं ।

(२) जैन कृष्ण–कथा की रूपरेखा–

हरिवंश में जो कि हरिराजा से शुरु हुआ था, कालक्रम से मथुरा में यदु नामक राजा हुआ । उसके नाम से उसके वंशज यादव कहलाए । यदु का पुत्र नरपति हुआ और नरपति के पुत्र शूर और सुवीर । सुवीर

के मथुरा के राज्य को देखकर शूर ने कुशल देश में शौर्यपुर बसाया। शूर के अन्धकवृष्णि आदि पुत्र हुए और सुवीर के भोजकवृष्णि आदि। अन्धकवृष्णि के दस पुत्र हुए, उनमें सबसे बड़ा समुद्रविजय और सबसे छोटा वसुदेव था। ये सब दशार्ह नाम से ख्यात हुए। कुन्ती और माद्री ये दो अन्धकवृष्णि की पुत्रियाँ थीं। भोजकवृष्णि के उग्रसेन आदि पुत्र थे। क्रम से शोर्यपुर के सिंहासन पर समुद्रविजय और मथुरा के सिंहासन पर उग्रसेन आरुढ़ हुए।

अतिशय सौन्दर्य युक्त वसुदेव से मन्त्रमुग्ध होकर नगर की स्त्रियाँ अपने घरबार की उपेक्षा करने लगीं। नागरिकों की शिकायत से समुद्रविजय ने युक्ति-पूर्वक वसुदेव के घर से बाहर निकलने पर नियन्त्रण लगा दिया। वसुदेव को एक दिन अकस्मात् इसका पता लग गया। उसने प्रच्छन्न रूप से नगर छोड़ दिया। जाते-जाते उसने लोगों में ऐसी बात फैलाई कि वसुदेव ने तो अग्निप्रवेश करके आत्महत्या कर ली। बाद में वह कई देशों में भ्रमणा करके और बहुत सी मानव कन्याएँ एवं विद्याधर कन्याएँ प्राप्त कर एक सौ वर्ष के बाद अरिष्टपुर की राजकुमारी रोहिणी के स्वयंवर में आ पहुँचा। रोहिणी ने उसका वरण किया। वहाँ आये समुद्रविजय आदि बन्धुओं के साथ उसका पुनर्मिलन हुआ। वसुदेव को रोहिणी से राम नामक पुत्र हुआ। कुछ समय के बाद वह शौर्यपुर में वापस आ गया और वहीं धनुर्वेद का आचार्य बनकर रहा। मगधराज जरासंध ने घोषणा कर दी कि जो सिंहपुर के राजा सिंहरथ को जीवित पकड़ कर उसे सौंपेगा उसको अपनी कुमारी जीवयशा एवं मनपसंद एक नगर दिया जाएगा। वसुदेव ने यह कार्य उठा लिया। संग्राम में सिंहरथ को वसुदेव के कंस नामक एक प्रिय शिष्य ने पकड़ लिया। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार जीवयशा देने के पहले जरासंध ने जब अज्ञातकुल कंस के कुल की जाँच की तब ज्ञात हुआ कि वह उग्रसेन का ही पुत्र था। जब वह गर्भ में था तब उसकी जननी को पति-मांस खाने का दोहद हुआ था। पुत्र कहीं पितृघातक होगा इस भय से जननी ने जन्मते ही पुत्र को एक कांसे की पेटी में रखकर यमुना में बहा दिया। एक कलालिन ने पेटी में से बालक को निकाल कर अपने पास रख लिया था। कंस नामक यह बालक जब बड़ा हुआ तब उसकी उग्र कलह प्रियता के कारण कलालिन ने उसको घर से निकाल दिया था। तब से वह धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करता हुआ वसुदेव के पास ही रहता था और उसका बहुत प्रीतिपात्र बन गया था। इसी समय कंस ने भी पहली बार अपना सही वृत्तान्त जाना। उसने पिता से अपने बैर का बदला लेने के लिए जरासंध से

मथुरा नगर माँग लिया। वहीं जाकर उसने अपने पिता उग्रसेन को परास्त किया और उसको बन्दी बनाकर दुर्ग में द्वार के समीप रख दिया। कंस ने वसुदेव को मथुरा बुला लिया। और गुरुदक्षिणा के रूप में अपनी बहन देवकी उसको दी।

देवकी के विवाहोत्सव में जीवयशा ने अतिमुक्तक मुनि का अपराध किया।[१] फलस्वरूप मुनि ने भविष्यकथन के रूप में कहा कि जिसके विवाह में मत्त होकर नाच रही हो उसके ही पुत्र से तेरे पति का एवं पिता का विनाश होगा। भयभीत जीवयशा से यह बात जानकर कंस ने वसुदेव को इस वचन से प्रतिबद्ध कर दिया कि प्रत्येक प्रसूति के पूर्व देवकी को जाकर कंस के आवास में ठहरना होगा।[२] बाद में कंस का मलिन आशय ज्ञात होने पर वसुदेव ने जाकर अतिमुक्तक मुनि से जान लिया कि प्रथम छः पुत्र चरम शरीरी होंगे इसलिए उनकी अपमृत्यु नहीं होगी और सातवाँ पुत्र वासुदेव बनेगा और वह कंस का घातक होगा। इसके बाद देवकी ने तीन बार युगल पुत्रों को जन्म दिया। प्रत्येक बार इन्द्राज्ञा से नैगम देव ने उनको उठाकर भद्दिलनगर के सुदृष्टि श्रेष्ठी की पत्नी अलका के पास[३] रख दिया। और अलका के मृतपुत्रों को देवकी के पास रख दिया। इस बात से अज्ञात प्रत्येक बार कंस इन मृत पुत्रों को पछाड़ कर समझता था कि मैंने देवकी के पुत्रों को मार डाला।

देवकी के सातवें पुत्र कृष्ण का जन्म सात मास के गर्भावास के बाद भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को रात्रि के समय हुआ।[४] बलराम नवजात शिशु को उठाकर घर से बाहर निकल गया। घनघोर वर्षा से उसकी रक्षा करने के लिए वसुदेव उस पर छत्र धरकर चलता था।[५] नगर के द्वार कृष्ण के चरण

१– *दीक्षा लेने के पूर्व अतिमुक्तक कंस का छोटा भाई था। हपु. के अनुसार जीवयशा ने हँसते–हँसते, अतिमुक्तक मुनि के सामने देवकी का रजोमलिन वस्त्र प्रदर्शित करके उनकी अशातना की। त्रिच० के अनुसार मदिरा के प्रभाववश जीवयशा ने अतिमुक्तक मुनि के गले लग कर अपने साथ नृत्य करने को निमंत्रित किया।*

२– *त्रिच० के अनुसार जन्मते ही शिशु अपने को सौंप देने का वचन कंस ने वसुदेव से ले लिया।*

३– *त्रिच० में सेठ सेठानी के नाम नाग और सुलसा हैं।*

४– *त्रिच० के अनुसार कृष्ण जन्म की तिथि और समय श्रावणकृष्णाष्टमी और मध्यरात्रि है।*

५– *त्रिच० के अनुसार देवकी के परामर्श से वसुदेव कृष्ण को गोकुल ले चला। इसमें कृष्ण पर छत्र धरने का कार्य उनके रक्षक देवियाँ हैं।*

स्पर्श से खुल गए ।[1] उसी समय कृष्ण को छींक आई । यह सुनते ही वहीं बन्धन में रखे हुए उग्रसेनने आशिष का उच्चारण किया । वसुदेव ने उसको यह रहस्य गुप्त रखने को कहा । कृष्ण को लेकर वसुदेव और बलराम नगर से बाहर निकल गए । देदीप्यमान शृंगधारी दैवी वृषभ उनको मार्ग दिखाता उनके आगे-आगे दौड़ रहा था । यमुना नदी का महाप्रवाह कृष्ण के प्रभाव से विभक्त हो गया । नदी पार करके वसुदेव वृन्दावन पहुँचा और वहाँ गोष्ठ में बसे हुए अपने विश्वस्त सेवक नन्दगोप और उसकी पत्नी यशोदा को कृष्ण को सौंपा । उनकी नवजात कन्या अपने साथ लेकर वसुदेव और बलराम वापस आए । कंस प्रसूति की खबर पाते ही दौड़ता आया । कन्या जान कर उसकी हत्या तो नहीं की फिर भी उसके भावी पति की ओर से भय होने की आशंका से उसने उसकी नाक को दबा कर चिपटा कर दिया ।

गोप गोपीजनों के लाड़ले ब्रज में वृद्धि पाने लगे । कंस के ज्योतिषी ने बताया कि तुम्हारा शत्रु कहीं पर बड़ा हो रहा है । कंस ने अपनी सहायक देवियों को आदेश दिया कि वे शत्रु को ढूँढ निकालें और उसका नाश करें । इस आदेश से एक देवी ने भीषण पक्षी का रूप लेकर कृष्ण पर आक्रमण किया । कृष्ण ने उसकी चोंच जोर से दबाई तो वह भाग गई ।[2] दूसरी देवी पूतना का रूप धारण कर अपने विषलिप्त स्तन से कृष्ण को स्तनपान कराने लगी । तब देवों ने कृष्ण के मुख में अतिशय दबाव प्रदान किया । इससे पूतना का स्तनाग्र इतना दब गया कि वह भी चिल्लाती भाग गई । तीसरी शकट रूपधारी पिशाची जब धावा मारती आई तब कृष्ण ने लात लगा कर शकट को तोड़ डाला । कृष्ण के बहुत अधमों से तंग आकर यशोदा ने एक बार उनको ऊँखली के साथ बाँध दिया ।[3] उस समय दो देवियाँ यमलार्जुन का रूप धारण कर कृष्ण को मारने आईं । कृष्ण ने दोनों

१- *त्रिच० के अनुसार देवियाँ आठ दीपिकाओं से मार्ग को प्रकाशित करती थीं । और उन्हीं ने श्वेत वृषभ का रूप धर कर नगर द्वार खोल दिये थे ।*

२- *त्रिच० के अनुसार ये प्रारम्भ के उपद्रव कंस की ओर से नहीं, अपितु वसुदेव के बैरी शूर्पक विद्याधर की ओर से आये थे । विद्याधर पुत्री शकुनि शकट के ऊपर बैठकर नीचे खेल रहे कृष्ण को दबाकर मारने का प्रयास करती है और पूतना नामक दूसरी पुत्री कृष्ण को विषलिप्त स्तन पिलाती है । कृष्ण की रक्षक देवियाँ दोनों का नाश करती हैं ।*

३- *त्रिच० के अनुसार बालकृष्ण कहीं चला न जाय इसलिए उनको ऊखली के साथ बाँध कर यशोदा कहीं बाहर गई । तब शूर्पक के पुत्र ने यमलार्जुन बन कर कृष्ण को दबाकर मारना चाहा । किन्तु देवताओं ने उसका नाश किया । त्रिच० में गोवर्धन की बात नहीं है ।*

को गिरा दिया। छठवीं वृषभ रूपधारी देवी की गरदन मोड़कर उसको भगा दिया। और सातवीं देवी जब कठोर वर्षा करने लगी तब कृष्ण ने गोवर्धन गिरि ऊँचा उठाकर सारे गोकुल की रक्षा की।

कृष्ण के पराक्रमों की बात सुनकर उनको देखने के लिए देवकी बलराम को साथ लेकर गोपूजन को निमित्त बनाकर गोकुल आई और गोपवेश कृष्ण को निहारकर वह आनंदित हुई और मथुरा वापस आई। बलराम प्रतिदिन कृष्ण को धनुर्विद्या और अन्य कलाओं की शिक्षा देने के लिए मथुरा से आते थे।[१]

बालकृष्ण गोपाल-कन्याओं के साथ रास खेलते थे। गोप-कन्याएँ कृष्ण के स्पर्शसुख के लिए उत्सुक रहती थीं, किन्तु कृष्ण स्वयं निर्विकार थे। लोग कृष्ण की उपस्थिति में अत्यन्त सुख का और उनके वियोग में अत्यन्त दुःख का अनुभव करते थे।

एक बार शंकित होकर कंस स्वंय कृष्ण को देखने के लिए गोकुल आया। यशोदा ने पहले से ही कृष्ण को दूर वन में कहीं भेज दिया। वहाँ पर भी कृष्णने ताण्डवी नामक पिशाची को मार भगाया एवं मण्डप बनाने के लिए शाल्मलि की लकड़ी के अत्यन्त भारी स्तम्भों को अकेले ही उठा लिया। इससे कृष्ण के सामर्थ्य के विषय में यशोदा निःशंक हो गई और कृष्ण को वापस वन से लौटा लिया।

मथुरा वापस आकर कंस ने शत्रु का पता लगाने के लिए ज्योतिषी के कहने पर ऐसी घोषणा कर दी कि जो मेरे पास रखी गई सिंहवाहिनी नागशय्या पर आरुढ़ हो सके, अजितंजय धनुष को चढ़ा सके एवम् पाँचजन्य शंख को फूँक सके उसको अपनी मनमानी चीज प्रदान की जाएगी। अनेक राजा यह कार्य सिद्ध करने में निष्फल हुए। एक बार जीवयशा का भाई भानु कृष्ण का बल देखकर उनको मथुरा ले गया और वहाँ कृष्ण ने तीनों पराक्रम सिद्ध किये।[२] इससे कंस की शंका प्रबल हो गई। किन्तु बलराम ने शीघ्र ही कृष्ण को ब्रज भेज दिया।

कृष्ण का विनाश करने के लिए कंस ने गोप लोगों को आदेश दिया कि यमुना के हृद में से कमल लाकर भेंट करें। इस हृद में भयंकर

१- त्रिच० के अनुसार कृष्ण के पराक्रमों की बात फैलने से वसुदेव ने कृष्ण की सुरक्षा के लिए बलराम को भी नन्द-यशोदा को सौंप दिया। उनसे कृष्ण ने विद्याकलाएँ सीखीं।

२- त्रिच० के अनुसार जो शार्ङ्ग धनुष्य चढ़ा सके उसको अपनी बहिन सत्यभामा देने की घोषणा कंस ने की। और इस कार्य के लिए कृष्ण को मथुरा ले जाने वाला कृष्ण का ही सौतेला भाई अनाधृष्टि था।

कालियनाग रहता था । कृष्ण ने हृद में प्रवेश कर के कालिय का मर्दन किया और वे कमल लेकर बाहर आए ।[१] जब कंस को कमल भेंट किये गए तब उसने नन्द के पुत्र के सहित सभी गोपकुमारों को मल्लयुद्ध के लिए उपस्थित होने का आदेश दिया । अपने बहुत से मल्लों को उसने युद्ध के लिए तैयार कर रखा था ।

कंस का मलिन आशय जानकर वसुदेव ने भी मिलन के निमित्त से अपने नव भाईयों को मथुरा में बुला लिया ।

बलराम गोकुल गए और कृष्ण को अपने सही माता-पिता, कुल आदि घटनाओं से परिचित किया । इससे रुष्ट होकर कृष्ण, कंस का संहार करने को उत्सुक हो उठे । दोनों भाई मल्लवेश धारण करके मथुरा की ओर चले । मार्ग में कंस से अनुरुक्त तीन असुरों ने क्रमशः नाग के, गधे के और अश्व के रूपमें उनको रोकने का प्रयास किया । कृष्ण ने तीनों का नाश कर दिया ।[२] और मथुरा के नगर द्वार पर कृष्ण और बलराम जब आ पहुँचे तब इनके उपर कंस के आदेश से चम्पक और पादाभर[३] नामक दो मदमत्त हाथी छोड़े गए । बलराम ने चम्पक को और कृष्ण ने पादाभर को उनके दन्त उखाड़कर मार डाला ।

नगर प्रवेश करके वे अखाड़े में आए । बलराम ने इशारे से कृष्ण को वसुदेव, अन्य दाशार्ह, कंस आदि की पहचान कराई । कंस ने चाणूर और मुष्टिक इन दो प्रचंड मल्लों को कृष्ण के सामने भेजा । किन्तु कृष्ण में एक सहस्र सिंह का और बलराम में एक सहस्र हाथी का बल था । कृष्ण ने

१- त्रिच० में कालियमर्दन का और कमल लाने का प्रसंग कंस की मल्लयुद्ध घोषणा के बाद आता है । त्रिच० के अनुसार गोपों को मल्ल युद्ध के लिए आने का कोई आदेश नहीं भेजता । उसने जो मल्लयुद्ध के उत्सव का प्रबन्ध किया था उसमें संमिलित होने के लिए कृष्ण और बलराम कौतुकवश स्वेच्छा से चलते हैं । जाने के पहले जब कृष्ण स्नान के लिए यमुना में प्रवेश करते हैं तब कंस का मित्र कालिय डसने को आता है । तब कृष्ण उसको नाथ कर उस पर आरुढ़ होकर उसे खूब घुमाते हैं और निर्जीव सा करके छोड़ देते हैं ।

२- त्रिच. में सर्पशय्या पर आरोहण और कालियमर्दन इन पराक्रमों को जब कृष्ण ग्यारह साल के थे तब करने की बात है । त्रिच० के अनुसार कृष्ण की कसौटी के लिए ज्योतिषी के कहने पर कंस अरिष्ट नामक वृषभ को, केशी नामक अश्व को, एक खर को और एक मेष को कृष्ण की ओर भेजता है । इन सबको कृष्ण मार डालते हैं । ज्योतिषी ने कंस से कहा था कि जो इनको मारेगा वही कालिय का मर्दन करेगा, मल्लों का नाश करेगा और कंस का भी घात करेगा ।

३- त्रिच० में "पादाभर" के स्थान पर "पद्मोत्तर" ऐसा नाम है ।

चाणूर को मसल कर मार डाला और बलराम ने मुष्टिक के प्राण मुष्टि प्रहार से हर लिए । इतने में स्वयं कंस तीक्ष्ण खड्ग लेकर कृष्ण के सामने आया । कृष्ण ने खड्ग छीन लिया । कंस को पृथ्वी पर पटक दिया । उसे पैरों से पकड़कर पत्थर पर पछाड़ कर मार डाला ।[1] और एक प्रचण्ड अट्टहास्य किया । आक्रमण करने को खड़ी हुई कंस की सेना को बलराम ने मंच का खंभा उखाड़ कर प्रहार करके भगा दिया । वहाँ पर कृष्ण पिता और स्वजनों से मिले । उग्रसेन को बन्धन मुक्त किया और उसको मथुरा के सिंहासन पर फिर से बैठाया । जीवयशा जरासंध के पास जा पहुँची । कृष्ण ने विद्याधरकुमारी सत्यभामा[2] के साथ और बलराम ने रेवती के साथ विवाह किया ।

कंस-वध का बदला लेने के लिए जरासंध ने अपने पुत्र कालयवन को बड़ी सेना के साथ भेजा ।[3] सत्रह बार यादवों के साथ युद्ध करके अन्त में वह मारा गया । तत्पश्चात् जरासंध का भाई अपराजित तीन सौ छियालिस बार युद्ध करके कृष्ण के बाणों से मारा गया । तब प्रचण्ड सेना लेकर जरासंध ने मथुरा की ओर प्रयाण किया । इसके भय से अठारह कोटि यादव मथुरा छोड़कर पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े । जरासंध ने उनका पीछा किया । विन्ध्याचल के पास जब जरासंध आया तब कृष्ण की सहायक देवियों ने अनेक चिताएँ रचीं और वृद्धा का रूप धारण कर उन्होंने जरासंध को समझा दिया कि उससे भागते हुए यादव कहीं शरण न पाने से सभी जल कर मर गए । इस बात को सही मानकर जरासंध वापस लौटा । जब यादव समुद्र के निकट पहुँचे तब कृष्ण और बलराम की तपश्चर्या से प्रभावित इन्द्र ने गौतम देव को भेजा । उसने समुद्र को दूर हटाया । वहाँ पर समुद्रविजय के पुत्र एवम् भावी तीर्थंकर नेमिनाथ की भक्ति से प्रेरित कुबेर

१- त्रिच० के अनुसार प्रथम कंस कृष्ण और बलराम को मार डालने का अपने सैनिकों को आदेश देता है । तब कृष्ण कूदकर मंच पर पहुँचते हैं और केशों से खींचकर कंस को पटकते हैं । बाद में चरणप्रहार से उसका सिर कुचलकर उसको मण्डप के बाहर फेंक देते हैं ।

२- त्रिच० के अनुसार सत्यभामा कंस की ही बहन थी ।

३- त्रिच० के अनुसार पहले जरासंध समुद्रविजय के पास कृष्ण और बलराम को उसको सौंप देने का आदेश भेजता है । समुद्रविजय इस आदेश का तिरस्कार करता है । बाद में ज्योतिषी की सलाह से यादव मथुरा छोड़कर चल देते हैं । जरासंध का पुत्र काल यादवों को मारने की प्रतिज्ञा करके अपने भाई यवन और सहदेव को साथ लेकर यादवों का पीछा करता है । रक्षक देवताओं से दिए गए यादवों के अग्निप्रवेश के समाचार सही मानकर वह प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए स्वयं अग्निप्रवेश करता है ।

ने द्वारका नगरी का निर्माण किया। उसने बारह योजन लम्बी और नौ योजन चौड़ी इस वज्रमय कोट से युक्त नगरी में सभी के लिये योग्य आवास बनाए और कृष्ण को अनेक दिव्य शस्त्रास्त्र, रथ आदि भेंट किए। यादव वंशी वहाँ पर निवास करने लगे।

यहाँ पर पूर्व कृष्णचरित्र समाप्त होता है। उत्तर कृष्णचरित्र रुक्मिणी के हरण से शुरु होता है।

एक बार नारद द्वारका आये और वे सत्यभामा के व्यवहार से असंतुष्ट हो गये। उन्होंने सत्यभामा का गुमान दूर करने के लिए कुण्डिनपुर की राजकुमारी रुक्मिणी के रूप में कृष्ण के वास्ते एक दूसरी – "पटरानी" खोज निकाली और उसका चित्रपट दिखाकर कृष्ण को उस पर अनुरक्त भी कर दिया। कृष्ण कुण्डिनपुर जा पहुँचे और पूर्व–योजना के अनुसार, नागदेव की पूजा के बहाने उद्यान में आई हुई रुक्मिणी का हरण करके चलते बने। युद्ध में उन्होंने शिशुपाल को मार गिराया और रुक्मिणी के भाई रुक्मी को बन्दी बना लिया। द्वारका पहुँच कर रुक्मिणी के साथ विधिवत् विवाह कर वे सुख से रहने लगे। कुछ कालोपरान्त रुक्मिणी को पुत्रोत्पत्ति हुई। पूर्वभव के बैरी धूमकेतु असुर द्वारा अपहृत होकर कालसंवर विद्याधर द्वारा वह बचा लिया गया। और उसकी स्त्री कनकमाला द्वारा पाला गया। उसका नाम प्रद्युम्न रखा गया। जब कनकमाला प्रद्युम्न के प्रति काम से विह्वल हो गई और उसे रिझाने का प्रयत्न करने लगी, तब प्रद्युम्न ने जिनालय में जाकर सागरचन्द्र मुनिराज से इसका रहस्य पूछा। मुनिराज ने प्रद्युम्न को उन दोनों के पूर्वभव बताए। प्रद्युम्न कनकमाला के पूर्वभव की कामेच्छा को अपूर्ण छोड़ किसी प्रकार उसके प्रपंच से बचकर द्वारका पहुँचा। वहाँ तरह–तरह की अद्भुत चेष्टाओं के बाद उसका मिलन माता–पिता से हुआ।

सत्यभामा को भी एक पुत्रकी प्राप्ति हुई। उसका नाम भानुकुमार रखा गया। कृष्ण ने जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मावती और गांधारी नामक कन्याओं का पाणिग्रहण किया। जाम्बवती से शाम्ब नाग के पुत्र की उत्पत्ति हुई।

कौरवों के उत्पात से तंग होकर और उनके षड्यंत्र से प्राण बचाकर पाण्डव वन–वन भटकते रहे। हस्तिनापुर लौटकर वे जुआ में हारे और बारह वर्ष तक अज्ञात वास करने के पश्यात् घर आए। दुर्योधन का बढ़ता हुआ दुर्भाव देखकर उन्हें एक बार फिर हस्तिनापुर छोड़ना पड़ा। इस बार वे कृष्ण के यहाँ द्वारका पहुँचे जहाँ यादवों ने उनका बड़ा सत्कार किया।

द्वारका में यादवों के बढ़ते हुए वैभव को सुन जरासंध ने युद्ध की

तैयारी के साथ आक्रमण किया । दोनों ओर की सेनाओं का घोर युद्ध हुआ । अन्त में श्रीकृष्णने चक्ररत्न से जरासंध का सिर काटकर उसे निष्प्राण कर दिया । इस अवसर पर सन्तुष्ट हुए देवों ने घोषणा की कि वसुदेव का पुत्र कृष्ण नौवाँ वासुदेव हुआ है और उसने चक्रधारी होकर द्वेष रखनेवाले प्रतिशत्रु जरासंध को उसी के चक्र से युद्धमें मार डाला है । तत्पश्चात् राजाओं ने अतिशय प्रसिद्ध कृष्ण तथा बलदेव का अर्ध भरतक्षेत्र के स्वामित्व पद पर अभिषिक्त किया । तत्पश्चात् वे दिग्विजय के लिए निकल पड़े । मागध देवों को हराकर उन्होंने विजयार्ध-स्थित म्लेच्छ राजाओं आदि को विजित किया । तत्पश्चात् वे नारायण रूपमें प्रसिद्ध हुए ।

एक बार श्रीकृष्ण की सभा में उनके पितृव्य समुद्रविजय के पुत्र नेमिकुमार गये । प्रसंगवश दोनों भाईयों के बल की परीक्षा हुई और कृष्ण नेमिनाथ के बल से परास्त हो गये । उन्हें शंका हुई कि कहीं राज्य न चला जाय । नेमिनाथ के विवाह के लिये उनकी स्वीकृति पाकर श्रीकृष्ण ने भोजकवंशियों की कुमारी राजमती (राजुला) को उनकी वधू के रूप में निश्चित किया । किन्तु राजमार्ग पर जाते हुए नेमिनाथ ने जब विवाहोत्सव में वध के लिए लाए गए नाना जाति के पशु देखे तो उनका हृदय प्राणीदया से सराबोर हो गया । अवधिज्ञान से उन्हें इसके कारण का पता लग गया । वैराग्य धारण कर वे सहस्राम् वन में तपश्चर्या में लीन हो गए । आश्विन शुक्ला, चित्रा नक्षत्र में उन्हें केवल ज्ञान हुआ । अन्त में वे इरावती में आकर खेतक गिरि के उद्यान में विराजमान हो गए । एक-एक करके कृष्ण, देवकी, बलदेव, सत्यभामा, आदि ने उनसे प्रश्न किए और उन्होंने सबके भवान्तरों का वर्णन किया ।

बलदेव ने स्वामी नेमिनाथ से कृष्ण की आयु के बारे में पूछा । नेमिनाथ ने बताया कि १२ वर्ष बाद मदिरा निमित्त से द्वैपायन मुनि के द्वारा द्वारावती का नाश हो जाएगा । जरत्कुमार कृष्ण की मृत्यु का कारण बनेगा ।

कृष्ण के प्रयत्न करने पर भी होनहार होकर रहा और द्वैपायन मुनि के क्रोध से द्वारावती भस्मीभूत हो गई । कृष्ण और बलदेव भ्रमण करते-करते कौशाम्ब वन में पहुँचे । वहाँ कृष्ण को प्यास लगी । बलदेव पानी के लिए गये और कृष्ण पीताम्बर ओढ़कर लेट गए । इसी समय धोखे से जरत्कुमार के बाण से उनके पदतल में चोट लगी और उनकी मृत्यु हो गई । जरत्कुमार से यादव वंश की परम्परा चली ।

(३) जैन ग्रन्थों तथा हिन्दी कृष्ण-साहित्य में वर्णित कृष्ण के जीवन से संबंधित प्रमुख घटनाएँ –

जैन और वैदिक दोनों ही परम्पराओं के ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के अलौकिक व्यक्तित्व और कृतित्व को बतानेवाली बाल्यकाल एवं युवावस्था की अनेक चमत्कारिक घटनाएँ लिखी हुई मिलती हैं । वे सारी घटनाएँ ऐतिहासिक ही हैं, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । यहाँ हमारा उद्देश्य केवल इतना ही बताना है कि वे घटनाएँ जैन और वैदिक ग्रन्थों में किस-किस रूप में आयी हैं, इन प्रसंगों के शीर्षक जैन ग्रन्थों तथा उस पर आधारित हिन्दी जैन साहित्य के आधार पर दिये गए हैं ।

(क) शकुनी और पूतना-वध :-

आचार्य हेमचन्द्र रचित "त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र"[१] एवं आचार्य मल्लधारी हेमचन्द्र रचित "भव-भावना" के अनुसार सुर्पक विद्याधर की पुत्रियाँ शकुनी और पूतना ये दोनों वसुदेव की विरोधिनी थीं । उन्हें किसी तरह ज्ञात हो गया था कि कृष्ण वसुदेव का पुत्र है । अतः श्रीकृष्ण को मारने के लिए वे गोकुल में आईं । शकुनी ने श्रीकृष्ण को जोर से दबाया, भय उत्पन्न करने के लिए जोर से कर्ण-कटु किलकारियाँ कीं, किन्तु कृष्ण डरे नहीं, अपितु उन्होनें शकुनी को ही समाप्त कर दिया । पूतना ने विष-लिप्त स्तन श्रीकृष्ण के मुँह में दिये, पर कृष्ण का बाल बाँका न हुआ, वह स्वयं ही निर्जीव हो गई ।

जिनसेन कृत हरिवंश पुराण तथा हिन्दी में रचित खुशालचन्द काला कृत हरिवंश पुराणानुसार[२] एक दिन कंस के हितैषी वरुण नामक निमित्तज्ञ ने उससे कहा-राजन् । यहाँ कहीं नगर अथवा वन में तुम्हारा शत्रु बढ़ रहा है, उसकी खोज करनी चाहिए । उसके पश्चात् शत्रु के नाश की भावना से कंस ने तीन दिन का उपवास किया, देवियाँ आयीं और कंस से कहने लगी कि हम सब आपके पूर्वभव के तप से सिद्ध की हुई देवियाँ हैं । आपका जो कार्य हो वह कहिए । कंस ने कहा – हमारा कोई वैरी कहीं गुप्त रूप से बढ़ रहा है । तुम दया से निरपेक्ष हो शीघ्र ही उसका पता लगाकर उसे मृत्यु के मुँह में पहुँचाओ । उसे मार डालो । कंस के कथन को स्वीकृत कर देवियाँ चली गईं । उनमें से एक देवी शीघ्र ही भयंकर पक्षी का रूप

१- *(क) त्रिषष्टि. ८/५/१२३-१२६*
(ख) भव-भावना गा. २२०६ से २२१०-पृ. १४७

२- *हरिवंश पुराण (हिन्दी) दोहा १०४ से ११५ तक, पृ. ७५*

बनाकर आयी । चोंच द्वारा प्रहार कर बालक कृष्ण को मारने का प्रयत्न करने लगी, परन्तु कृष्ण ने उसकी चोंच पकड़कर इतने जोर से दबाई कि वह भयभीत हो प्रचण्ड शब्द करती हुई भाग गई । दूसरी देवी प्रपूतन भूत का रूप धारण कर कुपूतना बन गई और अपने विष सहित स्तन उन्हें पिलाने लगी । परन्तु देवताओं से अधिष्ठित होने के कारण श्रीकृष्ण का मुख अत्यन्त कठोर हो गया था, इसलिए उन्होनें स्तन का अग्र भाग इतने जोर से चूसा कि वह बेचारी चिल्लाने लगी ।

श्रीमद्भागवत के अनुसार[1] कंस कृष्ण के नाश के लिए पूतना राक्षसी को ब्रज में भेजता है । वह बालकृष्ण को विषमय स्तन का पान कराती है । यह रहस्य श्रीकृष्ण जान जाते हैं । अतः वे स्तनपान इतनी उग्रता से करते हैं कि पूतना पीडित होकर मर जाती है ।

(ख) यमलार्जुनोद्धार–

श्रीकृष्ण बड़ी ही चंचल प्रकृति के थे । एक स्थान पर टिककर नहीं रहा करते थे । अतः परेशान होकर यशोदा उनके उदर पर पट्टे सी एक रस्सी बांध दिया करती थी । एक दिन यशोदा रस्सी बांधकर किसी आवश्यक कार्य हेतु पडौसी के घर गई । उस समय सूर्पक विद्याधर का पुत्र अपने पिता के बैर को स्मरण कर "यह वसुदेव का पुत्र है"– ऐसा सोचकर जहाँ श्रीकृष्ण खेल रहे थे वहाँ पर आया और विद्या के बल से दो अर्जुन जाति के वृक्षों का रूप बनाया । श्रीकृष्ण उन वृक्षों के बीच में से गये और

१– *"सा खेवर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ।*
योषित्वा माययात्मानं प्रविशत्कामचारिणी ।।४।।
बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून ।
यदद्च्छया नन्दगृहेऽसदन्तकूम् ।।
बालं प्रतिच्छन्ननिजोस्तेजसं ।
ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ।।७।।
"तस्मिनस्तनं दुर्जरवीर्यमुल्वणं ।
घोरांकमादाय शिशोर्ददावथ ।।
गाढं कराभ्यां भगवानप्रपीड्य
तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ।।१०।।
निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसु–
र्व्यादाय केशांश्चरणो भुजाबल ।।
प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता ।
वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ।।१३।।
– श्रीमद्भागवत १०/६/४ से १३

उन्होंने उन वृक्षों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। श्रीकृष्ण के अपूर्व बल से वह उसी क्षण मर गया। श्रीकृष्ण के पेट पर डोरी बांधी जाती थी, अतः वे दामोदर के नाम से भी विश्रुत हुए।[१]

आचार्य जिनसेन ने जमल और अर्जुन को देवियाँ मानी हैं। "हरिवंशपुराण" में भी यमलार्जुनोद्धार की कथा निम्न प्रकार से मिलती है।[२]

श्रीमद्भागवत् में यमलार्जुनोद्धार की कथा निम्न प्रकार से दी हुई है –

नलकूबर और मणिग्रीव–ये दोनों एक तो धनाध्यक्ष कुबेर के लाड़ले लड़के थे और दूसरे इनकी गिनती हो गयी रुदभगवान के अनुचरों में। इससे उनका घमण्ड बढ़ गया। एक दिन वे दोनों मन्दाकिनी के तट पर कैलाश के रमणीय उपवन में वारुणी मदिरा पीकर मदोन्मत्त होकर अप्सराओं के साथ नग्नअवस्थामें जलक्रीड़ा कर रहे थे। उसी वक्त संयोगवश उस ओर नारदजी का आगमन हुआ। नारदजी को देखकर शाप के डर से अप्सराओं ने झटपट अपने-अपने कपड़े पहन लिये, परन्तु इन यक्षों ने कपड़े नहीं पहने। इस पर उनकी निर्लज्जता को देखकर नारदजी को क्रोध आ गया और उन्होंने उन्हें वृक्षयोनि में जाने का श्राप दिया, ये दोनों एक ही साथ अर्जुन वृक्ष होकर यमलार्जुन नाम से प्रसिद्ध हुए।

वृक्षयोनि में जाने पर भी नारदजी की कृपा से उन्हें भगवान की स्मृति बनी रही। नारदजी ने यह भी कहा कि उनका उद्धार सौ वर्ष पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण के चरणों के स्पर्श से ही होगा।

भगवान श्रीकृष्ण ने अपने परम प्रेमी भक्त देवर्षि नारदजी की बात

१– *(क) तौ धूलिधूसरं कृष्णं मोहन्मूर्छिन चुचुंबतुः।*
दामोदरेत्यूचिरे च तं गोपा दामबंधनात्॥
– त्रिषष्टि. ८/५/१४१

(ख) भव–भावना–गा० २२११–२२१५

२– *(क) यशोदया दामगुणेन जातु यदच्छयोदूखलबद्धपादः*
निपीडयन्तो रिपुदेवतागौ न्यपातयन्तौ जमलार्जुनौ सः
– हरिवंशपुराणं ३५/४५ पृ. ४५३

(ख) एक समै मांषन सवै॥ बाय गयौ हरि आय।
देषि यसोदा बांधियौ॥ ऊंबल तैदि ढिंकाय॥
जीह समै इक देवता॥ लेय गई नभ मांहि॥
हरि वाकूं पीमा दई॥ यापि गई भुवत्रयांहि॥
–हरिवंश पुराण ११५, पृ. ७५।

सत्य करने के लिए धीरे-धीरे ऊखल घसीटते हुए उस ओर प्रस्थान किया, जिधर यमलार्जुन वृक्ष थे । भगवान श्रीकृष्ण दोनों वृक्षों के बीच में घुस गए । वे तो दूसरी ओर निकल गए, परन्तु ऊखल टेढ़ा होकर अटक गया । दामोदर भगवान श्रीकृष्ण की कमर में रस्सी कसी हुई थी । उन्होंने अपने पीछे लुढ़कते हुए ऊखल को ज्यों ही तनिक जोर से खींचा, त्यों ही पेडों की सारी जड़े उखड़ गयीं और वे दोनों बड़े जोर से तड़तड़ाते हुए पृथ्वी पर *गिर पड़े । उन दोनों वृक्षो में से अग्नि के समान तेजस्वी दो सिद्ध पुरुष* निकले । उन्होंने संपूर्ण लोकों के स्वामी भगवान श्रीकृष्ण के पास आकर उनके चरणों में सिर रख कर प्रणाम किया तथा उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने लोक को चले गए ।[१]

(ग) कालिय नागदमन-

आचार्य हेमचन्द्र रचित "त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित" के अनुसार यमुना में कालिय नाम का एक भयंकर नाग रहता था । इसका रहस्य न कृष्ण को पता था और न बलराम ही कुछ जानते थे । श्रीकृष्ण ने ज्यों ही स्नान करने के लिए यमुना में प्रवेश किया, कालिय नाग श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा । उसकी मणि के प्रखर प्रकाश से सारा पानी प्रकाशित हो गया । श्रीकृष्ण ने उसे कमल नाग की तरह पकड़ लिया, और उसकी नासिका नाथ कर उसके साथ क्रीड़ा करते रहे । कालिय नाग के उपद्रव को उन्होंने शान्त किया ।[२] और स्नान करके मथुरा की ओर चले गए ।

खुशालचन्द काला कृत "हरिवंश पुराण" के अनुसार[३] कृष्ण का अन्त

१- *श्रीमदभागवत : पृ. १८४-१९० ।*

२- *त्रिषष्टि. ८/५/२६२-२६५ ।*

३- *कमल तणी अहि सेवा करै । जा ढिगी कोउ धीर न धरे ।*
ऐसौ पंकज ब्याजे काहि ।। किष्न कुमार तै इम बतलाहि ।। १८२
कंस भूपकी आग्याराह ।। कमल तणूं अवकीजै केह ।
किष्न तवै भाषी सुणि तात ।। पुन्पथ की दुर्लभ को बात ।। १८३
सोक करो मति जनक लगार ।। मैं पंकज ल्याऊँ ततकार ।
इम कहि हरि गयो जहि थानि ।। सर्पथकी जीत्यौ सुनिदानी ।। १८४
तव नागिन आई हरि पाय ।। मो पति उपरि षिमा कराय ।।
कमल मगाये नागिन पासि ।। लेय चल्यौ पंकज गुणरासि ।। १८५
कंस समीपि कमल षिनवाय ।। देषि पदमसव अचिरज पाय ।।
कंस चितोनि करी जहिवार ।। वैरी तौ बलवान अपार ।। १८६
-खुशालचन्द काला कृत "हरिवंशपुराण"- पृ. ७९ ।

करने की भावना से कंस ने कमल लाने के लिए समस्त गोपों के समूह को यमुना के उस हृद के सम्मुख भेजा जो प्राणियों के लिए अत्यन्त दुर्गम था, और जहाँ विषम साँप लहराते रहते थे।

अपनी भुजाओं के बल से सुशोभित कृष्ण अनायास ही उस हृद में घुस गए और कालिय नामक नाग का जो कुपित होकर सामने आया था, महाभयंकर फण पर स्थित मणियों की किरणों के समूह से अग्नि के स्फुलिंगों की शोभा को प्रकट कर रहा था, तथा अत्यन्त काला था–उन्होंने शीघ्र ही मर्दन कर डाला। नदी के किनारे पर गोप बाल जयजयकार करने लगे। श्रीकृष्ण कमलोंको तोड़कर वायु के समान शीघ्र ही तट पर आ गए और वे कमल कंस के सामने उपस्थित किए गए। उन्हें देखकर कंस घबरा गया। उसने आज्ञा दी कि नन्द गोप के पुत्र सहित समस्त गोप अविलम्ब मल्लयुद्ध के लिए तैयार हो जावें।

श्रीमद्भागवत के अनुसार यमुनाजी में कालिय नाग का एक कुण्ड था। उसका जल विष की गर्मी से खौलता रहता था। जब श्रीकृष्ण ने देखा कि उस साँप के विष का वेग बड़ा प्रचण्ड है और वह भयानक विष ही उसका महान बल है तथा उसके कारण उनका विहार का स्थान यमुनाजी दूषित हो गयी हैं, तब भगवान श्रीकृष्ण अपनी कमर का फेंटा कसकर एक बहुत ऊँचे कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गए और वहाँ से ताल ठोककर उस विषैले जल में कूद पड़े। आँख से ही सुननेवाले कालिय नाग ने यह आवाज सुनी और देखा कि कोई मेरे निवासस्थान का तिरस्कार कर रहा है। उसे यह सहन न हुआ। वह चिढ़कर भगवान श्रीकृष्ण के सामने आ गया। उसने श्रीकृष्ण के मर्मस्थानों में डसकर अपने शरीर के बन्धन से उन्हें जकड़ लिया। भगवान श्रीकृष्ण नागपाश में बँधकर निश्चेष्ट हो गए। यह साँप के शरीर से बँध जाना तो श्रीकृष्ण की मनुष्यों जैसी लीला थी। जब उन्होंने देखा कि ब्रज के सभी लोग स्त्री और बच्चों के साथ मेरे लिए इस प्रकार अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं और सचमुच मेरे सिवाय इनका कोई दूसरा सहारा नहीं है, तब वे एक मुहूर्त तक सर्प के बन्धन में रहकर बाहर निकल आए। तब भगवान श्रीकृष्ण ने उसके बड़े–बड़े सिरों को तनिक दबा दिया और उछलकर उन पर सवार हो गए तथा पैरों की चोट से उसके सरों को कुचल ड़ाला। सिर के कुचल जाने से उसकी शक्ति क्षीण हो गई और वह बेहोश हो गया। बाद में नागपत्नियों के आग्रह करने पर श्रीकृष्ण ने उसको छोड़ दिया तथा आदेश दिया कि वह यमुना को छोड़कर समुद्र में रहने के लिए चला जाय।

उसने श्रीकृष्ण के आदेश का पालन किया तथा अपनी पत्नियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवों के साथ रमणक द्वीप की, जो समुद्र में सर्पों के रहने का एक स्थान है, यात्रा की । श्रीकृष्ण की कृपा से यमुनाजी का जल विषहीन ही नहीं, बल्कि उसी समय अमृत के समान मधुर हो गया ।[१]

(घ) कंस वध :-

"त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र" "भव-भावना" एवम् "हरिवंशपुराण"[२] के अनुसार कंसके वध की कथा इस प्रकार मिलती है । पहले कंस की आज्ञा से प्रथम अनेक मल्ल परस्पर युद्ध करने लगे । एकदूसरे को पराजित करने के लिए अनेक दाँवपेच दिखलाते हुए जन-समूह का मनोरंजन करने लगे । अन्त में चाणूर मल्ल खड़ा हुआ । उसने सभी राजाओं को युद्ध के लिए ललकारा । किन्तु कोई भी राजा उससे युद्ध करने को प्रस्तुत नहीं हुआ । चाणूर ने दुबारा कहा-क्या कोई भी मेरे साथ मल्ल युद्ध करने को तैयार नहीं है ? यह ललकार सुनते ही श्रीकृष्ण अखाड़े में उतर पड़े । लोगों ने आवाज़ लगाई-कहाँ चाणूर और कहाँ दुधमुँहा बच्चा ? लोग इस विषम युद्ध का विरोध करने लगे । किन्तु उसी समय कंस गरजा-इन्हें यहाँ किसने बुलाया था । मेरे यहाँ आए ही क्यों ? अब तो यह कुश्ती होगी ही ।

कृष्णने लोगों से कहा-आप घबराइये नहीं । देखिए, अभी इसकी भुजाओं का मद उतारता हूँ । इतने में दूसरा मल्ल मुष्टिक भी अखाड़े में कूद पड़ा । तब उससे लड़ने के लिए बलराम अखाड़े में उतरे । दोनों जोड़ियों में भयंकर मल्लयुद्ध हुआ । कृष्ण और बलराम ने क्रमशः चाणूर और मुष्टिक को तृण के ढेर की तरह उछालकर एक तरफ फेंक दिया । चाणूर उठा । उसने श्रीकृष्ण के उरुस्थल पर जोर से मुष्टि का प्रहार किया । मुष्टि के प्रहार से श्रीकृष्ण बेहोश हो गये ।[३] कृष्ण को बेहोश देखकर कंस प्रसन्न हुआ । उसने आँख से चाणूर को संकेत किया कि इसे मार डाले । वह श्रीकृष्ण को मारने के लिए उद्यत हुआ त्यों ही बलदेव ने उस पर ऐसा जोर से प्रहार किया कि चाणूर दूर जाकर गिर

१- *श्रीमदभागवत : श्लोक ६७, पृ. २३१-२४१*

२- *(क) त्रिषष्टि. ८/५/२७४-२८३ ।*
(ख) भव-भावना २४३५-२४४२, पृ. १६३
(ग) हरिवंशपुराण (हिन्दी) - खुशालचन्द्र काला - पृ.४०, दोहा १८१-१८५

३- *(क) त्रिषष्टि. ८/५/२८४-२९५ ।*
(ख) भव-भावना २४४३-२४५६ ।
(ग) हरिवंशपुराण में कृष्ण के बेहोश होने का वर्णन नहीं है ।

पड़ा। कुछ ही क्षणों में श्रीकृष्ण पुनः तैयार हो गए। उन्होंने चाणूर को फिर से ललकारा। दोनों भुजाओं के बीच में डालकर उसे ऐसा दबाया कि चाणूर को रक्त का वमन होने लगा। आँखे फिर गईं और कुछ ही क्षणों में वह निर्जीव हो गया।[१]

चाणूर को मरा हुआ देखकर कंस चिल्ला उठा–इन अधम गोप बालकों को मार दो। इनका पोषण करने वाले नन्द को भी समाप्त कर दो। उसका सर्वस्व लूटकर यहाँ ले आओ और जो नन्द का पक्ष लें उन्हें भी मार डालो।[२]

कंस की यह बातें सुनते ही श्रीकृष्ण के नेत्र क्रोध से लाल सूर्ख हो गये। उनके रोम–रोम में से आग बरसने लगी। वे बोले – अरे नराधम। चाणूर मर गया तथापि तू अपने आपको मरा हुआ नहीं समझता है? मुझे मारने से पहले तू अपने प्राणों की रक्षा कर। इतना कहकर और सिंह की तरह उछलकर श्रीकृष्ण मंच पर चढ़ गए। केशों को पकड़कर उसे जमीन पर पटक दिया। उसका मुकुट भूमि पर गिर पड़ा। कृष्ण बोले – अरे दुष्ट! तूने अपनी रक्षा के लिए व्यर्थ ही गर्भ–हत्याएँ कीं, पर याद रख अब तू भी बचनेवाला नहीं है।

उधर बलराम ने मुष्टिक को भी मार डाला था। कंस हताश हो गया था।

कंस की रक्षा के लिए अनेक सैनिक हाथों में शस्त्रास्त्र लेकर कृष्ण को मारने के लिए तैयार हुए कि बलराम ने मंच के एक खम्भे को लेकर उन सभी को भगा दिया। उधर श्रीकृष्ण ने कंस के मस्तिष्क पर पैर रखा और उसे मार दिया। जैसे दूध में से मक्खी बाहर निकाल कर फेंक दी जाती है, वैसे ही उसे मण्डप में से बाहर फेंक दिया।[३] हरिवंशपुराण के अनुसार कंस स्वयं तलवार लेकर कृष्ण को मारने आता है तब कृष्णने

---

१ *(क) त्रिषष्टि. ८/५/२९६–३०० ।*

(ख) भव–भावना–२४५०–२४६१ ।

(ग) हरिवंशपुराण –खुशालचन्द, दोहा–१८१–१८४ ।

२– *(क) त्रिषष्टि. ८/५/३०१–३०२।*

(ख) भव–भावना–२४६२–२४६४ ।

३– *कृष्णोऽपि पादं शिरसि न्यस्य कंसं व्यपादयत् ।*
केशैः कृष्ट्वाक्षिपद्रंगाद्बहिस्तं दार्विवार्णिवः ॥

–त्रिषष्टि. ८/५/३१३०

उसकी तलवार छीन ली, और बाल पकड़कर पृथ्वी पर पछाड़कर मार दिया।[१]

(ड) शिशुपाल वध–

गुणभद्राचार्य के उत्तरपुराण तथा खुशालचन्द काला कृत हिन्दी हरिवंशपुराण में शिशुपाल वध की कथा इस प्रकार है।[२]

कौशल के राजा भेषज थे। उनकी पत्नी का नाम मादी था। उनके तीन नेत्रवाला शिशुपाल पुत्र हुआ।[३] तीन नेत्रों को निहार कर उन्होंने किसी निमित्त–ज्ञानी से पूछा। निमित्तवेता ने कहा–जिसे देखने से इसका तीसरा नेत्र नष्ट हो जायेगा, यह उसी के द्वारा मारा जाएगा।[४] किसी दिन राजा भेषज, रानी मादी, शिशुपाल और अन्य लोग श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए द्वारावती नगरी गये। वहाँ पर श्रीकृष्ण को देखते ही शिशुपाल का तीसरा नेत्र अदृश्य हो गया। यह देख मादी को निमित्तज्ञानी का कथन स्मरण आया। उसने श्रीकृष्ण से याचना की–पूज्य। मुझे पुत्र भिक्षा दीजिए।[५]

श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया–हे अम्ब 1 जब तक यह सौ अपराध नहीं करेगा तब तक में इसे नहीं मारुँगा।" इस प्रकार कृष्ण से वरदान प्राप्त कर मादी अपने नगर को चली गई। शिशुपाल का तेज धीरे–धीरे सूर्य की तरह बढ़ने लगा। वह अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझने लगा। सिंह के समान श्रीकृष्ण के उपर भी आक्रमण कर उन्हें अपनी इच्छानुसार चलाने की इच्छा

१– *मल्ल मुष्टि यम मंदिर गयौ ।।*
कंस तबै क्रोधित अति भयौ ।।
आप जुधः करने कू उठौ ।।
क्रिस्न तबै अति ही सो रुत्रै ।।१९४
चरन पकरि भ्रमायौ हरी ।।
भूपरिपटिकि मारियो अरी ।।
कंस प्राण तजि निंदि गति गयौ ।।
इनिके जयजयकार जु भयो ।। १९५

–दोहे नं. १९४–१९५, पृ. ८० ।

२– *हरिवंशपुराणः खुशालचन्द काला–दोहा–७३८ से ७५२, पृ० ११४ ।*

३– *स्रग्मिण्यथ पुरः कौसलाख्यया भूपतेः सुतः ।*
भेषजस्याभवन्मद्रयां शिशुपालस्त्रिलोचनः ।।

–उत्तरपुराण ७१/३४२, पृ० ३९८

४– *उत्तर पुराण ७१/३४३–३४४ ।*

५– *वही, ७१/३४७*

करने लगा । इस प्रकार अहंकारी, समस्त संसार में फैलने वाले यश से उपलक्षित और अपनी आयु को समर्पण करने वाले उस शिशुपाल ने श्रीकृष्ण के सौ अपराध कर डाले । वह अपने आपको सबसे श्रेष्ठ समझता था । श्रीकृष्ण को भी ललकार कर उनकी लक्ष्मी छीनने का उद्यम करता था । इसी बीच रुक्मिणी का पिता रुक्मिणी को शिशुपाल को देने तैयार हुआ । युद्ध की चाह करने वाले नारद ने जब यह बात सुनी तो उसने श्रीकृष्ण को यह समाचार सुनाया । श्रीकृष्ण ने छह प्रकार की सेना के साथ जाकर उस बलवान शिशुपाल को मारा और रुक्मिणी के साथ विवाह किया ।

त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र आदि के अनुसार जरासंध के युद्ध के समय शिशुपाल का वध हुआ है, रुक्मिणी के विवाह के समय नहीं ।[१]

महाभारत के अनुसार राजसूय यज्ञ करनेवाले पाण्डवोंने प्रथम श्रीकृष्ण की अर्चना की । श्रीकृष्ण की अर्चना को देखकर शिशुपाल अत्यन्त रुष्ट हुआ और अनर्गल प्रलाप करने लगा । शिशुपाल की उद्दण्डता को देखकर भीम को बहुत ही क्रोध आया । उसके नेत्र लाल हो गए । वह शिशुपाल को मारने दौड़ा । किन्तु भीष्म पितामह ने उसे रोक दिया । शिशुपाल कहने लगा कि आप इसे छोड़ दें, मैं इसे अभी समाप्त कर दूँगा । तब भीष्म पितामह ने शिशुपाल की जन्म कहानी सुनाते हुए कहा– "जब यह जन्मा था, तब गधे की तरह चिल्लाने लगा । मातापिता डर गये । उसी समय आकाशवाणी हुई कि यह तुम्हारा कुछ भी नुकसान नहीं करेगा, इसकी मृत्यु उससे होगी जिसकी गोद में जाने से इस बालक के दो हाथ और एक आंख गायब हो जायेंगे । यह सूचना सर्वत्र प्रसारित हो गई । एक दिन श्रीकृष्ण अपनी फुफी से, जो शिशुपाल की माता है, मिलने गये । शिशुपाल को ज्योंही श्रीकृष्ण की गोद में बिठाया गया, त्यों ही इसके दो हाथ और एक आँख गायब हो गये । माता ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की । कृष्ण ने कहा– तुम्हारा पुत्र मार डालने योग्य अपराध करेगा तो भी मैं तो सौ अपराधों तक क्षमा करुँगा ।"[२] इसीलिए यह तुम्हें युद्ध के लिए ललकार रहा है । फिर शिशुपाल ने कृष्ण को ललकारा । जब उसके सौ अपराध पूरे हो गये तब श्रीकृष्ण ने क्रोधकर चक्र को छोड़ा, जिससे शिशुपाल का सिर कटकर पृथ्वी

१– *त्रिषष्टि ८/७/४००–४०४ ।*

२– *अपराधशतं क्षाम्यं मया हनस्य पितृष्वसः ।*
पुत्रस्य ते वधार्हस्यं मा त्व शोके मनः कृथाः ॥
–महाभारत, सभापर्व, अ०४३ श्लोक २४ ।

पर गिर पड़ा। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने शिशुपाल का वध किया।[1]

(ट) महाभारत का युद्ध–

महाभारत का युद्ध कौरवों और पाण्डवों का युद्ध था। उस युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन के सारथी का कार्य किया। किन्तु स्वंय ने युद्ध नहीं किया। उस युद्ध का विस्तृत वर्णन महाभारत, पाण्डव चरित्र आदि में किया गया है।[2] महान योद्धा और वीर भीष्म पितामह, दोणाचार्य, कर्ण, अभिमन्यु, दुर्योधन, और अनेक वीरों का उस युद्ध में संहार हुआ।

आचार्य शीलांक ने महाभारत का उल्लेख नहीं किया, "चउप्पन महापुरिस चरिय"[3] में कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र में,[4] आचार्य मल्लधारी हेमचन्द्र ने भव–भावना में,[5] तथा अन्य कितने ही जैन ग्रन्थों में भी, महाभारत के युद्ध का वर्णन नहीं है। कितने ही लेखकों ने जरासंध के साथ युद्ध एवं महाभारत युद्ध को एक मानकर ही वर्णन किया है।

देवप्रभसूरि के पाण्डव चरित्र के अनुसार कौरवों और पाण्डवों का युद्ध जरासंध के युद्ध से पूर्व हुआ था। कौरव–पाण्डव–युद्ध में जरासंध दुर्योधन के पक्ष में आया था, किन्तु उसने लड़ाई में भाग नहीं लिया था। कौरव–पाण्डवों का युद्ध कुरुक्षेत्र के मैदान में हुआ था।[6] और जरासंध के साथ कृष्ण का युद्ध द्वारका से पैंतालीस योजन दूर सेनपल्ली में हुआ था।[7] दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने हरिवंशपुराण में तथा इनके आधार पर हिन्दी में रचित शालिवाहन कृत हरिवंशपुराण एवं खुशालचन्द काला कृत हरिवंशपुराण में[8] तथा दिगम्बर आचार्य शुभचन्द्र ने पाण्डवपुराण में जरासंध के युद्ध को और कौरव–पाण्डवों के युद्ध को एक माना है। जरासंध का वह युद्ध कुरुक्षेत्र में हुआ बताया गया है। उसी युद्ध में श्रीकृष्ण जरासंध को

१– *महाभारतः सभापर्व, अ० ४५, श्लोक २४–२६।*

२– *पाण्डव चरित्र – देवप्रभसूरी – अनुवाद सर्ग १२, पृ० ३८०।*

३– *अ० ४९–५०–५१, पृ० १८७–१९०।*

४– *पर्व ८।*

५– *भव–भावना।*

६– *पाण्डव चरित्र–सर्ग। ३, पृ० ३९१।*

७– *(क) त्रिषष्टि० ८/७/१९६।*
(ख) चउप्पन महापुरिस चरियं, पृ० १८६

८– *(क) हरिवंशपुराण, सर्ग ५०, पृ. ५८७।*
(ख) हरिवंशपुराण, खुशालचन्द काला, सन्धि २५, पृ० १८५– १९०।

मारते हैं।

महाभारत के अनुसार जरासंध का युद्ध कौरव-पाण्डवों के युद्ध से पहले हुआ था।

वैदिक मान्यता के अनुसार उस युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। गीता वैदिक परम्परा का एक अद्भुत ग्रन्थ है। संत ज्ञानेश्वर ने कहा है-"गीता विवेक रूपी वृक्षों का अपूर्व बगीचा है। वह नवरस रूपी अमृत से भरा समुद्र है।" लोकमान्य तिलक ने लिखा-"गीता हमारे धर्मग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है।" महर्षि रवीन्दनाथ ठाकुर का अभिमत है कि, "गीता वह तैलजन्य दीपक है जो अनन्तकाल तक हमारे ज्ञानमंदिर को प्रकाशित करता रहेगा।" बंकिमचन्द्र का मानना है कि, गीता को धर्म का सर्वोत्तम ग्रन्थ मानने का यही कारण है कि उसमें ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों योगों की न्याययुक्त व्याख्या है।" महात्मा गांधी गीता को माता व सद्गुरु मानते थे।

जैन ग्रन्थों में कुरुक्षेत्र में गीतोपदेश की कोई चर्चा नहीं मिलती। कुछ समीक्षकों का मत है कि गीता का उपदेश वास्तव में कुरुक्षेत्र में युद्ध के समय का उपदेश नहीं है, किन्तु युद्ध का रूपक बनाकर वह भारतीय जीवन दृष्टि का महत्त्वपूर्ण किया गया विश्लेषण है।

कुछ भी हो, गीता भारतीय चिन्तन एवं जीवनदर्शन की एक अमूल्य मणि है, इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते।

(ठ) जरासंध युद्ध-

(क) आचार्य हेमचन्द्र रचित त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र[1] एवं आचार्य मल्लधारी हेमचन्द्र रचित भव-भावना[2] व यति रत्नसुन्दर रचित अमम स्वामी चरित्र के अनुसार कितने ही व्यापारी व्यापारार्थ यवन द्वीप के समुद्र के रास्ते द्वारका नगरी में आये। द्वारका के वैभव को देखकर वे चकित हो गये। रत्नकम्बल के अतिरिक्त वे जितनी भी वस्तुएँ लाये थे, सभी उन्हों ने द्वारका में बेच दीं। रत्नकम्बलों को लेकर वे राजगृह नगर पहुँचे। वे रत्नकम्बल उन्होंने जीवयशा को बताए। जीवयशा को कम्बल पसन्द आए और उसने आधी कीमत में लेना चाहा। व्यापारियों ने कहा-"यदि हमें इतने कम मूल्य में देने होते तो द्वारका में ही क्यों न बेच देते, जहाँ पर इससे दुगुनी कीमत आ रही थी।"

१- *त्रिषष्टि०-८/७/१३४-१४८।*

२- *भव-भावना, गा० २६५९-२६६५, पृ० १७६ १७७।*

जीवयशा ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि, "द्वारका नगरी कहाँ है ? उसके राजा कौन हैं ?"

व्यापारीने कहा "द्वारका समुद्र के किनारे है और वहाँ पर वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण राज्य कर रहे हैं। उनके भाई बलराम हैं। नगरी क्या है, स्वर्ग की अलकापुरी है।"

यह सुनते ही जीवयशा चौंकी। उसके आश्चर्य का पार न रहा। क्या मेरे पति कंस को मारनेवाला श्रीकृष्ण अभी तक जीवित है ? वह मरा नहीं ? वह रोने लगी तो जरासंध ने कहा–"पुत्री रो मत। मैं अभी जाता हूँ और यादव कुल का समूल नाश कर देता हूँ।" यह आश्वासन देकर और विराट सेना लेकर जरासंध युद्ध के लिए प्रस्थित हुआ। अपशुकन होने पर भी वह आगे बढ़ता रहा।

(ख) जैनों के उत्तर पुराण के अनुसार यह कथा इस प्रकार है –

कुछ व्यापारी जलमार्ग से व्यापार करते हुए भूल से द्वारवती नगरी पहुँचे। वहाँ की विभूति को निहार कर वे आश्चर्य चक्ति हुए, उन्होंने द्वारवती नगरी से बहुत से श्रेष्ठ रत्न खरीदे और उन्होंने वे रत्न राजगृह नगरी में जरासंध को अर्पित किये। बहुमूल्य रत्नों को देखकर ज़रासंध ने चकित होकर पूछा–"कहाँ से लाये ?" उन्होंने द्वारवती का विस्तार से वर्णन किया।[१]

(ग) जैन हरिवंशपुराण के अनुसार जरासंध राजा के पास अमूल्य मणिराशियों के विक्रयार्थ एक वणिक पहुँचा।[२]

(घ) शुभचन्द्राचार्य प्रणित पाण्डवपुराण में एक समय किसी विद्वान पुरुष ने राजगृहनगर पहुँचकर जरासंध राजा को उत्तम रत्न अर्पित किये। राजा के पूछने पर उसने बताया कि मैं द्वारकापुरी से आया हूँ। वहाँ भगवान नेमिनाथ के साथ कृष्ण राज्य करते हैं। इस प्रकार उसके कथन से द्वारका में यादवों के स्थित होने के समाचार को जान करके जरासंध को उन पर बहुत ही क्रोध हुआ। वह उन पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगा।[३]

(ड) खुशालचन्द काला ने हिन्दी हरिवंशपुराण में लिखा है–जरासंध विराटसेना लेकर युद्ध के लिए आ रहा है, नारद से यह समाचार जानकर श्रीकृष्ण ने नेमिकुमार से अपनी विजय के सम्बन्ध में पूछा। नेमीश्वर ने

१– *उत्तरपुराणः ७१/५२–६४, पृ० ३७८–३७९।*

२– *हरिवंश पुराण ५०–१–८।*

३– *पाण्डव पुराण –१९/८/११, पृ० ३९०।*

मन्द हास्यपूर्वक "ओम्" कह कर इस युद्ध में प्राप्त होनेवाली विजय की सूचना दी।[1] श्रीकृष्ण युद्ध के लिए समुद्यत हो गये। किन्तु प्रस्तुत वर्णन त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, भव-भावना, हरिवंशपुराण, उत्तर पुराण आदि अन्य ग्रंथों में नहीं है। श्वेताम्बर ग्रन्थों के अनुसार तो नेमिनाथ उस समय गृहस्थाश्रम में थे, वे उस युद्ध में साथ रहे हैं, अतः उनके द्वारा स्वीकृति देना संभव हो सकता है। क्योंकि वे गृहस्थाश्रम में तीन ज्ञान के धारक थे। वे यह भी जानते थे कि प्रतिवासुदेव के साथ वासुदेव का युद्ध अनिवार्य रूप से होता ही है, प्रतिवासुदेव पराजित होते हैं और वासुदेव की विजय होती है।[2]

श्रीकृष्ण ने गरुडव्यूह की रचना की। भ्रातृस्नेह से उत्प्रेरित होकर अरिष्टनेमि युद्ध स्थल पर साथ में आये हैं, यह जानकर शक्रेन्द्र ने मातली नामक सारथी के साथ अपना रथ उनके लिए भेजा।[3] दोनों ओर से भयंकर युद्ध प्रारंभ हुआ। दोनों ओर के सैनिक अपनी वीरता दिखाने लगे। बाणों की वर्षा होने लगी। जरासंध के पराक्रमी योद्धाओं ने जब वीरता दिखलायी तो यादव भी पीछे न रहे। उन्हों ने भी जरासंध की सेना को तितर-बितर कर दिया। जब जरासंध की सेना भागने लगी तब स्वयं जरासंध युद्ध के मैदान में आया, और उसने समुद्रविजयजी के कई पुत्रोंको मार दिया। उस समय उसका रूप साक्षात् काल के समान था। यादव सेना इधर उधर भागने लगी तब बलराम ने जरासंध के अट्ठाइस पुत्रों को मार दिया। यह देख जरासंध ने बलराम पर गदा का प्रहार किया, जिससे रक्त का वमन करते हुए बलराम भूमि पर गिर पड़े। उस समय यादव सेना में हाहाकार मच गया। पुनः जरासंध बलराम पर प्रहार करने को आ रहा था कि वीर अर्जुन ने जरासंध को बीच में ही रोक दिया। इस बीच श्रीकृष्ण ने जरासंध के अन्य उनहत्तर पुत्रों को भी मार ड़ाला। अपने पुत्रों को दनादन मारते हुए देखकर जरासंध कृष्ण पर लपका। उस समय चारों ओर यह आवाज फैल गई कि "कृष्ण मर गये हैं।" यह सुनते ही मातली सारथी ने अरिष्टनेमि से नम्र निवेदन किया -"प्रभु ! आपके सामने जरासंध की क्या हिम्मत है। स्वामी ! यदि आपने इस समय जरा भी उपेक्षा की तो यह यादव कुल नष्ट

१- *खुशालचन्द काला: हरिवंशपुराण ७७०-७७१-पृ० १८४। हिन्दी हस्तलिखित।*

२- *त्रिषष्टि० ८/७/२४२-२६०।*

३- *भ्रातृ-स्नेहद्युयुत्सु च शक्रो विज्ञाय नेमिनम्।*
प्रैषीदथं मातलिना जैत्रशस्त्रांचितं निजम्॥

- त्रिषष्टि० ८/७/२६०-२६१।

हो जाएगा । यद्यपि आप सावद्य कर्म से विमुख हैं, तथापि लीला बताये बिना इस समय गति नहीं है । यह सुनते ही अरिष्टनेमि ने कोप किये बिना ही पौरंदर नामक शंख बजाया । शंखनाद को सुनते ही यादव सेना स्थिर हो गई[१] और शत्रु सेना क्षोभ को प्राप्त हुई । फिर अरिष्टनेमि के संकेत से मातली सारथी ने उस रथ को युद्ध के मैदान में घुमाया । अरिष्टनेमि ने हजारों बाणों की वृष्टि की । उन बाणों की वृष्टि ने किसी के रथ, किसी के मुकुट, किसी की ध्वजा छेद दी, किन्तु किसी भी शत्रु की शक्ति अरिष्टनेमि के सामने युद्ध करने की नहीं हुई । प्रतिवासुदेव को वासुदेव ही नष्ट करता है, यह एक मर्यादा थी । अतः अरिष्टनेमि ने जरासंध को मारा नहीं ।[२] अपितु जरासंध के सैनिक दल को कुछ समय तक रोक दिया । तब तक बलदेव और श्रीकृष्ण स्वस्थ हो गये । यादव सेना भी पुनः लड़ने को तैयार हो गई ।

जरासंधने पुनः युद्ध के मैदान में आते ही कृष्ण से कहा–"अरे कृष्ण ! तू कपटमूर्ति है । आज दिन तक तू कपट से जीवित रहा है, पर आज मैं तुझे छोड़नेवाला नहीं हूँ । तूने कपट से ही कंस को मारा है, कपट से ही कालकुमार को मारा है । तूने अस्त्र–विद्या का तो कभी अभ्यास ही नहीं किया है । पर आज तेरी माया का अन्त लाऊँगा और मेरी पुत्री जीवयशा की प्रतिज्ञा पूर्ण करुँगा ।"[३]

कृष्णने मुस्कुराते हुए कहा–"अरे जरासंध ! तू इस प्रकार वृथा अहंकार के वचन किसलिए बोलता है ? वाक्चातुर्य न दिखाकर शक्ति दिखा । मैं शस्त्रविद्या भले नहीं सीखा तथापि तुम्हारी पुत्री जीवयशा की अग्निप्रवेश की प्रतिज्ञा को मैं अवश्य पूर्ण करुगा ।"

फिर दोनों युद्ध के मैदान में ऐसे कूदे कि देखने वाले अवाक् रह गये । उनकी आँखे ठगी सी रह गईं । धनुष की टंकार से आकाश गुंजने लगा । पर्वत भी मानो काँपने लगे । जरासंध बाणों की वर्षा करने लगा । पर श्रीकृष्ण उन सभी बाणों को छेदनभेदन करने लगे । जब जरासंध के

१– *त्रिषष्टि० ८/७/४२०–४२६ ।*

२ *प्रतिविष्णुर्विष्णुनैव वध्य इत्यनुपालयत् ।*
स्वामी त्रैलोक्यानाथोऽपि जरासंध जघानन ।।

–त्रिषष्टि० ८/७/४३२ ।

३ *तव प्राणैः सहैवाद्य माया पर्यंतयाम्यरे ।*
एकोऽद्य जीवयशसः प्रतिज्ञा पूरयामि च ।।

–त्रिषष्टि० ८/७/४३८ ।

पास सभी अन्यान्य शस्त्र और अस्त्र समाप्त हो गये तब उसने अन्तिम शस्त्र के रूप में चक्र शस्त्र को हाथ लगाया। उसे आकाश में घुमाकर ज्यों ही श्रीकृष्ण पर चक्र का प्रहार किया कि एक क्षण में दर्शक स्तंभित हो गये। किन्तु चक्र श्रीकृष्ण की प्रदक्षिणा देकर उन्हें बिना कष्ट दिये उनके पास अवस्थित हो गया। श्रीकृष्ण ने उसे अपने हाथ में ले लिया। उसी समय "नौवाँ वासुदेव उत्पन्न हो गया है" ऐसी उद्घोषणा हुई।[1]

श्रीकृष्ण ने दया लाकर जरासंध से कहा–"अरे मूर्ख ! क्या यह भी मेरी माया है ! अभी भी तू जीवित घर चला जा, मेरी आज्ञा का पालन कर और व्यर्थ के श्रम को छोड़कर अपनी संपत्ति भोग। वृद्धावस्था आने पर भी जीवित रह।"

जरासंधने कहा–"कृष्ण ! यह चक्र मेरे सामने कुछ भी नहीं है। मैंने इसके साथ अनेक बार क्रीड़ा की है। यह तो लघु पौधे की तरह उखाड़ कर फेंका जा सकता है। तू चाहे तो चक्र को फेंक सकता है।" फिर श्रीकृष्ण ने

१– (क) *जाते सर्वास्त्रवैफल्ये वैलक्ष्यार्षपूरितः।*
चक्र सस्मार दुर्वारमन्यास्त्रैर्मगधेश्वरः ॥
...नवमो वासुदेवोऽयमुत्पन्न इति घोषितः।
गंधांबुकुसुमवृष्टि कृष्णे व्योम्नोऽमुचत्सुराः ॥
–त्रिषष्टि० ८/७/४४६–४५७

(ख) हरिवंश पुराण ५२/६७/६०१।

(ग) चक्र किस्ने के आयौ पासि।
तीन प्रदक्षिणां दीन्हीं तासि।
दक्षिणं कर मधि आयौ जवै।
सव राजा सुष मान्यू तवै।
– ८३५ हरिवंशपुराण : खुशालचन्द कास्त्र
जै जैकार सकल सुर करे।
इह नवमूं हरि इम उच्चरे ॥
चक्र निह्नयौं हरि कर माँहि।
जरासंध विकल्प उपजाहिं ॥
– ८३७ – हरिवंशपुराण : खुशालचन्द कास्त्र।
मैं तीना षंड को स्वामी। सव अव नपती मैं मानी ॥
आग्या लंघे नहीं कोई। सब ही मेरे वसि होई
– ८३९ – हरिवंशपुराण : खुशालचन्द कास्त्र।

वह चक्र छोड़ा । चक्र ने जाकर जरासंध का मस्तिष्क छेदन कर दिया । श्रीकृष्ण का सर्वत्र जय-जयकार होने लगा ।[१]

महाभारत में जरासंध-युद्ध वर्णनः-

जैन साहित्य में जैसा जरासंध-युद्ध का वर्णन मिलता है, वैसा महाभारत में नहीं है । वह बिलकुल ही पृथक् ढंगका है । वह वर्णन इस प्रकार है -

महाभारत के अनुसार भी जरासंध एक महान् पराक्रमी सम्राट था । उसका एकछत्र साम्राज्य था । जब कृष्ण ने कंस को मार डाला और जरासंध की कन्या विधवा हो गई तब श्रीकृष्ण के साथ जरासंध की शत्रुता हो गई । जरासंध ने वैर का बदला लेने के लिए अपनी राजधानी से ही एक बड़ी भारी गदा निन्यानवे बार घुमाकर जोर से फेंकी । वह गदा निन्यानवे योजन दूर मथुरा के पास गिरी । उस समय श्रीकृष्ण मथुरा में ही थे । पर वह गदा उनकी कुछ भी हानि न कर सकी ।[२]

जरासंध के हंस और डिम्भक नामक सेनापति बड़े बहादुर थे, अतः यादवों ने उनके साथ युद्ध करना अच्छा नहीं समझा ।[३] जब वे यमुना में डूबकर मर गये तब श्रीकृष्ण ने विचार किया कि जरासंध को युद्ध में मारना कठिन ही नहीं, कठिनतर है । अतः उसे द्वन्द्व युद्ध में ही हराया व मारा जाय ।[४] इसलिए श्रीकृष्ण, भीमसेन व अर्जुन के साथ ब्राह्मणों के वेश में मगध की ओर चल दिये । वे जरासंध के वहाँ पहुँचे । उन्हें देखते ही जरासंध आसन से उठकर खड़ा हुआ । उनका आदर-सत्कार कर कुशल प्रश्न पूछे । भीमसेन और अर्जुन मौन रहे । बुद्धिमान श्रीकृष्णने कहा- "राजन् ! ये इस समय मौनी हैं, इसी लिए नहीं बोलेंगे । आधी रात्रि के पश्चात् ये आपसे बातचीत करेंगे ।"[५]

तीनों वीरों को यज्ञशाला में ठहराकर जरासंध अपने रनवास में चला

१- *(क) त्रिषष्टि० ८/७/४५३-४५७ ।*

(ख) हरिवंशपुराणं ५२/८३-८४, पृ० ६०२

(ग) मन में व्यौम धर्यौ ।। अति धीर चक्र फिराय चलायौ जवै ।
जाय चक्र उर भेद्यौ तवै ।।
- ८४६ - हरिवंशपुराणः खुशालचन्द्र काला-पृ० १९०

२- *महाभारत सभापर्व-अ० १९, श्लोक १९-२५ ।*

३-*वही, श्लोक २७-२८ ।*

४-*वही, अध्याय-२०, श्लोक १-२ ।*

५- *महाभारतः सभापर्व-अ० २१, श्लोक ३०-३४ ।*

गया। अर्धरात्रि के व्यतीत हो जाने पर वह फिर उनके पास आया। उनके अपूर्व वेश को देखकर जरासंध को आश्चर्य हुआ। ब्रह्मचारियों की वेशभूषा से विरुद्ध तीनों की वेशभूषा को देखकर जरासंध ने कहा–"हे स्नातक ब्राह्मणो! मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि स्नातक व्रतधारी ब्राह्मण गृहस्थाश्रम में जाने से पहले न तो कभी माला पहनते हैं और न चन्दन आदि लगाते हैं। तुम अपने को ब्राह्मण बता चुके हो, पर मुझे तुम में क्षत्रियो के भाव दीख पड़ते हैं। तुम्हारे चेहरे पर क्षत्रियों का तेज साफ झलक रहा है। सत्य कहो तुम कौन हो?"[१]

श्रीकृष्ण ने अपना परिचय दिया और साथ ही भीम व अर्जुन का भी। अपने आने का प्रयोजन बतलाते हुए उन्होंने कहा–"तुमने बलपूर्वक बहुत से राजाओं को हराकर, बलिदान की इच्छा से अपने यहाँ कैद कर रखा है। ऐसा अति कुटिल दोष करके भी तुम अपने को निर्दोष समझ रहे हो। कौन पुरुष बिना किसी अपराध के अपने सजातीय भाइयों की हत्या करना चाहेगा? फिर तुम तो नृपति हो! क्या समझकर उन राजाओं को पकड़कर महादेव के आगे उनका बलिदान करना चाहते हो? हम लोग धर्मका आचरण करने वाले और धर्म की रक्षा करने में समर्थ हैं। इस कारण यदि हम तुम्हारे इस क्रूर कार्य में हस्तक्षेप न करें तो हमें भी तुम्हारे किए पाप का भागी बनना पड़ेगा। हमने कभी और कहीं मनुष्य बलि होते नहीं देखी है, न सुनी ही है। फिर तुम मनुष्यों के बलिदान से क्यों देवता को सन्तुष्ट करना चाहते हो? हे जरासंध! तुम क्षत्रिय होकर पशुओं की जगह क्षत्रियों की बलि देना चाहते हो! तुम्हारे सिवाय कौन मूढ़ ऐसा करने का विचार करेगा? तुम्हें उन कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। तुम अपनी जाति का विनाश करते हो और हम लोग पीड़ितों की सहायता करते हैं।[२]

हे मगधराज! या तो तुम उन राजाओं को छोड़ दो, या फिर हमारे साथ युद्ध करो।"[३]

जरासंधने कृष्ण से कहा–"जिन राजाओं को में अपने बाहुबल से हरा चुका हूँ उन्हीं को मैंने बलिदान के लिए कैद कर रखा है। हारे हुए राजाओं के अतिरिक्त यहाँ कोई कैद नहीं है। इस पृथ्वी पर ऐसा कौन वीर है, जो मेरे साथ युद्ध कर सके। मैंने जिन राजाओं को कैद कर रखा है उन्हें तुमसे

१– *महाभारत सभापर्व, अ० २१, श्लोक ३५–४८।*

२– *महाभारतः सभापर्व, अ० २२, श्लोक ८ से १४।*

३– *वही, श्लोक २६।*

डर कर कैसे छोड़ सकता हूँ। मैं तुम्हारे साथ युद्ध करने को तैयार हूँ।[1]"

कृष्णने जरासंध से पूछा–"हम तीन में से किसके साथ युद्ध करना चाहते हो?"[2]

जरासंध ने भीमसेन को पसन्द किया।[3] दोनों का परस्पर युद्ध चलने लगा। वे बाहुपाश, उरोहस्त, पूर्णकुम्भ, अतिक्रान्त, मर्यादा, पृष्ठभंग, सम्पूर्ण मूर्च्छा, तृणपीड़, पूर्णयोग, मुष्टिक आदि विचित्र युद्ध करके अपना बल और कौशल दिखाने लगे। दोनों ही वीर युद्ध–कला में सुशिक्षित और बल में भी बराबर थे।[4]

उन दोनों का युद्ध कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर चतुर्दशी की रात्रि तक चलता रहा। जरासंध थक गया था, वह युद्ध कुछ समय के लिए बंद करना चाहता था।[5] तब श्रीकृष्ण ने भीम से कहा–हे कुन्तीनन्दन! थका हुआ शत्रु पीड़ा नहीं दे सकता और बड़ी सुगमता से मारा जा सकता है। इसलिए इस समय तुम इससे बराबर युद्ध करो। श्रीकृष्ण के इस प्रकार कहने से भीम अधिक उत्तेजित हुए। उन्होंने झपटकर बड़े वेग से उस पर हमला किया।[6] फिर वह उसे ऊपर उठा कर वेग से घुमाने लगा। सौ बार ऊपर उठाकर भीमसेन ने जरासंध को पृथ्वी पर पटका और घुटना मारकर उसकी पीठ की हड्डी तोड़ डाली। फिर गरजते हुए भीमसेन ने उसे पृथ्वी पर खूब रगड़ चुकने के पश्चात् बीच से उसकी टाँगें चीर ड़ाली।"[7]

तत्पश्चात् तीनों वीर जरासंध के पताकायुक्त रथ में बैठकर वहाँ पहुँचे जहाँ जरासंध ने राजाओं को कैद कर रखा था। उनको बन्धन से मुक्त कर श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन उन राजाओं के साथ गिरिव्रज से बाहर निकले।[8]

श्रीकृष्ण ने जरासंध के लड़के सहदेव को मगध देश की राजगद्दी देकर राज्याभिषेक कर दिया।[9]

१– *महाभारतः सभापर्व, अ०२२, श्लोक २७–३०।*
२– *वही, अ० २३, श्लोक २।*
३– *वही, अ० २३, श्लोक ४।*
४– *वही, अ० २३, श्लोक ५–२०।*
५– *वही, अ० २३, श्लोक २५–३०।*
६– *वही, अ० २३, श्लोक ३१–३५।*
७– *महाभारतः सभापर्व, अ०, श्लोक ५–६।*
८– *वही, अ० २४, श्लोक १०–१३।*
९– *वही, श्लोक ४०–४३।*

महाभारत के अनुसार जरासंध वध कौरवों और पाण्डवों के युद्ध से पहले हुआ। कौरव–पाण्डवों के युद्ध के समय जरासंध विद्यमान नहीं था।

निष्कर्ष–

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि जैन कथा के नायक कृष्ण न तो कोई दिव्य पुरुष थे, न तो ईश्वर के अवतार या स्वयं भगवान। वे मानव ही थे। ईश्वर की तमाम उदात्त एवं उत्कट शक्तियाँ भी मानवजीवन में ही अपनी सम्पूर्ण भव्यता के साथ प्रस्फुटित होती हैं। तब विश्व उसके समक्ष विस्मयानन्द विमुग्ध होकर नतमस्तक हो जाता है। श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व इसी बात का उत्तम उदाहरण है। शलाकापुरुष वासुदेव के रूप में कृष्ण महान वीर व शक्तिसम्पन्न राजा के रूप में वे द्वारका सहित आधे दक्षिण भरतक्षेत्र के प्रभावशाली अधिपति हैं। उनके जीवन से संबंधित प्रमुख घटनाएँ प्रमाणित करती हैं कि वे महान शक्ति व वैभव से युक्त हैं। समान शक्तिशाली मगध के राजा जरासंध को युद्ध भूमि में पराभूत करके वे भारत के नरेशों में प्रथम पूजा व वन्दना के अधिपति हुए। उनके चरित्र की विलक्षणता इसी से प्रतीत होती है कि शक्तिसम्पन्न होते हुए भी श्रीकृष्ण अहिंसा के पुजारी हैं तथा जहाँ तक हो सकता है वहाँ तक युद्ध तथा हिंसा से दूर रहते हैं। यहाँ तक कि आततायी जरासंध तथा शिशुपाल को भी प्रायश्चित्त के अनेक अवसर प्रदान किये।

कृष्ण वासुदेव अपने समय के आध्यात्मिक पुरुष तीर्थंकर अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धा भाव रखनेवाले नरेश के रूप में जैन–साहित्य में वर्णित हुए हैं।

उनके जीवन की घटनाएँ उनके चरित्र के विभिन्न स्वरूपों को उद्घाटित करती हैं। एक अकल्पनीय गति और अप्रतिहत प्रवाह से कृष्ण ने अपने समय की गतिविधियों को संचालित किया था। उस समय बड़े–बड़े अत्याचारी कंस, जरासंध, शिशुपाल, दुर्योधन, जैसे दुर्धर्ष और दुर्दमनीय योद्धा विभिन्न क्षेत्रों पर अपना आतंक जमाए थे, कृष्णने अपनी असीमित शक्ति और बुद्धिकौशल के बल पर सभी को परास्त कर दिया। उनका रूप मानव–जीवन को उदात्त चिन्तन और साहसपूर्ण कर्तव्य की प्रेरणा देता है।

वे कर्मयोगी थे,–निष्काम कर्मयोगी। उन्हों ने अपने जीवन में सतत निष्काम कर्म को अपनाया और वही उनका जीवन–सन्देश बन गया। अकर्मण्यता और आलस्य को उन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया। इसके साथ

ही उन्होंने कोरे भाग्यवाद को निरस्त्रित कर पुरुषार्थवाद का महत्त्व स्थापित किया।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कृष्ण के जीवन से संबंधित घटनाओं का अध्ययन करने पर कृष्ण एक शलाकापुरुष, कुशल राजनीतिक नेता, अनुभवी मित्र तथा सर्वोच्च जीवनद्रष्टा तथा एक धर्मपरायण के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके स्वरूप में चरम सौन्दर्य, चरम प्रतिभा, अकल्पनीय लीला, एवं असीम शक्ति विद्यमान मिलते हैं। उनके जीवन की लीलाएँ ऐसी हैं कि उनसे मन, बुद्धि और हृदय–तीनों को ही अपनी अपनी प्रवृत्ति के अनुसार आनन्द प्राप्त होता है।

तृतीय अध्याय

हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप वर्णन

भूमिकाः-

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि हिन्दी भाषा में कृष्ण के विभिन्न स्वरूपों से संबंधित साहित्य के विपुल विस्तार की पृष्ठभूमि में मुख्य रूप से संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश साहित्य ही है । कालान्तर में इसी साहित्य को आधार बनाकर हिन्दी जैन कृष्ण-साहित्य की रचना की गई । किन्तु जहाँ भक्त और उपासकों ने कृष्ण के मानवीय स्वरूप का वर्णन भाव विभोर होकर किया है, वहीं साहित्यकारों ने इन सम्बन्धों का सहारा लेते हुए उत्कृष्ट प्रकार की सर्जनाएँ प्रस्तुत की हैं । कृष्ण का जो स्वरूप इन रचनाओं में प्रकट होता है, उसमें उनके चरम सौन्दर्य, चरम प्रतिभा, अकल्पनीय लीला एवं असीम शक्ति विद्यमान मिलती हैं ।

हिन्दी जैन कृष्ण-साहित्य के स्रोत-ग्रन्थ, आगम आगमेतर कृष्ण स्वरूप वर्णन के प्रमुख स्रोत रहे हैं ।

जैनागम-साहित्य प्राकृत भाषा में निबद्ध है । यह साहित्य मूलतः सिद्धान्त-निरूपण से संबंधित है । सिद्धान्त-निरूपण की एक शैली के रूप में कथा-कहानियों तथा व्यक्ति-चरितों का उपयोग हुआ है । कृष्ण-चरित के विविध प्रसंगों का सन्दर्भानुसार इस दृष्टि से विभिन्न आगमिक कृतियों में वर्णन हुआ है । इस वर्णन में एक श्रेष्ठ पुरुष एवं द्वारका के महान शक्ति सम्पन्न, ऐश्वर्यमान राजा के रूप में कृष्ण का यशोगान हुआ है । शलाका (उत्तम) पुरुष वासुदेव के रूप में उनकी विशेषताओं, उत्तम लक्षणों, उनके विशिष्ट व्यक्तित्व-स्वरूप का चित्रण हुआ है । कृष्णकथा के अवान्तर प्रसंगों एवं कृष्ण के जीवन की घटनाओं का अलग-अलग सन्दर्भों में वर्णन हुआ है ।

इसी प्रकार आगमेतर साहित्य में कृष्ण-चरित विषयक दो प्रकार की कृतियाँ उपलब्ध होती हैं । एक वे कृतियाँ हैं, जिनमें सामूहिक रूप से श्रेष्ठ पुरुषों का चरित-वर्णन किया गया है । ऐसी कृतियों में परंपरागत मान्यतानुसार शलाकापुरुषों का चरित वर्णन है । इनमें अन्य शलाकापुरुषों के चरित-वर्णन के साथ-साथ शलाकापुरुष कृष्ण वासुदेव का भी चरित-वर्णन हुआ है । ऐसी कृतियाँ महापुराण या श्रेष्ठ शलाकापुरुष चरित शीर्षक से हैं । इसके अतिरिक्त "हरिवंश पुराण" शीर्षक से भी कतिपय कृतियाँ

उपलब्ध हैं । इनमें हरिवंश में उत्पन्न श्रेष्ठ पुरुषों का चरित–वर्णन है । हरिवंश में उत्पन्न होने के कारण "कृष्ण" इन कृतियों में प्रमुखता से स्थान पा सके हैं । जैन साहित्य में उनका सम्पूर्ण तथा विस्तृत चरित–वर्णन इन्हीं कृतियों में उपलब्ध है । कृष्ण के अतिरिक्त इन कृतियों में अरिष्टनेमि, प्रद्युम्न, वसुदेव आदि अन्य विशिष्ट यादव पुरुषों का विस्तार से वर्णन हुआ है ।

कृष्ण–चरित से संबंधित द्वितीय श्रेणी की वे कृतियाँ हैं जो अरिष्टनेमि, वसुदेव, गजसुकुमाल, प्रद्युम्न, बलराम तथा पाण्डवगण से संबंधित हैं और उनमें प्रसंगानुसार कृष्ण–चरित का वर्णन हुआ है । इन कृतियों की आधिकारिक विषयवस्तु यद्यपि संबंधित विशिष्ट पुरुष का चरित–वर्णन है तथापि कृष्ण–चरित का वर्णन इनमें अपरिहार्य रूप से हुआ है । क्योंकि द्वारका के राजा तथा यादवों के श्रेष्ठ पुरुष कृष्ण के वर्णन के बिना इनका चरित–वर्णन अधूरा ही रहता । कृष्ण इनसे घनिष्ठ रूप में संबंधित हैं । ये सब कृष्ण के परिवार–जन हैं और इनके जीवन के अनेक प्रसंग कृष्ण के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं ।

हिन्दी जैन–साहित्य अपनी पूर्ववर्ती परम्परा से भिन्न नहीं है । कृति विशेष का नामकरण, उसकी कथावस्तु, प्रसंग वर्णन का स्वरूप तथा कृति के भाव–पक्ष की दृष्टि से भी हिन्दी जैन–साहित्यकार परंपरा–पोषक है ।

श्रीकृष्ण के स्वरूप का सर्वाधिक विस्तृत चित्रण हमें जैन धर्म के हरिवंश पुराण में मिलता है । उनके चरित्र का परोक्ष चित्रण गजसुकुमाल, प्रद्युम्न, नेमिनाथ, बलभद्र और पाण्डवों से संबंधित ग्रन्थों तथा उत्तरपुराण में मिलता है । हिन्दी में दो जैन हरिवंश पुराण रचे गये हैं ।[१] इन दोनों ही कृतियों में श्रीकृष्ण के स्वरूप का वर्णन लगभग एक–सा हुआ है । इन दोनों ही कवियों ने आचार्य जिनसेन के हरिवंशपुराण को ही आधारभूत ग्रन्थ के रूप में स्वीकार कर इन ग्रन्थों की रचना की है । इस तथ्य का परिचय हमें कृष्ण के बाल–स्वरूप के चित्रण को देखने से मिलता है ।

आचार्य जिनसेन से पहले जैन साहित्य में श्रीकृष्ण की महत्ता दो स्वरूपों में ही प्रस्तुत की हुई मिलती है । एक शलाकापुरुष के रूप में तथा दूसरे आध्यात्मिक पुरुष के रूप में ।

आचार्य जिनसेन ने सर्व प्रथम शायद वैष्णवों के पौराणिक साहित्य से

१– *(अ) हरिवंश पुराण–लेखक शालिवाहन ।*

(ब) हरिवंश पुराण–लेखक खुशालचन्द काला ।

प्रभावित होकर श्रीकृष्ण के बाल–गोपाल स्वरूप का वर्णन अपने हरिवंश पुराण में किया था।

प्रस्तुत अध्याय में मैंने प्रथम हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण–विषयक रचनाओं का स्वरूप, इयत्ता, प्रकार और महत्त्व कैसा था, यह समझाने के लिए सबसे पहले इस साहित्य से संबंधित कुछ सर्वसाधारण और प्रास्ताविक तथ्यों का वर्णन किया है। इसके उपरान्त इस साहित्य से संबंधित प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है जिनमें प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से श्रीकृष्णचरित्र का वर्णन हुआ है। इसके उपरान्त शालिवाहन कृत हरिवंश पुराण तथा खुशालचन्द काला कृत हरिवंश पुराण में वर्णित श्रीकृष्ण के बालगोपाल स्वरूप का, शलाका पुरुष का तथा आध्यात्मिक स्वरूप का अध्ययन प्रस्तुत किया है। उपरोक्त वर्णनों में मैंने श्रीकृष्ण के स्वरूप से संबंधित प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों प्रकार की रचनाओं की सहायता ली है।

श्रीकृष्ण का प्रथम स्वरूप जो हमारे सामने आता है वह है उनका बाल–गोपाल रूप। यह उनके परंपरागत व्यक्तित्व से कुछ भिन्न है। कृष्ण के इस स्वरूप पर वैष्णव परंपरा तथा संस्कृत हरिवंश पुराण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इन दोनों का प्रभाव अपभ्रंश व हिन्दी जैन काव्य कृतियों में द्रष्टव्य है। इन कृतियों में नटखट ग्वाल–बालक के रूप में दानों में कुण्डल पहनने, पीताम्बर धारण करने, मुकुट लगाने, बाँसुरी बजाने आदि का तथ्यात्मक वर्णन हुआ है।

द्वितीय श्रीकृष्ण एक अर्धचक्रवर्ती तथा राजा के रूप में, एक महान वीर, अद्वितीय पराक्रमी तथा शक्तिसामर्थ्य से परिपूर्ण अद्वितीय शलाकापुरुष थे। भारतभूमि के राजाओं में वे अग्रणी थे। अपनी बुद्धि कौशल और वीरता के बल पर कृष्ण आधे भरत क्षेत्र के अधिपति अभिसिक्त हुए और उन्हें वासुदेव के रूप में मान्यता मिली।

कृष्ण का तृतीय स्वरूप एक धर्म–निष्ठ आदर्श राजपुरुष के रूप में वर्णित है, जिनका अरिहंत अरिष्टनेमि एवं उनके धार्मिक सिद्धांतों के प्रति श्रद्धाभाव था।

मैंने अपने इस अनुशीलन में कृष्ण के तीनों रूपों को अनेक उदाहरण देकर स्पष्ट किया है। इसीके साथ हिन्दी साहित्य के परंपरागत स्वरूप–वर्णन को भी प्रस्तुत किया गया है।

(१) हिन्दी जैन साहित्य से संबंधित कुछ सर्वसाधारण व प्रास्ताविक तथ्य–

हिन्दी जैन साहित्य में कृष्णविषयक रचनाओं का स्वरूप, इयत्ता, प्रकार और महत्त्व कैसा था, यह समझने के लिए सबसे पहले उस साहित्य से संबंधित कुछ सर्व–साधारण और प्रास्ताविक तथ्यों पर लक्ष्य देना आवश्यक होगा।

समय की दृष्टि से हिन्दी जैन साहित्य वि० १० वीं शताब्दी से लेकर आधुनिक युग तक है। इसको हमने निम्न समय–क्रम से विभाजित किया है –

अपभ्रंश हिन्दी – वि० १०वीं शताब्दी से १६ वीं के पूर्वार्द्ध पर्यन्त।

हिन्दी – वि० १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से वि० १९ वीं शताब्दी पर्यन्त।

आधुनिक हिन्दी – वि० २० वीं शताब्दी।

अपभ्रंश–हिन्दी काल–

वि० छट्ठी शताब्दी से १२ वीं पर्यन्त तो अपभ्रंश का स्वर्णयुग ही रहा और १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध–पर्यन्त जैन साहित्य में अपभ्रंश प्रभावित रचनाएँ होती रहीं। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" इतिहास में हिन्दी का आदिकाल ७ वीं शताब्दी ई० से १४ वीं पर्यन्त माना है जो उपयुक्त ही है। क्योंकि वहाँ तो १५ वीं शताब्दी से ही भक्तिकाल प्रारम्भ हो जाता है जिसमें भक्त और प्रेममार्गी कवियों की हिन्दी में ठोस रचनाएँ होने लग गई थीं। हिन्दी जैन कवियों ने अपनी रचनाएँ जब कि प्रारम्भ ही की थीं। हिन्दी जैन साहित्य में भी उसको "हिन्दी का आदिकाल" अथवा "प्राचीन हिन्दी–काल" ही कहा है, और समय भी उतना ही माना है, जो अपभ्रंश प्रभावित रचनाओं के प्राचुर्य पर हिन्दी जैन साहित्य की दृष्टि से उतना स्पष्ट और अर्थपूर्ण नहीं है जितना "अपभ्रंश हिन्दी काल" कहना।

भले हिन्दी साहित्य विशारदों ने अपभ्रंश को "आदि हिन्दी" अथवा "प्राचीन हिन्दी" कहा है, परन्तु अपभ्रंश प्रभावित इस काल को ये नाम देना न स्पष्ट है, और न अर्थपूर्ण। अपभ्रंश–हिन्दी काल से सीधा अर्थ निकलता है कि अपभ्रंश प्रभावित हिन्दी रचनाओं का काल।

"अपभ्रंश" का साहित्य महान् विपुल, विविध विषयक और विविधमुखी है। अपभ्रंश की प्रांजलता इसके महाकाव्यों में देखने को मिलती है। इसके काव्यों में इसके समृद्धता के दर्शन होते हैं। इसके खण्डकाव्यों में जीवन के अनेक रूपों की विविध भाँति से जो अभिव्यंजना हुई है, वह बहुत ही रोचक और प्रभावक है। पिछले वर्षों में जैन विद्वान मुनि जिनविजयजी, आदिनाथ, उपाध्याये, डॉ० हीरालाल, डॉ० परशुराम वैद्य, पं० लालचन्द भगवान गांधी, महापंडित राहुल सांकृत्यायन प्रभृत्ति विद्वानों ने अपभ्रंश साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया। कुछ ने अनेक अपभ्रंश ग्रन्थों का प्रकाशन किया है और इसका हिन्दी साहित्य में विकास के इतिहास पर गहरा प्रभाव ही नहीं पड़ा, वरन् वहाँ इसके अभाव में जो गड़बड़ हो गई थी, वहाँ अब स्पष्ट प्रतिलक्षित होने लगी है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने अपने "हिन्दी साहित्य का आदिकाल" नामक ग्रंथ में स्पष्ट कहा है–"जब तक इस विशाल उपलब्ध साहित्य को सामने रखकर इस काल के काव्य की परीक्षा नहीं की जाती, तब तक हम इस साहित्य का ठीक–ठीक मर्म उपलब्ध नहीं कर सकते। इधर उधर के प्रमाणों से कुछ कह देना, कुछ पर कुछ का प्रभाव बतला देना न तो बहुत उचित है और न बहुत हितकर।" यह कहना होगा कि आज अपभ्रंश का साहित्य जो कुछ भी उपलब्ध है वैसा ८०–९० वर्ष पूर्व प्राप्य नहीं था। तभी तो प्रसिद्ध भाषाशास्त्री जर्मन विद्वान पेशल को यह अनुभव करके बहुत ही दुःख हुआ था कि अपभ्रंश का समृद्ध और विपुल साहित्य खो गया है।

जैन साहित्य–सेवियों की प्रत्येक युग और प्रत्येक काल में विशेष अथवा साधारण कुछ ऐसी परंपराएँ रहती हैं, जो समय की कड़ी से कड़ी मिला कर आगे–आगे चली जाती हैं। जैन साहित्य को समृद्ध बनाने की दृष्टि से, उसको विविधमुखी एवं विविधविषयक करने की दृष्टि से विद्वान ग्रन्थकार की परंपरा रही है। इस परंपरा का कर्तव्य यही रहता है कि वह आगमों का स्वाध्याय करे, लोक–जीवन का अध्ययन करे, जैनेतर साहित्य का अनुशीलन करे और मौलिक ग्रन्थ लिखे, टीकाएँ बनावे, भाष्य रचे आदि। दूसरी परम्परा है ज्ञान–भण्डार–संस्थापन–परम्परा। इस परंपरा का उद्देश्य समृद्ध जैन साहित्य की रक्षा करने का है। साहित्य की सुरक्षा की दृष्टि से यह ज्ञान–भण्डार की स्थापना करती है और वहाँ जैन–जैनेतर साहित्य प्रतिष्ठित होकर सुरक्षित रहा है। जैन ज्ञान–भण्डारों का महत्त्व आज सर्वविदित हो चुका है। तीसरी परम्परा है लोक–भाषा अंगीकरण की। जैन विद्वान अथवा ग्रन्थकर्ता जिस युगमें जो जन–साधारण की सर्वप्रिय भाषा

होती है, उसी में यह अपना साहित्य रचता है, अपना विचार, उपदेश, संदेश भी उसी के माध्यम के द्वारा लोक समाज तक पहुँचाता है। इन तीन विशिष्ट परंपराओं से ही जैन साहित्य, प्राकृत और संस्कृत तथा अपभ्रंश में एक-सा समृद्ध, विविध और विपुल मिलता है।

लोक-भाषा बननेवाली बोली अथवा भाषा को जैन साहित्य सदा वरदान अथवा अद्भुत देन के रूप में प्राप्त होता आया है। हिन्दी को अपभ्रंश की भारी देन है-इसमें तनिक भी मतभिन्नता नहीं। अपभ्रंश से जैसे अन्य आधुनिक लोक-भाषाएँ उद्भूत हुईं, उसी प्रकार हिन्दी भी उसी से बनी और निकली है। इसको राजस्थानी-गुजराती छोड़कर, अन्य भाषाओं की अपेक्षा अपभ्रंश से अधिक योग प्राप्त हुआ है। इस कथन की ठीक-ठीक और सच्ची प्रतीति तो जैन-ज्ञान भण्डारों में अप्रकाशित पड़े हुए अपभ्रंश साहित्य के प्रकाश में आने पर धीरे-धीरे विदित होगी। फिर भी अभी तक जितना और जो कुछ अपभ्रंश साहित्य प्रकाश में आ चुका है, उस के आधार पर यह सर्वाविदित हो चुका है कि हिन्दी के निर्माण में अपभ्रंश का महत्त्वपूर्ण योग है।

स्वर्णकाल को प्राप्त हुई प्रत्येक भाषा ही अपने मध्य कालीन भाग में अपने उदर में कोई अन्य ऐसी भाषा का गर्भधारण कर बढ़ती चलती है कि ज्योंही वह अपने प्राचीन रूप से उत्तर काल में वार्धक्यग्रस्त होकर निस्चेष्ट बनने लगती है, मध्यकाल से उसके उदर में पलती हुई वह भाषा जन-साधारण के मुख-मार्ग से निस्सरित होने लगती है और अपनी प्रमुखता स्थापित करती हुई अन्त में प्रमुख भाषा का रूप धारण कर लेती है।

अपभ्रंश भाषा के स्वर्णयुग के मध्यभाग अर्थात् वि० की आठवीं शताब्दी के पिछले वर्षों में वि० सं० ७३४ के बाद महाकवि स्वयंभू ने "हरिवंश पुराण" और पद्म पुराण (रामायण) की रचना की थी। हिन्दी के बीज प्रक्षेप करनेवालों में ये ही प्रथम अपभ्रंश-हिन्दी कवि माने जाते हैं। इनकी रचना में हिन्दी के बीज देखिये।

सीता-(अग्नि - परीक्षा के समय)

"इच्छउं यदि मम मुख न निहारै।
यदि पुनि नयनानन्दहिं, न समर्पे उ रघुनन्दनहिं॥"[१]

जिसे आज हिन्दी के प्रमुख विद्वानों-महापंडित राहुल सांकृत्यायन तथा डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि ने हिन्दी भाषा का प्रथम महाकाव्य मान लिया है। इस प्रकार जैन विद्वानों द्वारा रखी हुई नींव इतनी मजबूत थी कि आज

१- *हिन्दी काव्यधारा-पृ० ६९ (स्वयंभू कृत रामायण-४९१५)।*

उसी भाषा को स्वतंत्र भारत में राष्ट्रभाषा होने का सौभाग्य मिला है । हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने जैन साहित्य के सम्बन्ध में निम्न उद्‌गार प्रकट किये हैं –

"इधर जैन अपभ्रंश–चरित काव्यों की जो विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह सिर्फ धार्मिक सम्प्रदाय की मुहर लगाने मात्र से अलग कर दी जाने योग्य नहीं है । स्वयंभु, चतुर्मुख, पुष्पदंत और धनपाल जैसे कवि केवल जैन होने के कारण ही काव्यक्षेत्र से बाहर नहीं चले जाते । धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटी से अलग नहीं की जा सकती । यदि ऐसा समझा जाने लगे तो तुलसीदास का "रामचरितमानस" भी साहित्य में विवेच्य हो जावेगा और जायसी का "पद्‌मावत" भी साहित्य की सीमा के भीतर नहीं घुस सकेगा । वस्तुतः लौकिक निजन्धरी कहानियों को आश्रय करके धर्मोपदेश देना इस देश की चिरचरित प्रथा है । कभी–कभी ये कहानियाँ पौराणिक और ऐतिहासिक चरित्रों के साथ घुला दी जाती हैं । यह तो न जैनों की निजी विशेषता है न सूफियों की ।"

हिन्दी–अपभ्रंश :

वि. १२ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से राजस्थानी हिन्दी का उत्तरोत्तर विकास की ओर गतिशील रहने के प्रमाण मिलते हैं, और अपभ्रंश श्री हेमचन्द्र युग में आकर गौण अर्थात् अप्रधान बनने लग जाती है अर्थात् राजस्थानी–हिन्दी रचनाएँ बनने लगीं । अपभ्रंश–हिन्दी रचनाओं का काल हमने वि. १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध पर्यन्त ही समीचीनतः माना है ।

इस समय तक की प्राप्त श्वेताम्बर रचनाएँ जिन्हें हिन्दी कहा जाता है वे राजस्थानी की हैं और अपभ्रंश प्रभावित प्राप्त हिन्दी जैन दि. साहित्य में हिन्दी का निखरा हुआ रूप १६वीं शती के उत्तरार्द्ध की रचनाओं में देखने को मिलता है ।

अपभ्रंश रहित हिन्दी :

वि. १४वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में "हिन्दी", "अपभ्रंश" के प्रभाव से मुक्त बनने लगती है जो १६वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अपभ्रंश मुक्त होकर स्वतंत्र भाषा के रूप में परिणत हो जाती है । इस उपकाल में उल्लेखनीय हिन्दी जैन कवि धर्मसूरि, धेल्ह, विनयप्रभसूरि, अम्बदेव, दयासागरसूरि, और संवेगसुन्दर हैं । धर्मसूरि ने "जम्बूस्वामीरास" धेल्ह ने वि.सं. १३७१ में चउबीसी गीत तथा "गजसुकुमार रास" विनयप्रभ ने वि.सं. १४१२में "गौतम रासा" अम्बदेव ने "संघपति समरारास" दयासागर ने वि.सं. १४८६में "धर्मदत्त

चरित्र" और संवेगसुन्दर ने सं. १५४८ में – "सारसिखामणरास" की हिन्दी रचनाएँ की हैं।

ऊपर अब तक जो हमने लिखा है उसका सार इतना ही है कि "प्राकृत" से अपभ्रंश भाषा का उद्‌भव हुआ और "अपभ्रंश से आधुनिक बोलियों का निर्माण हुआ। हिन्दी भी आधुनिक बोलियों में एक बोली है। हिन्दी का उद्‌भव "अपभ्रंश" से है और हिन्दी का विकास "अपभ्रंश" में ही हुआ है। "हिन्दी" में हम अनेक भाषाओं के शब्द देखते हैं, परन्तु इस पर वह अन्य भाषा से संभूत हुई नहीं मानी जा सकती। हिन्दी भाषा के विकास के अध्ययन के लिए "अपभ्रंश" का साहित्य बहूत उपयोगी है, क्योंकि "अपभ्रंश" में "प्राचीन अथवा आदि हिन्दी" कहा जाने वाला स्वरूप यथावत् विद्यमान है और "अपभ्रंश" में प्राचीन हिन्दी–गद्य सुरक्षित है। उपलब्ध हिन्दी जैन साहित्य जैनेतर हिन्दी साहित्य से मिलाने बैठेंगे तो वहाँ थोड़ा अन्तर काल के निर्धारण में पड़ा हुआ मिलेगा। कारण स्पष्ट है – जैन विद्वान अपभ्रंश के पंडित थे और अपभ्रंश में अनेक उपयोगी धर्मग्रंथ रचे जा चुके थे और जैनेतर हिन्दी विद्वान अपभ्रंश के न तो पंडित ही थे और न उनके धार्मिक ग्रन्थ ही इसमें रचित थे, अतः जैनेतर हिन्दी विद्वान वि. १४ वीं शताब्दी से ही हिन्दी में ठोस रचनाएँ कर सके। हिन्दी जैन विद्वानों को अपभ्रंश के गाढ़ प्रभाव से मुक्त होने में अधिक समय लगना स्वाभाविक है, अतः हिन्दी जैन विद्वानों की हिन्दी कही जानेवाली रचनाएँ वि. १४ वीं शताब्दी से प्रारम्भ नहीं हो कर वि. १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारंभ हुई मिलती हैं अर्थात हिन्दी जैन विद्वान वि. १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पूर्णतः अपभ्रंश मुक्त हिन्दी रचना करने लगे।

अन्य प्रान्तीय लोक–भाषाओं में भी जैन विद्वानों ने रचनाएँ की हैं। श्वेताम्बर साधु और आचार्यों की राजस्थान, मालवा, गुर्जर अधिकतर विहार भूमि रही है। उन्होंने राजस्थानी और गूर्जर भाषाओं में भी इन शताब्दियों में बड़े महत्त्व के कई ग्रन्थ लिखे हैं। राजस्थानी और गूर्जर भाषा अन्य लोक भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी के अधिक निकट मानी जाती हैं; अतः मरु–गूर्जर जैन साहित्य भी हिन्दी के लिए एक बहुत बड़ी देन और महत्त्व की वस्तु है।

हिन्दी–काल –

हिन्दी जैन साहित्य की दृष्टि से यह काल वि. १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से वि.सं. १९वीं पर्यन्त माना गया है। हिन्दी का उत्कर्षरूप इस काल के प्रारम्भ में बनने लगता है जो इसके अन्त में आधुनिक रूप में परिवर्तित हुआ है। इस काल के हिन्दी जैन विद्वानों में वि. सं. १५८१ में "यशोधर

चरित्र" के कर्ता गौरवदास और प्रसिद्ध "कृपण-चरित्र" तथा "नेमिश्वर की बोली" के कर्ता कवि ठाकुरसी, धर्मदास के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कवि ठकरसी के पश्चात् १७वीं शती में तो हिन्दी जैन कवि, लेखक, ग्रन्थकार, टीकाकारों की बाढ़सी आ गई और हिन्दी जैन धार्मिक साहित्य के साथ ही अन्य अनेक विषयों में रचनाएँ और अनुवाद ग्रन्थ लिखे गये। जैन विद्वान परम्परा में इस हिन्दी काल में विविधमुखी और विविध विषयक रचनाएँ करके हिन्दी जैन साहित्य को विपुल और विविध विषयक बनाया।

हिन्दी जैन साहित्य विकास की दृष्टि से तो वि. १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध पर्यन्त हमने अपभ्रंश-हिन्दी काल माना है, परन्तु विषय की दृष्टि से जैसा हिन्दी जैनेतर साहित्य में वि. चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग से भक्ति काल का जो प्रारम्भ होना माना गया है वैसा हमको कोई काल निर्धारित करने के लिए बाधित नहीं होना पड़ा है। कारण कि जैन साहित्य समयानुसारी नहीं, वरन् शाश्वत धर्मानुसारी ही अधिकतर प्रधान रहता है। हाँ; रचनाओं में वेग और शैथिल्य देश, काल और स्थिति के ही कारण बढ़ते-घटते अवश्य रहते है।

चौदहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में उत्तर भारत में सर्वत्र मुस्लिम-राज्य स्थापित हो चुके थे। राजपूत राजा या तो उनके आधीन हो चुके थे या अशक्त होकर शिथिल से बन चुके थे। कभी-कभी तलवार भी चमक उठती थी; परन्तु वह किसी-किसी और अमुक स्थल में ही। मुस्लिम शासकों ने यवन-राज्यों की स्थापना करके ही विश्राम लेना नहीं सोचा था। अब वे बलप्रयोग से यहाँ के निवासियों को मुसलमान बनाने पर तुल उठे थे। राजाजन तो अबल हो चुके थे और प्रजा भी सर्व प्रकार असहाय थी। ऐसी धर्मसंकटकी स्थिति में ईश्वर के भक्त ईश्वर की उपासना के सिवाय और क्या कर सकते थे और हमारे स्याद्वाद के विद्वान आत्मधर्म और मानवोचित व्यवहार का उपदेश देने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकते थे। जैनेतर संत और भक्तों का एक समुदाय निकला जिसमें नामदेव, रामानन्द, रैदास, कबीर, धर्मदास, नानक, शेख फरीद, मलूकदास, दादुदयाल और सुन्दरदास के नाम उल्लेखनीय हैं। मुसलमानों के भीतर से भी एक दल निकला जिसने प्रेम-पंथ का प्रचार किया। प्रेम-पंथ "सुफी मत" के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध है। जैन विद्वान साधु और आचार्यों ने अपने तत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिये। सर्वत्र भारत में उन्होंने विहार करके मानव-धर्म को समझाया; यवन-राजाओं की राज्य-परिषदों में, बादशाहों के हजूरगाह में जाकर उन्होंने धर्म-सहिष्णुता और अभयदान का महत्त्व समझाया। जो संत-साहित्य, भक्त-

काव्य, धर्म-संगीत इनकी वाणी से, कलम से, सितार से निकला उसने धर्म-संकट को टालने में पूरी-पूरी सफलता प्राप्त की। हिन्दी साहित्य के विकास के इतिहास को लिखने वालों ने अनेक जैनेतर भक्त संत और सूफी मत के प्रेमपंथियों का नामोल्लेख किया और उनका पूर्ण परिचय देने की उदारता बतलाई है। परन्तु इनके ही साथी जैन धर्मात्मा-पुरुषों में से, जिनके नाम दो या दस नहीं, सैंकडों उपलब्ध हैं, उनमें से, एक बनारसीदास का नाम केवल उल्लेखित किया। तिस पर हिन्दी जैन साहित्य में तो अतिरिक्त संत अथवा भक्त या धार्मिक साहित्य के अन्य प्रायः सभी विषयों में भी रचनाएँ हुई हैं। इन शताब्दियों में जैनेतर साहित्य जहाँ केवल संत-साहित्य के रूप में ही मिलता है, वहाँ जैन हिन्दी साहित्य में वह विविध विषयक और विविधमुखी है।

हिन्दी में धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त जैन विद्वानों द्वारा लिखा हिन्दी साहित्य- पुरातन काव्य, चरित काव्य, प्रबन्ध काव्य, गीतकाव्य, रासा साहित्य, पुराण एवं कथा साहित्य, अध्यात्मिक साहित्य एवं प्रकीर्णक साहित्य आदि श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

पुरातन काव्य –

अपभ्रंश काव्यों को पुरातन काव्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है। अपभ्रंश भाषा में जैनों की अपार संपत्ति है जो अन्यत्र नहीं मिल सकती। स्वयंभू का "पउमचरिउ" तथा "रिट्ठणेमिचरिउ" (८वीं शताब्दी), पुष्पदंत कृत महापुराण (११ वीं शताब्दी), धवलकृत "हरिवंश पुराण" वीरकृत जम्बूसामी चरिउ (१०७०) आदि रचनाएँ अपभ्रंश के उच्च कोटि के महाकाव्य हैं। पुष्पदंत का "महापुराण" एवं धवल का "हरिवंश पुराण", अपभ्रंश की विशाल रचनाएँ हैं जिनके गूढ अध्ययन के पश्चात् अपभ्रंश भाषा की समृद्धि का पता चलता है। ये ऐसी अमर कृतियाँ हैं, जो किसी भी काव्य में अपने महत्त्व के कारण चमकती रहेंगी। परवर्ती हिन्दी साहित्य के विकास में इन रचनाओं ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है जिसको किसी भी दृष्टि से ओझल नहीं किया जा सकता। सूरदास, तुलसीदास, जायसी, केशव आदि महाकवि इन रचनाओं से काफी उपकृत हैं, क्योंकि उन्होंने अपभ्रंश काव्यों की शैली को अपने काव्यों में काफी विकसित किया है।

चरित काव्य अथवा प्रबन्ध काव्य –

जैन विद्वानों ने हिन्दी में सैकडों की संख्या में चरित काव्यों की रचना की है। इन चरित काव्यों में किसी न किसी महापुरुष के जीवन का वर्णन

किया हुआ होता है । चरित काव्यों का उद्देश्य श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन पाठकों के सामने रखना है जिससे वे भी अपने जीवन को सुधार सकें । जैन विद्वानों की चाहे हम इसे विशेषता कह सकें, चाहे काव्यरचना की शैली, उन्होंने जो भी रचना की है, उसका उद्देश्य अपना काव्य चमत्कार प्रकट करना न होकर पाठकों के कल्याण की ओर विशेष ध्यान रखना है । इस कारण कितनी ही रचनाएँ हिन्दी की उच्च रचनाएँ होने पर भी महाकाव्य की उस परिभाषा में नहीं आतीं जिस परिभाषा में विद्वानों ने महाकाव्य को तोलना चाहा है । लेकिन इसी से इन चरित–काव्यों का महत्त्व कम नहीं हो जाता । महाकवि भूधर का 'पार्श्वपुराण' (१७८९) परिमल का 'श्रीपाल चरित्र' आदि कितने ही हिन्दी के सुन्दर चरित–काव्य हैं जिन्हें महाकाव्यों के समकक्ष में रखा जा सकता है । प्रबन्ध–काव्य की परिभाषा में अधिकांश चरित–काव्य उपयुक्त बैठते हैं । 'प्रद्युम्न चरित' (१४११), जिनदास का 'जम्बुस्वामी चरित' (१५४२) आदि प्रबन्ध–काव्य की श्रेष्ठ रचनाएँ हैं । इन काव्यों में अपने नायकों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है ।

रासा साहित्य –

रासा साहित्य जैन विद्वानों को काफी प्रिय रहा है । १३ वीं शताब्दी से लेकर १८वीं शताब्दी तक इन रासाओं की रचना होती रही । रासा का अर्थ हिन्दी जैन साहित्य में कथा के रूप में वर्णन करना है; किन्तु यह कथा काव्य–चमत्कार सहित कही हुई होती है । ये एक प्रकार के खण्ड–काव्य हैं, जिनमें अपने नायकों के जीवन के किसी भी अंश का उत्तम वर्णन किया गया है । यदि जैन रासाओं की एक सूची तैयार की जाये तो वह काफी विस्तृत होगी । १३वीं शताब्दी में धर्मसूरि ने 'जम्बूस्वामी रासा' तथा विजयसेन सूरि ने 'रेवंतगिरि रासा' को लिखकर हिन्दी भाषा के विकास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी जोड़ दी । इसी प्रकार अम्बदेव द्वारा रचित 'संघपतिरासा' (१४ वीं), विनयप्रभ का 'गौतम रासा' (१५वीं शताब्दी) हिन्दी साहित्य की उत्तम संपत्ति है । १७वीं शताब्दी में जैन विद्वानों ने सबसे अधिक रासा लिखे । ब्रह्मरायमल ने 'श्रीपालरासा' (१६३०), 'नेमिश्वर रासा' (१६१५), 'प्रद्युम्नरासा' (१६२९), कल्याणकीर्ति ने 'पार्श्वनाथ रासो' (१६९७), पांडे जिनदास ने 'जोगी रासो' तथा श्रावकाचार रास (१६१५), ब्रह्मज्ञानसागर ने "हनुमतरासा" (१६३०), भुवनकीर्ति ने "जीवंधर रास" (१६०६), तथा "जम्बूस्वामी रास" (१६३०), रूपचन्द ने "नेमिनाथ रासो"–आदि रचनाएँ लिखकर हिन्दी रासा साहित्य का भण्डार भर दिया । इसी प्रकार १८ वीं शताब्दी में भी काफी रासा साहित्य लिखा गया जो जैन ग्रन्थ–भण्डारों में उपलब्ध होते हैं ।

पुराण एवम् कथा–साहित्य –

संस्कृत, प्राकृत, एवं अपभ्रंश आदि सभी भाषाओं में जैनों ने विशाल पुराण एवं कथा–साहित्य लिखा है । इसलिए इन सभी पुराण एवं कथाओं का हिन्दी में रूपान्तर विद्वानों द्वारा कर दिया गया है । जैन पुराण साहित्य केवल पौराणिक कथाओं का ही संकलन नहीं है, किन्तु काव्य की दृष्टि से भी उत्तम रचनाएँ हैं । कितने ही पुराण तो काव्य–चमत्कार की दृष्टि से काफी उत्तम होते हैं । जैन विद्वानों ने हिन्दी पद्य में ही पुराणों की रचनाएँ नहीं कीं, किन्तु हिन्दी गद्य भाषा में भी पुराणों को लिखा है और हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में पर्याप्त योग दिया है । ब्रह्म–जिनदास कृत आदि पुराण, शालिवाहन कृत हरिवंश पुराण (१६९५), नवलराम द्वारा लिखित वर्धमान पुराण (१८२५), खुशालचन्द कृत पद्मपुराणं (१७८३), हरिवंशपुराण (१७८०), व्रतकथाकोश (१७८३), दौलतराम कृत पुण्याश्रव कथाकोश (१७७३), आदि पुराण (१८२४), पद्मपुराण (१८२३), हरिवंश पुराण (१८२९), बुलाखीदास कृत पाण्डवपुराण (१७५४) भट्टारक विजयकीर्ति का कर्णामृत पुराण (१८२६) सेवाराम शाह का शान्तिनाथ पुराण आदि उत्तम एवं उल्लेखनीय रचनाएँ हैं । इसी प्रकार जैन विद्वानों द्वारा लिखा हुआ कथा–साहित्य भी कम नहीं है ।

अध्यात्म साहित्य–

अध्यात्मवाद जैन साहित्य का प्रमुख अंग रहा है । आचार्य कुन्दकुन्दन ने सर्वप्रथम प्राकृत भाषा में "समयसार" एवं "षट्पाहुड" की रचना करके इस साहित्य की नींव रखी थी । इसके पश्चात् तो जैनाचार्यों ने इस पर खूब लिखा । हिन्दी भाषा में भी इस साहित्य की कमी नहीं है । योगीन्द्र का "परमात्मप्रकाश" तथा "दोहा पाहुड" अध्यात्म विषय की उच्चतम् रचनाएँ हैं ।

गीति–काव्य –

गीति काव्यों में भावना की अनुभूति अधिक गहरी होती है, इसलिए गीति–काव्य भी जैन साहित्य का प्रमुख भाग रहा है । जितने भी हिन्दी गद्य और पद्य साहित्य के विद्वान हुए, उन्होंने गीत, पद, भजन आदि के रूप में थोड़ा बहुत अवश्य लिखा है । कितने ही कवियों ने तो अपनी रचनाओं के आगे गीत शब्द भी जोड़ दिया है । इससे उनके गीति–साहित्य के प्रति अनुराग का पता चलता है । इनमें पूनों का "मेघकुमार गीत", सकलकीर्ति का मुक्तावलि गीत, नेमीश्वर गीत, णमोकार फल गीत, आदि उल्लेखनीय हैं । जैन भण्डारों में संग्रहित गुटकों में इन पदों एवं भजनों का खूब संग्रह मिलता है । जिसका अधिकांश भाग अभी तक प्रकाश में भी नहीं आया है ।

यह तो हुई सर्व साधारण हिन्दी जैन साहित्य की बात । फिर यहाँ पर हमारा सीधा नाता कृष्ण–काव्य के साथ है । अतः हम उसकी बात लेकर चलें ।

(२) हिन्दी जैन कृष्ण–साहित्य (कालक्रमानुसार सूची तथा विस्तृत कृति परिचय)

हिन्दी में कृष्ण–चरित से संबंधित दो प्रकार की कृतियाँ उपलब्ध हैं –

(१) विशालकाय काव्य कृतियाँ जो मूलतः संस्कृत ग्रन्थों यथा – जिनसेनाचार्य कृत "हरिवंश पुराण" गुणभद्राचार्य कृत "उत्तर पुराण" (महापुराण) तथा "हेमचन्द्राचार्य कृत "त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित" के अनुकरण पर रची गई हैं, इन कृतियों में कृष्ण–चरित का सम्पूर्ण वर्णन है, साथ ही परम्परागत अन्य शलाका पुरुषों का भी उक्त कृतियों के अनुकरण पर वर्णन हुआ है । ये कृतियाँ हैं – शालिवाहन कृत "हरिवंश पुराण", खुशालचन्द काला कृत "हरिवंश पुराण, एवं "उत्तर पुराण", मुनि चोथमलजी कृत "भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम कृष्ण" आदि ।

(२) लघु काव्य कृतियाँ जो रास, प्रबन्ध, चौपाई, फागु, बेलि, चरित आदि संज्ञक हैं । ये कृतियाँ नेमिनाथ, गजसुकुमाल, प्रद्युम्न, बलराम, पाण्डवगण आदि से संबंधित हैं और इनमें कृष्ण–चरित का प्रसंगानुकूल वर्णन आवश्यक रूप में हुआ है । इन कृतियों के रचयिताओं ने आगम ग्रन्थों तथा संस्कृत के पुराण व चरित ग्रन्थों से अपने कथानक चुने हैं और इनको आधार बनाकर अपनी कृतियाँ प्रस्तुत की हैं । इस तरह की अनेक कृतियाँ उपलब्ध हैं । यथा प्रद्युम्न चरित (सधारु कवि), नेमिनाथ फागु (जयशेखर सूरि), बलभद्र चौपाई (कवि यशोधर) गजसुकुमार रास (कवि देल्हण) आदि ।

कृष्ण विषयक विभिन्न हिन्दी जैन रचनाओं का परिचय हम काल–क्रमानुसार नीचे दे रहे हैं । हिन्दी जैन साहित्य में अनेक कृष्ण–विषयक रचनाएँ हैं । जैन कवियों में नेमिनाथ का चित्रण अत्यन्त रुढ़ और प्रिय विषय था और कृष्ण–चरित उसी का एक अंश होने से हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण–काव्यों की कोई कमी नहीं है । यहाँ पर एक सामान्य परिचय देने की दृष्टि से कुछ प्रमुख हिन्दी जैन कवियों की कृष्ण–विषयक रचनाओं का विवेचन और कुछ विशिष्ट अंश प्रस्तुत किये हैं ।

क्रम	नाम–कृति	कृष्ण चरित अभिव्यक्ति	कृतिकार	भाषा रचनाकाल
१.	हरिवंश पुराण[१]	मुख्य	शालिवाहन	हिन्दी १६३८ ई०
२.	हरिवंश पुराण[२]	मुख्य	खुशालचन्द काला	हिन्दी १७२३ ई०
३.	हरिवंश पुराण[३]	मुख्य	अज्ञात प्रति अपूर्ण है, (१६६ से आगे के पृष्ठ नहीं हैं।)	हिन्दी गद्य
४.	हरिवंश पुराण[४]	मुख्य	नेमिचन्द्र (इसका दूसरा नाम नेमीश्वर रास भी है।)	हिन्दी १७१२ ई०
५.	नेमिनाथ रास[५]	गौण	सुमतिगणि	हिन्दी–१२३८ ई०
६.	गजसुकुमालरास[६]	गौण	कवि देल्हण (देवेन्द्र सूरि)	हिन्दी १३ वीं शता० ई०
७.	प्रद्युम्न चरित[७]	गौण	कवि सधारु	प्राचीन हिन्दी १३५४ ई०
८.	रंग सागर नेमिफागु[८]	गौण	सोमसुन्दर सूरि	हिन्दी १४२६ ई०
९.	सुरंगामिय नेमि फागु[९]	गौण	धनदेव गणि	हिन्दी १४४५ ई०
१०.	नेमिनाथ फागु[१०]	गौण	जयशेखर सूरि	हिन्दी १५वीं शता० ई०

१ – अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध दि० जैन पल्लीवाल मंदिर, घुलियागंज,आगरा एवं आमेर शास्त्र भण्डार,जयपुर।

२ – अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार,जयपुर एवं हस्तलिखित प्रति खण्डेलवाल दि० जैन मंदिर, उदयपुर में उपलब्ध।

३ – अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

४ – अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

५. हस्तलिखित प्रति : जैसलमेर दुर्ग स्थित शास्त्र भण्डार में उपलब्ध।

६. 'आदिकाल की प्रामाणिक हिन्दी रचनाएँ (संपा) डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त) पृ०५७–६० पर प्रकाशित।

७. प्रकाशक महावीरजी अतिशय क्षेत्र प्रबन्ध कारिणी समिति, जयपुर। संपा० पं० नैनसुखदास न्यायतीर्थ एवं डॉ० कस्तुरचन्द कासलीवाल।

८ हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ : प्रकाशक–मंगल प्रकाशन,जयपुर, पृ० १३६–१४८ पर प्रकाशित।

९. वही, पृ० ११९–१२६ पर प्रकाशित।

१०. हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ– पृ. ११०–११७

११. बलिभद्र चौपाई[११]	गौण	कवि यशोधर	हिन्दी ५२८ ई०
१२. नेमिनाथ रास[१२]	गौण	मुनि पुण्य रतन	हिन्दी–१५२९ ई.
१३. प्रद्युम्न रासो[१३]	गौण	ब्रह्म रायमल्ल	हिन्दी–१५७१ ई.
१४. नेमिश्वर रास[१४]	गौण	ब्रह्म रायमल्ल	हिन्दी–१५५८ ई.
१५. नेमीश्वर की बेलि[१५]	गौण	कवि ठाकुरसी	हिन्दी–१६वीं शता. ई.
१६. बलभद्र बेलि[१६]	गौण	कवि सालिग	हिन्दी–ई. सन १६१२
१७. नेमिश्वर चन्द्रायण[१७]	गौण	नरेन्द्र कीर्ति	१६६९ वि. की प्रतिलिपि उपलब्ध)
१८..नेमिनाथ रास[१८]	गौण	कनककीर्ति	हिन्दी–१६३५ ई.
१९. नेमिनाथ रास[१९]	गौण	मुनि केसर सागर	हिन्दी–प्रतिलिपि सन्
२०. प्रद्युम्न प्रबन्ध[२०]	गौण	देवेन्द्र कीर्ति	हिन्दी–१६३५–१६६५ ई.
२१. पाण्डव पुराण[२१]	गौण	बुलाकीदास	हिन्दी–१६९७ ई.
२२. नेमीश्वर रास[२२]	गौण	नेमिचन्द्र	हिन्दी–१७१२ ई.
२३. नेमिनाथ चरित्र[२३]	गौण	अजयराज पाटनी	हिन्दी–१७३६ इ.
२४. उत्तर पुराण[२४]	गौण	खुशालचंद्र काला	हिन्दी–१७३२ ई.
२५. नेमिनाथ चरित्र[२५]	गौण	जयमल	हिन्दी–१७५७ ई.

११. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।
१२. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध दि. जैन मंदिर, ठोलियान, जयपुर ।
१३. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।
१४. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।
१५. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, दि. जैन मंदिर, बधीचन्दजी, जयपुर ।
१६. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर ।
१७. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।
१८. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, विनयचन्द ज्ञान भण्डार, जयपुर ।
१९. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, विनयचन्द ज्ञान भण्डार, जयपुर ।
२०. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, दि. जैन मंदिर, संभवनाथजी, उदयपुर ।
२१. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, शास्त्र भण्डार, श्री महावीरजीक्षेत्रजयपुर ।
२२. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।
२३. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, दि. जैन मंदिर, ठोलियान, जयपुर ।
२४. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, दि. जैन मंदिर, लुणकरणजी पांड्या, जयपुर ।
२५. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, विनयचन्द ज्ञान भण्डार, जयपुर ।

२६. नेमिनाथ रास[२६]	गौण	रतनमुनि	हिन्दी–१६६७ ई.
२७. नेमनाथ रास[२७]	गौण	विजयदेव सूरि	हिन्दी–१७६९ ई.
२८. नेमिचन्द्रिका[२८]	गौण	मनरंगलाल पल्लीवाल	हिन्दी–१८२३ ई.
२९. कृष्ण की ऋद्धि[२९]	गौण	बुद्धमल	हिन्दी–१८४९ ई.
३०. प्रद्युम्न चरित[३०]	गौण	मन्नालाल	हिन्दी–१८४४ ई.
३१. भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम कृष्ण[३१]	गौण	मुनि चौथमल	हिन्दी–१९४१ ई.

हिन्दी में रचित जैन कृष्ण काव्य कृतियों की काल क्रमानुसार सूची प्रस्तुत की गई है, तथा उपलब्ध कृतियों के विषय की प्रमुखता अथवा गौणता के आधार पर विस्तृत परिचय यहाँ दिया जा रहा है –

कृति परिचय :[१]

(१) हरिवंश पुराण–[२]

प्रस्तुत कृति के रचयिता शालीवाहन हैं । उन्होंने जिनसेन कृत हरिवंश पुराण (संस्कृत) के आधार पर इसकी रचना की है । इसका उल्लेख कृति की प्रत्येक सन्धि के अन्त में इस प्रकार उपलब्ध है –

"इति श्री हरिवंश पुराणे संग्रहे भव्य समंगलकर्णे, आचार्य श्री जिनसेन–विरचिते तस्योपदेशे श्री शालिवाहन विरचिते ।" – इस ग्रन्थ की रचना (सं. १६९५) ई. सन १६३८ में पूर्ण हुई थी । कवि ने स्वयं इसका उल्लेख किया है –

"संवत सोरहसे तहा भए, तापर पचानव गए ।
माघ मास कृष्णापछि जानि, सोमवार सुभवार बरवानि ।। ३/७८ ।।"

---

२६. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर ।
२७. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, दि. जैन मंदिर, ठोलियान, जयपुर ।
२८. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, दि. जैन मंदिर, बड़ा तेरहपंथियों का, जयपुर ।
२९. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर ।
३०. अप्रकाशित : प्रति उपलब्ध, दि. जैन मंदिर, ठोलियान, जयपुर ।
३१. प्रकाशित : प्रकाशक सिरेमलजी, नन्दलालजी, पीतोलिया, सिहोर, केन्ट ।
१– जैन कृष्ण स्वरूप – महावीर कोटिया कृतिपरिचय का आधार उक्त ग्रन्थ है ।
२– कवि शालीवाहन : (हस्तलिखित प्रति) उपलब्ध, आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

इसकी रचना के समय कवि आगरा में निवास करता था और वहीं इसकी रचना पूर्ण हुई । आगरा में उस समय शाहजहाँ राज्य करता था –

"नगर आगरा उत्तम थानु, शाहजहाँ साहि दिये मनु भानु" (३/८)

प्रस्तुत कृति की हस्तलिखित प्रतियां कई स्थानों पर उपलब्ध हैं ।[१]

इसी कृति की १२ से २६ तक की संधियों में कृष्णचरित का वर्णन है । प्रथम संधि में कवि ने २४ तीर्थंकर तथा सरस्वती माता की वन्दना की है । दूसरी और तीसरी संधि में तीनों लोकों के वर्णन के पश्चात् चौथी संधि में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव तथा भरत चक्रवर्ती का चरित–वर्णन है ।

४ से ११ तक की संधियों में प्रथम २१ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ८ बलदेव, ८ वासुदेव तथा ८ प्रति वासुदेवों का संक्षिप्त चरित–वर्णन है । इसके बाद संपूर्ण कृति में २२ वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि तथा नवम् वासुदेव कृष्ण का चरित–वर्णन विस्तार से हुआ है ।

वस्तुतः कृति की मुख्य आधिकारिक कथावस्तु इन्हीं दो शलाका पुरुषों का चरित–वर्णन है । कृष्ण के अनुज गजसुकुमाल तथा पुत्र प्रद्युम्न का चरित–वर्णन भी अवान्तर प्रसंगों के रूप में हुआ है ।

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित ब्रजभाषा है । यह मुख्यतः दोहा चौपाई छन्दों में रचित है । कृष्ण के वीर श्रेष्ठ पुरुष के व्यक्तित्व का वर्णन ही कृति में मुख्यतः हुआ है ।

कंस की मल्ल–शाला में किशोर कृष्ण का पराक्रम देखिए –

"चडूर मल्ल उठ्यो काल समान
वज्रमुष्टि दैयत समान ।
जानि कृष्ण दोनों कर गहै,
फेर पाई धरती पर वहै ।।"[२]

रुक्मिणी हरण करते समय कृष्ण जब अपना पाँचजन्य शंख फूँकते हैं तो सम्पूर्ण धरामण्डल थरथरा उठता है तथा दुश्मन का सैन्यदल काँपने लगता है –

"लई रुकमणि रथ चढ़ाई, पंचाइण तब पूरीयो ।
णि सुनि वयणु सब सैन कंप्यौ महिमण्डल धरहर्यो ।।

---

१ *एक प्रति श्री पल्लीवाल दि. जैन मंदिर धूलियागंज आगरा में उपलब्ध है जिसकी प्रतिलिपि सं. १८०८ की है । दूसरी प्रति आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में है जिसकी प्रतिलिपि सं. १७५९ की है ।*

२– *शालिवाहन कृत हरिवंश पुराण (हस्तलिखितं आगरा प्रति) पृ. ४५, १७८०–८१*

मेरु कमठ तथा शेष कंप्यौ महल्लै जाइ पुकारियो ।
पुहुमि राहु अवधारियो, रुक्मणि हरि लै गयो ।।"[1]

इस अवसर पर हुए युद्ध का कवि ने अत्यन्त ओजस्वी वर्णन किया है। ओजस्वी वर्णन की दृष्टि से कवि कि भाषा बहुत ही समर्थ है। इस युद्ध का वर्णन करते हुए कवि शब्दबद्ध करता है –

"सेशपाल अरु भीखम राउ,
पैदल मिलै ण सूझे ठाउं ।
छोरण बूंदत उछली खेह,
जाणौ गरजे भादों मेह ।।
शारंगपाणि धनक ले हाथ,
शसिपालै पठउ जम साथ ।
हाकि पचारि उठै दोऊ वीर,
बरसे बाण शयण धनवीर ।।"[2]

कृष्ण तथा बलराम की यह वीरता तथा पराक्रम कृति में अनेक स्थलों पर वर्णित है।

कृष्ण का यह अद्वितीय पराक्रम उनके श्रेष्ठ अर्घ चक्रवर्ती राजा के रूप के अनुकूल है। जरासंध के साथ युद्ध में उनका यह वीर स्वरूप साकार हो उठा है। जिस चक्र को जरासंध ने कृष्ण को मारने के लिए फेंका, वही चक्र कृष्ण की प्रदक्षिणा करके उनके दाहिने हाथ पर स्थिर हो जाता है। और पुनः कृष्ण द्वारा छोड़े जाने पर वही जरासंध का सिंर काट ड़ालता है।

कवि के शब्दों में –

"तब मागध ता सन्मुख गयौ,
चक्र फिराई हाकि करि लयौ ।
तापर चक्र छारियो जामा,
तीनों लोक कंपियो तामा ।।
हरि को नमस्कार करि जानि,
दाहिने हाथ चढ्यौ सो आनि ।
तब नारायण छांड्यो सोह,
मागध टूक रतन–सिर होइ ।।"[3]

१– शालिवाहन कृत हरिवंश पुराण (पृ.५२, १९५३)
२– हरिवंश पुराण (आगरा प्रति) पृ. ५२ । १९५८ व १९५३ ।
३– हरिवंश पुराण (आगरा प्रति) २५०१–२५०४

कृति के उक्त वीर स्वरूप वर्णन के अतिरिक्त प्रस्तुत कृति में कृष्ण के दूध–दही खाने–फैलाने का भी वर्णन हुआ है । यथा –

"आपुन खाई, ग्वाल धर देई,
घर को क्षार विराणो लेई ।
घर–घर वासण फोड़े जाई ।
दूध–दही सब लेहि छिड़ाई ।।"[१]

(२) खुशालचन्द काला कृत हरिवंश पुराण एवं उत्तर पुराण :[२]

कृष्ण चरित से संबंधित उक्त दोनों हिन्दी काव्यकृतियों की हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ जैन ग्रन्थ भण्डारों में उपलब्ध हैं । ये दोनों कृतियाँ क्रमशः जिनसेनाचार्य कृत हरिवंश पुराण (संस्कृत) तथा गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण (संस्कृत) की शैली पर रचित हैं ।

हरिवंश पुराण की रचना संवत १७८० (सन १७२३) तथा उत्तर पुराण की रचना संवत् १७९९ (सन् १७४२) में पूर्ण हुई–ऐसा उल्लेख स्वयं ग्रन्थकर्ता ने ग्रंथों की समाप्ति पर किया है ।

हरिवंश पुराण में कवि खुशालचन्द अपनी कथा की परम्परा इस प्रकार कहते हैं –

"प्रथम भगवान महावीर ने यह कथा गौतम स्वामी को कही, गौतम ने सुधर्मास्वामी को कही, तत्पश्चात् सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी को कही । इसके पश्चात् जम्बु स्वामी ने विद्युतचर को कही, विद्युतचर ने रविशेणाचार्य को कही । उसके पश्चात् इस कथा को जिनसेनाचार्य ने कहा और उन्हीं की परंपरा के अनुसार ब्रह्म जिनदास ने यह लिखा । उसी जिनदास के कथानक को भाषा के रूप में खुशालचन्द ने व्यक्त किया ।"[३]

इन ग्रन्थों के रचयिता श्री खुशालचन्द काला खण्डेलवाल जाति के दिगम्बर जैन थे । इनका जन्म टोड़ा (जयपुर) नामक ग्राम में हुआ था । बाद में वे सांगानेर (जयपुर) में आकर बस गये थे । इनका शेष जीवन

१– *हरिवंश पुराण (आगरा प्रति) १७०७–१७०८ ।*

२– *हरिवंश पुराण : हस्तलिखित प्रति उपलब्ध – आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर । खण्डेलवाल दि. जैन मंदिर, उदयपुर;*
उत्तर पुराण : बाबा दुलीचन्द शास्त्र भण्डार, जयपुर । तथा सौगानियों का मंदिर, करोली (राज.)

३– *हरिवंश पुराण : हस्तलिखित प्रति, दि. जैन मंदिर ।*

सांगानेर में ही व्यतीत हुआ । यहीं पर उन्होंने उक्त दोनों ग्रन्थों की रचना की थी ।

कवि के संबंध में यह जानकारी उत्तर पुराण ग्रन्थ में उपलब्ध है ।[१]

कवि स्वयं हरिवंश पुराण में भी अपना परिचय इस प्रकार देते हैं –

"शहर जहानाबाद नामका एक शहर है, उसमें जयसिंगपुरा एक स्थान है, वहाँ मैं रहता था । वहाँ महमद बादशाह राज्य करता था । उन्हीं के राज्य में मैंने ग्रन्थ आरम्भ किया ।

शहर के मध्य में शाह सुखानन्द नामका एक वणिक रहता था । उसके घर में गौकुलचन्द नामका एक विद्वान पंडित रहता था । उसके पास मैं प्रतिदिन जाता था और शास्त्र और उपदेश सुनता था । मैंने ब्रह्म जिनदास का हरिवंश पुराण जो था उसको गौकुलचन्द से सुना और उसीकी मैंने अपनी भाषा में रचना की । इसकी रचना संवत् १७८० वैशाख सुदी ३, शुक्रवार को मैंने इस ग्रन्थ को पूरा किया ।" और इस ग्रन्थ का लेखन अमरचन्द सौगानी ने को लिखवाया । मिति २ गुरुवार संवत् १८२८ की है और इसके पृ. ३१५ हैं । इसकी साईज ११" x ५" है । यह प्रति दि. खण्डेलवाल जैन मंदिर से प्राप्त हुई है ।

हरिवंश पुराण तथा उत्तर पुराण ग्रन्थों में परंपरागत जैन पौराणिक कथावस्तु का वर्णन हुआ है । इनकी कथावस्तु व वर्ण्य विषयों का आधार संस्कृत पुराण ग्रन्थ हैं । तद्नुसार हरिवंश पुराण में तीर्थंकर अरिष्टनेमि तथा उनके समकालीन कृष्ण, बलराम, जरासंध आदि शलाका पुरुषों का चरित वर्णित है । उत्तरपुराण में ऋषभदेव के अतिरिक्त सभी अन्य तेईस तीर्थंकरो व उनके समकालीन शलाका पुरुषों का चरित–वर्णन संक्षेप में हुआ है ।

दोनों कृतियों में बोलचाल की सरल हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ है । दोनों ही प्रसाद गुण–सम्पन्न रचनाएँ हैं । चौपाई, दोहा, सोरठा, आदि मात्रिक छन्द कृतियों में प्रमुखता से प्रयुक्त हुए हैं । कहीं–कहीं अडिल छन्द का भी प्रयोग हुआ है । सर्ग के लिए "सन्धि" शब्द का प्रयोग हुआ है । उदाहरण के लिए उनकी कृति हिन्दी हरिवंश पुराण के कुछ प्रमुख चौपाई, दोहा, प्रशस्ति, सवैया, छप्पय इत्यादि प्रस्तुत हैं ।।।

मंगलाचरण–

"महावीर वंदौ जिनदेव, इंद्रादिक करिहैं तिनसेव ।
तीन लोक में मंगलरूप, तो वंदौ जिनराज अनुप ।।१।।

१– उत्तर पुराण (उक्त हस्तलिखित प्रति) पृ. ३०८, छन्द ९१–१०७ ।

नेमिसुर वंदौ चित्त लाय, तिहुं जग करि पद अघाय ।
पाप विनाशन है जिननाम, सब जिन नाम वंदौ गुणधाम ।।२।।"

अंतिम पाठ–

"नेमनाथ जिनके वचन, सब जीवन सुखदाय ।
तहाँ ब्रह्म जिनदास जू, करि लीन्हीं अधिकार ।।१।।
ताही श्री जिनदासजी, ग्रन्थ रच्यौ इह सार ।
सो अनुसार खुस्याल ले, कह्यो भविक सुखकार ।।२।।"

प्रशस्ति – **।। दोहा।।**

"मेरी बात सुनो अबै, भव्य जीव मन लाय ।
कालौ जाति खुस्याल जू, सुन्दर सुत जिन पाय ।।१।।

।।चौपाई।।

"देश ढुँढाहर जांणौ सार, तामैं धरम तणुं अधिकार ।
विसन सिंघ सुत जैसिंहराय, राजकरै सबकूं सुखदाय ।।२।।
देशतनी महिमा अति घनी, जिन गेंहा करि अति ही बनी ।
जिन मंदिर भवि पूजा करै, केइक व्रत ले केइक धरें ।।३।।
जिन मंदिर करवायै न, सुरम विमल तनीवर छवा ।
रथ जात्रादि होत बहु जहाँ, पुन्य उपावन भवियत तहाँ ।।४।।
इत्यादिक महिमा जुत देश, कहि न सकौं मैं और असेस ।
जा मैं पुर सांगावति जांनि, धरम उपावन कौ कर धांन ।।५।।
जाकी सोंभा है अधिकार, कबलों भाखूं भवि विस्तार ।
जा मधि श्री मूलनायक धांनि, सो मैं भवि जीवां सुख दांनि ।।६।।

।। सवैया ।।

"संघ मूलसंघ जानि गछ सारदा बखांनि,
गणजु बलातकार जांनौ मन लायकैं ।
कुंद कुंद मुनि की सु आमनाय मांहि,
भये देवइन्द्रकीर्ति पठष्यतर पायकै ।।
जिन सु भये तहाँ नाम लिखमीदास,
चतुर विवेकी श्रुत–ज्ञांन कूं उपाय कैं ।

तिहनें पास मैं भी कछु अल्प सौं प्रकाश भयो,
फेरि मैं वस्यो जिहांनाबाद मध्य आयकै ।।७।।

।। दोहा।।

"सहर जिहांनाबाद में जैसिंघ पुरो सुथांन ।
मैं वसिहूं सुखतैं सदा जिनेशऊँ चित्त आनि ।।८।।

।। छप्पय।।

"महमदसाह पातिसांह राजकरै सुचिकछौ,
नीतवंत बलवंत न्याय विन लेन अरथौ ।
ताके अमल सुमांहि ग्रन्थ आरंभरु कीन्हौं,
पर को भय दुख सोक कभूह हम कौयन लीन्हौ ।
इह विचार राजा तनौ इतनो ही उपगार है,
कौऊ दंडन सकै जिनमत को विस्तार है ।।९।।

।। दोहा।।

"सहर मध्य इक वणिक वर, साह सुखानंद जांनि ।
ताके गेह विषै रहै, गोकुल चंद सुजांनि ।।१०।।
तिन ढिग मैं जाऊं सदा, पढ़ूं शास्त्र सुभाय ।
तिनकौ वर उपदेश लै, मैं भाषा बनवाय ।।११।।
ग्रन्थ तनी भाषा रची, जिन सेवक अनुसार ।
जसकौ कारिज ना करयो, करयो भविक उपगार ।।१२।।

।। चौपाई ।।

"एंसी जांनि भविक सुखदाय, पढ़िजें सुनिजैं मनवचकाय ।
काला जाति खुस्याल सुनाम, भाषा रची परम सुख धाम ।।१३।।
संवत सतरासै अरु असी, सुदी वैशाख तीज वर लसी ।
सुकरवार अति ही वर जोग, सार नख्यतर कौ संजोग ।।१४।।
पहर डोढ़ दिन बाकी रह्यौ, भाषा पूरण करि सुख लह्यौ ।
कसर देखि पंड़ित जन कौय, सुनकर लीज्यौ अक्षर सोय ।।१५।।
मैं तो ग्रन्थ पढ़े कछु नांहि, सार विचार नहीं मुझ मांहि ।
यातै दोष न दीजौ कोय, अलप घणौ गुण लीज्यौ जोय ।।१६।।

जिनवर चरित सुवर्णतैं, उपजै पुन्य अपार ।
जे भवि सुमरैं भाव सौं, ते पावै शिवसार ।।१७।।
हरिवंश महत्शास्त्रं तस्य भाषा विनिर्मितं ।
नाम्ना खुस्याल चंद्रेण भव्यानां खलु शर्मदा ।।१८।।"

आलोच्य कृतियों में कृष्ण का परम्परागत वीर श्रेष्ठ पुरुष का जैन–व्यक्तित्व वर्णित हुआ है । दोनों कृतियों से कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

बालक कृष्ण गोकुल में खेलते–कूदते अनेक पराक्रमपूर्ण कार्य करते बड़े हो रहे थे । कंस को जब किसी निमित्त ज्ञानी से यह जानकारी मिली कि उनका शत्रु गोकुल में वृद्धि को प्राप्त हो रहा है तो उसने पूर्व भव में सिद्ध की हुई देवियों का कृष्ण का प्राणान्त करनेके लिए आह्वान किया । देवियों ने जो अनेक प्रयत्न किये उनमें एक प्रयत्न मूसलाधार वर्षा करके कृष्ण सहित समस्त गोकुल को डुबो देने का था । परन्तु पराक्रमी कृष्ण ने गोवर्धन को ही उठा लिया और इस प्रकार गोकुल की रक्षा की । देवियों के समस्त प्रयत्न निष्फल हो गए । कवि के वर्णनानुसार–

"देवां वन में जाय, मेघ तनी वरषा करी ।
गोवरधन गिरिराय, कृष्ण उठायो चाव सो ।।" [१]

प्रयत्न की इस निष्फलता के बाद कंस ने कृष्ण को मल्लयुद्ध का आमंत्रण दिया । मल्ल–युद्ध में आने के अवसर पर उन्हें कुचल कर मार डालने के लिए मदमस्त हाथी छुड़वा दिया । पराक्रमी, महान, बलशाली व धैर्यवान कृष्ण ने हाथी के दाँत उखाड़ लिए और उसे मारकर भगा दिया । सामने आने पर अपने से दुगने मल्ल को फिराकर दे मारा । और अन्त में क्रोधित हुए कंस को मारने के लिए अपनी ओर आते देख, उसे पैर पकड़, पक्षी के समान फिरा कर पृथ्वी पर दे मारा । अपने बलवान शत्रु को मारकर पराक्रमी कृष्ण उस सभा मण्डप में अत्यधिक शोभित हुए । कवि ने अपने उत्तर पुराण में कृष्ण के इस वीर स्वरूप का बड़े उत्साह से वर्णन किया है । यथा––––

"जाके सम्मुख दोड्यो जाय । दंत उपारि लये उमगाय ।
ताही दंत थकी गज मारि । हस्ति भागि चली पुरं मझाहि ।।
ताही जीति शोभित हरि भए । कंस आप मल्ल मृति लखि लए ।
रुधिर प्रवाह थकी विपरीता । देख क्रोध धरि करि तजि नीति ।

१– *हरिवंश पुराण–पृ० ६४, छन्द ४७ ।*

आप मल्ल के आयो साथ । तब हरि वेग अरि निज जोय ।।
चरण पकरि तब लयो उठाय । पंखी सन उत ताहि फिराय ।।
फेरि धरणि पटक्यो तबै, कृष्ण कोप उपजाय ।।
मानूं यम राजा तणी, सो ले भेंट चढ़ाय ।।"[१]

जरासंध के साथ हुए युद्ध में कृष्ण का यही पराक्रम अपने पूर्ण रूप में प्रकट हुआ है तथा पराक्रम के ऐसे अनेक वर्णन उपलब्ध हैं ।

(३) नेमिश्वर रासः– [२]

इसके रचयिता नेमिचन्द्र हैं । इसकी रचना ई० सन् १७१२/वि०संवत् १७६९ में हुई ।

कृष्ण कृति के प्रमुख पात्र हैं । कृति के अधिकांश में उनके वीरतापूर्ण कृत्यों का वर्णन उपलब्ध है । इस वर्णन में वीर रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है । यथा–

"*कान्ह गयो जब चौक में, चाण्डूर आयौ तिहिं बार ।*
पकड़ि पछाड्यो आवतौ, चाण्डूर पहुँच्यौ यम द्वार ।।
कंस कोप करि उठ्यो, पहुंच्यौ जादुराय पै ।
एक पलक में मारियो, जम–घरि पहुँच्यौ जाय तो ।।
जै जै कार सबद हुआ, बाजा बाज्या सार ।
कंस मारि धीस्यौ तबै, पलक न ताइ बार ।।"[३]

कृष्ण द्वारा गोवर्धन धारण की घटना का कवि ने निम्नानुसार उल्लेख किया है ।

"*केसो मन में चिन्तवे, परवत गोरधन लीयो उठाय ।*
चिटी आंगुली उपरे, तलिउ या सब गोपी–गाय ।।"[४]

कृति के अंतिम अंश में कृष्ण की धर्म विषयक रुचि तथा नेमिनाथ के प्रति श्रद्धाभाव का वर्णन हुआ है । कवि के शब्दों में–

"*नमस्कार फिरि–फिरि किया, प्रश्न कियो तब केशोराय*
भेद कह्यो सप्त तत्त्व को, धर्म–अधर्म कह्यो जिनराय ।।"[५]

१– *उत्तर पुराण – पृ० २००, छन्द ३–६ ।*
२ *हस्तलिखित प्रति विक्रम संवत १७९३ प्रतिलिपिकार पाण्डे दयाराम्, उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।*
३– *हस्तलिखित प्रति पद संख्या ७०–७३ ।*
४– *वही, १८४ ।*
५– *हस्तलिखित प्रति पद संख्या १११० ।*

कृति में कृष्ण के बाल–गोपाल स्वरूप का वर्णन द्रष्टव्य है। इस रूप में बालक कृष्ण के गोपाल वेश का तथा दधि–माखन खाने व फैलाने का वर्णन हुआ है। यथा–

"मांखन खायरु फैलाय, मात जसोदा बांधे आणि तैं।
डरपायो डरपै नहीं माता तणीय न मानै काणि तैं ।।"

कृष्ण का गोपाल वेश– वर्णन निम्न प्रकार हुआ है –

"काना कुण्डल जगमगे, तन सोहे पीताम्बर चीर तो।
मुकुट विराजे अति भलो, बंसी बजावे श्याम शरीर तो ।।"[१]

कृति की भाषा राजस्थानी प्रभावित हिन्दी है।

(४) गजसुकुमाल रास–[२]

गजसुकुमाल रास आदिकालीन रचना है। इसका रचनाकाल ई० सन् १२५८–६८ (विक्रम संवत १३१३–२५) के बीच अनुमानित किया गया है। उसके रचयिता कवि देवेन्द्रसूरि थे।

कृति में कृष्ण के वीर व पराक्रम–सम्पन्न राजपुरुष के स्वरूप का वर्णन है। उनकी तुलना इन्द्र से करते हुए कवि लिखता है –

"नयरिहि रज्जु करेई तहि कहु नरिंदू।
नरवई मनि खण्हो जिव सुरगण हंदू ।।"

कृष्ण के द्वारा चाणूर मल्ल, कंस तथा जरासंध हनन का कवि ने उल्लेख किया है। वे वासुदेव राजा हैं। शंख, चक्र तथा गदा आदि का धारण करना जैन परंपरानुसार वासुदेव का लक्षण है। इसका भी कवि ने उल्लेख किया है। यथा–

"संख चवक गज पहरण धारा।
कंस नराहिव कय संहारा ।।
जिण चाणउरि मल्लु वियरिउ।
जरसिंधु बलवंतऊ धारिउ ।।"

कृति की भाषा से १३ वीं शताब्दी ई. के भाषा रूप की जानकारी मिलती है। इसकी भाषा को परवर्ती अपभ्रंश अथवा प्राचीन राजस्थानी कहा जा सकता है। जो कि हिन्दी भाषा का आदिकालीन रूप है।

१– *हस्तलिखित प्रतिपद संख्या – १६८–६९।*

२ *गजसुकुमाल रास, अप्रकाशित, हस्तिलिखित प्रतियाँ उपलब्ध –*
(अ) अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर। (ब) ग्रंथ भण्डार, जैसलमेर–दुर्ग।

(५) प्रद्युम्न चरित–

"प्रद्युम्न चरित" कवि सधारु की रचना है। यह कृति संपादित होकर प्रकाशित हो गई है।[१] इसका रचनाकाल सन् १३५४ सं० १४११ माना गया है।[२]

कृति में श्रीकृष्ण के रुक्मिणी से उत्पन्न पुत्र प्रद्युम्न का जीवन–चरित का वर्णन है।

कृष्ण का वर्णन एक महान शक्तिशाली नरेश के रूप में किया गया है। वे अपरिमित दलबल व साधनों से सम्पन्न थे। वे त्रिखण्डाधिपति (अर्धचक्रवर्ती) राजा थे। उनकी गर्जना से पृथ्वी काँप जाती थी। वे अपने शत्रुओं के दमन में पूर्णतः समर्थ थे। यथा–

"दलबल साहण गणत अनन्त। करह गर्ज मेदनी विलसंतु।
तीन खण्ड चक्रकेसरी राउ। अरियण दल भानह भरिवाउ॥"[३]

कृष्ण का स्वरूप–वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि वे शंख चक्र तथा गदा धारण करते हैं। बलभद्र उनके अग्रज हैं। वे अद्वितीय पराक्रम सम्पन्न हैं। सात ताल वृक्षों को एक बाण से गिराने में समर्थ हैं। वे अपने कोमल हाथों से वज्र को भी चूर–चूर कर सकते हैं। यथा–

"संख चक्र गजापहण जासु, अरु बलिभद्र सहोदर तासु।
सात ताल जो बाणानि छणई सो नारायण नारद भणई॥
आयी ताहि वज्र मुंदड़ी, जोहइ रतन पदारथ जड़ी।
कोमलि हाथ करह चकचूरु, सो नारायण गुण परिपूनु॥"[४]

पराक्रमी राजा कृष्ण अपनी तलवार हाथ में लेकर युद्ध भूमि में ऐसे शोभित होते हैं जैसे मानों स्वयं यमराज उपस्थित हैं। उनके खड्ग धारण करने पर समस्त लोक आकुल–व्याकुल हो जाता है। स्वयं देवराज इन्द्र तथा शेषनाग भी व्याकुल हो जाते हैं। यथा–

"तव तिहि धनहर घालिउ रालि, चन्द्र हँस कर लीयो संभालि।
वीजु समिसु चमकइ करवालु, जाणौ सु जीभ पसारे काल॥
जबहि खरग हाथ हरि लयउ, चन्द्र रयणि चाम्बह कर गहिउ।
रथ ते उतरि चले भर जाम, तीनी भुवन अकुलाने ताम॥

१– *प्रद्युम्न चरित : संपा० पं० चैनसुखदास व डॉ० कस्तुरचन्द कासलीवाल (प्रकाशक–अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी प्रबन्धकारिणी समिति, जयपुर।)*
२– *प्रद्युम्न चरित : प्रस्तावना, पृ० २६।*
३– *प्रद्युम्न चरित : सर्ग–१/२१।*
४– *वही, छन्द ५१–५२।*

इंदु चंदु फणु मै खलमलउ, जाणै गिरि पर्वतउ टलमलउ ।
अन मा कहइ सुरंगिनि नारि, अवयहु इहइ कहसी मारि ।।[१]

(६) नेमिनाथ फागु (जयशेखर सूरि) [२]

कृति के रचयिता श्री जयशेखर सूरि का समय पंद्रहवीं शताब्दी विक्रम का पूर्वार्द्ध है । वे श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के सन्त थे ।

कृति में श्रीकृष्ण का शौर्य वर्णन निम्न प्रकार हुआ है और

"दीपइ जिणि जिणमंदिर मंदर शिखर समान,
दीसहं दिसि हाटक हाट कहुँ क विमान ।।
धन दिहि सहं हथि धापिण वाणी अवर आरंमि,
माण कण धण संपूरिय पूरिय द्वारका नांमि ।। २ ।।"
आकुलि कुलवट लोपिय गोपिय रमइ रंगि,
कांस केसि जाणूर ए चूरए जे बहु भंगि ।
वसुधा वीर वदीतउ जीतउ जिणि जारासिंधु,
तहि हरि अरिबल टालए राज सुबंधु ।। ३ ।।

उक्त दो छन्दो में द्वारका तथा कृष्ण का वर्णन करने के पश्चात् कविने नेमि–राजुल के परंपरागत कथानक का वर्णन किया है ।

(७) रंग सागर नेमि फागुः–[३]

इसके रचयिता श्री सोमसुन्दरसूरि हैं ।

कृति में कृष्ण के शौर्य–वर्णन में उनके प्रारंभिक जीवन की साहस व वीरतापूर्ण घटनाओं का वर्णन निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है –[४]

"अवतरीआ इणि अवसररि मथुरा पुरिस रयण नव नेहरे
सुख लालित लीला प्रीति अति बलदेव वासुदेव वे हुरे ।
वसुदेव रोहिणि देवकी नंदन चंदन अंजन वानरे,
वृन्दावनि यमुना जलि निरमलि रमति सांई गांई गान रे ।

१– *प्रधुम्न चरित : छन्द सं० ५३९, ५४०, ५४१ ।*

२– *हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ : संपादक–डॉकटर गोविन्द रजनीश प्रका० मंगल प्रकाशन, जयपुर, पृ० ११०–११७ ।*

३– *हिन्दी की आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ० १३६–१४८ संपा० डॉ गोविन्द रजनीश, प्रका० मगंल प्रकाशन, जयपुर ।*

४– *रंग सागर नेमिफाग : खेण्ड प्रथम ३२–३६ ।*

रमति करंता रंगि चड़इ गोवर्धन शृंगि
गूजरि गोवालणए गाइ गोपी सिडं मिलीए
काली नाग जल अंतरालि कोमल कमलिनी नाल
नाखिउ नारायणिए रमलि पराजणीए
कंस मल्ल खाउइ वीर पहुता साहस धीर
बेहु वाइ वाकरीए बलवंता वाहिं करीए
बलभद्र वलिआ सार मारिउ मौष्टिक मार
कृष्णि बल पूरिउए चाणूर चूरिउ ए
मौष्टिक चाणूर च्यूरिए देखीय ऊठिउ कंस
नव बलवन्त नारायणि तास का धउ विध्वंस ।।"

(८) बलिभद्र चौपाई–

इस कृति के रचयिता कवि यशोधर थे ।

द्वारिका नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने उसे इन्द्रपुरी के समान बताया है । यह बारह योजन विस्तार वाली थी । वहाँ ऊँची–ऊँची अट्टालिकाएँ थीं । अनेक धनपति एवं वीरवर वहाँ निवास करते थे । श्रीकृष्ण याचकों को मुक्त हस्त से दान देते थे । यथा–

"नगर द्वारिका देश मझार–जाणे इन्द्रपुरी अवतार ।
बार जोयण ते फिर तुंवसि, ते देखी जनमन उलसि ।। ११ ।।
नव खण तेर खणा प्रासाद, दृग श्रेणी सम लागु वाद ।
कोटीधन तिहाँ रहीण घणा, रत्न हेम हीरे नहीं मणा ।। १२ ।।
याचक जननि देह दान, न हीयलु हरष नहीं अभिमान ।
सूर सुभट एक दीसि घणा, सज्जन लोक नहीं दुजेणा ।। १३ ।।"

द्वारिका के विनाश तथा कृष्ण के परमधामगमन की घटना को नेमिनाथ की भविष्यवाणी के रूप में वर्णित किया गया है–

"द्वीपायन मुनिवर जे सार, ते करसि नगरी संघार ।
मद्य भांड जे नामि कहीं, तेह थकी वली जलहि सहीं ।। ६२ ।।
पोरलोक सवि जलसि जिसि, बन्धन नीक्कससु तिसि ।
तह्म सहोदर जराकुमार, ते हनि हाथि मारि मोरार ।। ६३ ।।"

यह रास उनकी अनेक कृतियों में सबसे अच्छी कृति बतायी जाती है । बलराम कृष्ण के सहोदर–प्रेम का आदर्श इसमें प्रस्तुत हुआ है ।

(९) बलभद्र बेलि–

बलभद्र बेलि के रचयिता कवि सालिग थे ।[१]

प्रस्तुत बेलि २८ छन्दो की छोटी रचना है जिसमें द्वारका विनाश, कृष्ण का परमधामगमन तथा उनके अग्रज बलभद्रजी के अंतिम समय की घटनाओं का वर्णन हुआ है । कथावस्तु निम्न प्रकार से है–

द्वीपायन मुनि के शाप से द्वारिका अग्नि में स्वाहा हो गई । कृष्ण–बलराम वहाँ से निकल कर कौशाम्बी बन–प्रदेश की ओर गए । मार्ग में कृष्ण को तीव्र प्यास लगी । वे एक वृक्ष की छाया में सो गए । बलभद्र जी पानी लेने गए । तभी जराकुमार ने हरिण के धोखे में बाण चलाया जिससे कृष्ण का प्राणान्त हो गया ॥ पानी लेकर लौटने पर बलभद्र ने कृष्ण को मोहवश प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न समझा और वे उनके मृत शरीर को कंधे पर लिए छः माह तक विचरण करते रहे । अन्त में देवताओं ने उन्हें प्रबोधन देने के लिए घाणी से रेत पीसकर तेल निकालने तथा पत्थर पर कमल पुष्प खिलाने का नाटक किया । इससे उनका मोह दूर हुआ तथा उन्होंने कृष्ण के मृत शरीर का दाह संस्कार किया । पश्चात् उन्होंने अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास जाकर दीक्षा अंगीकार की । दीक्षित होकर संयमाराधना करते हुए मृत्यु को प्राप्त होकर वे पाँचवें देवलोक में गए ।

(१०) नेमिचन्द्रिकाः–

"नेमिचन्द्रिका" कवि मनरंगलाल की रचना है ।[२]

कृष्ण वासुदेव के चरित्र–वर्णन में कवि ने उनकी वीरता, पराक्रम तथा श्रेष्ठ सामर्थ्य से युक्त एक नरेश के रूप का वर्णन किया है ।

वीर कृष्ण ने कालिय नाग का मर्दन किया । अत्याचारी कंस को मारकर उसके पिता उग्रसेन को सिंहासनासीन किया । शिशुपाल तथा शक्तिशाली जरासन्ध पर विजय प्राप्त की । इस प्रकार अपने कार्यों द्वारा अनीति के मार्ग को निरावृत किया । कृष्ण के इन कार्यों का उल्लेख करते हुए कवि ने लिखा है–

"नाग साधि करके मुरलीधर । सहस पत्र ल्याये इंदीवर ॥
कंस नास कीन्हों छिन माँहि । उग्रसेन कहं राज्य करांहि ॥

१– *समकित विण काज न सीझइ । सालिग कहइ सुधउ कीजइ ।*

२– *नेमिचन्द्रिका–मनरंगलाल पल्लीवाल–हस्तलिखित प्रति उपलब्ध दि० जैन मंदिर बड़ा तेरापंथियों का, जयपुर ।*

जीत लीन शिशुपाल नरेस । जरासंध जीतो चक्रेस ।।

इत्यादिक बहु कारण करे । सकल अनीति मार्ग तिन हरे ।।"[१]

ऐसा पराक्रमी, सामर्थ्यवान, तथा जरासंध जैसे चक्रधारी नरेश का हन्ता कृष्ण क्यों नहीं भारतभूमि के सभी राजाओं में श्रेष्ठ व पूजनीय होगा । कवि के अनुसार भारतभूमि के सभी नृपतिगण उनके चरणों के सेवक थे तथा स्वयं देवगण उनकी आज्ञा का पालन करते थे । यथा –

"सकल भूप सेवत तिन पांय ।

देव करत आज्ञा मन भाय ।।"

अपने समकालीन राज–समाज में पूजनीय पराक्रमी व वीर राजपुरुष कृष्ण का स्वरूप–वर्णन कृति में हुआ है ।

(३) हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूप वर्णन

विभिन्न आयाम–

श्रीकृष्ण शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक सभी प्रकार की सुषमाओं से सम्पन्न थे । वे निष्काम कर्मयोगी थे । उन्होंने अपने जीवन में सतत निष्काम कर्म को अपनाया और इसी की प्रेरणा दी । उन्होंने भाग्यवाद का निरसन कर पुरुषार्थवाद का महत्त्व स्थापित किया ।

हिन्दी जैन–साहित्य में श्रीकृष्ण के तीन स्वरूपों का वर्णन हुआ है–

प्रथम श्रीकृष्ण का बालगोपाल रूप । द्वितीय एक अर्द्धचक्रवर्ती राजा के रूप में तथा तृतीय वे एक धर्म–निष्ठ आदर्श राजपुरुष के रूप में वर्णित हैं ।

(क) कृष्ण का बाल–गोपाल स्वरूप :

आचार्य जिनसेन कृत संस्कृत हरिवंश पुराण[२] (८ वीं शताब्दी ई०) में कृष्ण वासुदेव के परंपरागत स्वरूप वर्णन के साथ साथ उनकी बाल्यावस्था के वर्णन क्रम में उनके बाल–गोपाल रूप का वर्णन ध्यान देने योग्य है ।

आचार्य जिनसेन से पहले जैन साहित्य में श्रीकृष्ण की महत्ता दो स्वरूपों में ही प्रस्तुत मिलती है–एक शलाका पुरुष के रूप में, दूसरे आध्यात्मिक पुरुष के रूप में । आचार्य जिनसेन ने सर्व प्रथम शायद वैष्णव परम्परा से प्रभावित होकर श्रीकृष्ण के बाल–गोपाल स्वरूप का वर्णन अपने

१– *नेमिचन्द्रिका: छन्द १९–२० ।*

२– *जिनसेनः– हरिवंश पुराण ३५/५५–५७/*

"हरिवंश पुराण" में किया। जैन साहित्य पर भागवत पुराण में वर्णित कृष्ण के बाल–गोपाल स्वरूप को जो वर्णन है, उसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई नहीं देता। वैष्णव हरिवंश पुराण ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसका प्रभाव जैन परम्परागत कृष्ण स्वरूप वर्णन पर पड़ा है।

गोपालक नन्द के यहाँ बालक कृष्ण का ग्वाल–बालक का वेश धारण करना तथा दूध–दही का खाना–फैलाना सामान्य है। अतः कृष्ण के बालगोपाल रूप का वर्णन करते समय आचार्य जिनसेन इस तथ्य का ही अपने हरिवंश पुराण ग्रन्थ में वर्णन करते हैं। यह वर्णन भी संक्षिप्त रूप में ही है।

बालक कृष्ण की क्रीडाओं का आचार्य जिनसेन ने निम्न रूप में वर्णन किया है–

"बालक कृष्ण कभी सोता था, कभी बैठता था, कभी–कभी छाती के बल सरकता था, कभी लड़खड़ाते पैर उठाते हुए चलता था, कभी दौड़ा–दौड़ा फिरता था, कभी मधुर आलाप करता था, कभी मक्खन खाता हुआ दिनरात व्यतीत करता था[1]" इसी एक मात्र श्लोक में कवि ने कृष्ण की शिशुक्रीड़ा का वर्णन कर दिया है।

आचार्य जिनसेन कृष्ण के गोपाल–वेश का वर्णन निम्न शब्दों में करते हैं–

"जो पीले रंग के दो वस्त्र पहने था, वन के मध्य में मयूर–पिच्छ की कलगी लगाए हुए था, अखण्ड नील कमल की माला जिसके गले पर पड़ी हुई थी, जिसका शंख के समान सुन्दर कण्ठ उत्तम कण्ठी से विभूषित था, सुवर्ण के कर्णाभरणों से जिसकी आभा अत्यन्त उज्ज्वल हो रही थी, जिसके ललाट पर दुपहरिया के फूल लटक रहे थे, । सिर पर ऊँचा मुकुट बँधा था, कलाइयों में स्वर्ण के कड़े सुशोभित थे जिसके साथ अनेक सुन्दर गोपाल बालक थे एवं जो यश और दया भाव से सुशोभित था, ऐसे पुत्र को लेकर यशोदा ने देवकी के चरणों में प्रणाम कराया। उत्तम गोप के वेश को धारण करने वाला वह पुत्र प्रणाम कर पास ही में बैठ गया।"

श्रीकृष्ण का यह गोपाल–वेश वर्णन उल्लेख जैसा ही है। जैन कवि इसके भी विशेष विस्तार में नहीं गए हैं।

बाल–गोपाल रूप वर्णन की प्रवृत्ति हिन्दी जैन–साहित्य में भी रही है। (हिन्दी जैन कवियों ने भी गोप–बालक कृष्ण की दूध–दहीं खाने–फैलाने की

१– *हरिवंश पुराण : आचार्य जिनसेन, ३५/४३।*

बाल–क्रीड़ाओं का तथा गोप–बालक कृष्ण के गोप–वेश का सामान्य–सा वर्णन करके कथाक्रम को आगे बढ़ा दिया है ।) कवि शालिवाहन ने अपने हरिवंशपुराण ग्रन्थ में कृष्ण की बाललीला का वर्णन करते हुए लिखा है ।

"आपुन खाई ग्वाल पर देई,
घर की क्षीर विराणी लेई ।
घर–घर बासण फोड़े जाई,
दूध–दहीं सब लेहि छिड़ाई ।।"[१]

पाण्डव यशोरसायन काव्य के रचयिता मुनि मिश्रीमल के गोप बालक कृष्ण के इस नटखट रूप का वर्णन दृष्टव्य है–

"दहीड़ो डाले दूध में, मांखण जल मांही रे ।
जल राले कभी छाछमें, मूँ राख भराई रे ।।
कौतुक दूध का कर रह्या, खेले अपने दावे रे ।
अधर बजावे बाँसूरी सब ही हँस जावे रे ।।
पुरस्यो रे खावै नहीं, माता नजर चुरदे रे ।
छाने कोठा में घुसी, माखन गटकावे रे ।।"[२]

कृष्ण के बाल–गोपाल स्वरूप का गोपियों पर प्रभाव बताते हुए कवि मिश्रीमलजी ने 'पाण्डव यशोरसायन' में लिखा है–

"मुकुट धर मोरनो, मुझ मन हर लीनो रे ।
कामणधरी कान्हड़ौ, मो पै जादू कीनो रे ।।
ठुम ठुम चाल सुहावनी, अधियाली आँखडत्या रे ।
घुघरवाला केश है, जुल्फो बाकडत्या रे ।।"

ख) श्रीकृष्ण महान वीर एवं शक्ति–सम्पन्न शलाकापुरुष के रूपमें

कृष्ण एक अद्वितीय वीर तथा महान पुरुष थे । उन्होंने अपनी शक्तिबल से द्वारका में राज्य की स्थापना की तथा कालान्तर में भारतभूमि के अग्रणी राजपुरुष के रूप में प्रतिष्ठित हुए । उनका यह शक्तिशाली राजपुरुष का स्वरूप जैन–परम्परा में शलाका पुरुष वासुदेव के रूप में मान्य है । जैन–परम्परा में वासुदेव से तात्पर्य है, वह शक्तिशाली राजा, जिसका

१– *हरिवंशपुराण शालिवाहन छन्द – ७०७–८*

२– *पाण्डव यशोरसायन : मुनि श्री मिश्रीमल, पृ० ११७/४७ ।*

आधे भरत–क्षेत्र पर प्रभुत्व हो । जैन–आगम ग्रन्थ "समवायांग" में वासुदेव का प्रमुख लक्षण आधे भरत–क्षेत्र का स्वामी होना (अर्द्ध भरह सामी) बताया गया है ।

अर्थात् द्वारावती नगरी में कृष्ण नाम के वासुदेव राजा थे जो उस नगरी का शासन करते हुए विचरते थे । अनेक अधीनस्थ राजाओं, ऐश्वर्यवान नागरिकों सहित वैताड़यागिरि (विन्ध्याचल) से सागर पर्यन्त दक्षिण भरत क्षेत्र उनके प्रभाव में था ।[१]

कृष्ण अपने समय के वासुदेव शलाका पुरुष थे । इस रूप में वे महान शक्तिशाली अर्द्धचक्रवर्ती राजा थे । उनका द्वारका सहित संपूर्ण दक्षिण भरत क्षेत्र पर प्रभाव व प्रभुत्व था ।

जिनसेन कृत "हरिवंश पुराण" में कृष्ण के बालकाल की पराक्रमपूर्ण अनेक क्रीड़ाओं का वर्णन है । चाणूर मल्ल तथा कंस–वध का वर्णन करते हुए कवि ने कृष्ण के पराक्रम का तथा अद्वितीय बल का निम्न शब्दों में वर्णन किया हैं –

"सिंह के समान शक्ति के धारक एवं मनोहर हुंकार से युक्त कृष्ण ने भी चाणूर मल्ल को जो उनसे शरीर में दूना था अपने वक्षस्थल से लगाकर भुजयन्त्र के द्वारा इतने जोर से दबाया कि उससे अत्यधिक रुधिर की धारा बहने लगी और वह निष्प्राण हो गया । कृष्ण और बलभद्र में एक हजार सिंह और हाथियों का बल था । इस प्रकार अखाड़े में जब उन्होंने दृढ़तापूर्वक कंस के दोनों प्रधान मल्लो को मार डाला तो उन्हें देख, कंस हाथ में पैनी तलवार लेकर उनकी ओर चला । उसके चलते ही समस्त अखाड़े का जनसमूह समुद्र की तरह जोरदार शब्द करता हुआ उठ खड़ा हुआ । कृष्ण ने सामने आते हुए शत्रु के हाथ से तलवार छीन ली और मजबूती से उसके बाल पकड़ उसे क्रोधवश पृथ्वी पर पटक दिया । तदनन्तर उसके कठोर पैरों को खींचकर उसके योग्य यही दण्ड है, यह सोचकर उसे पत्थर पर पछाड़ कर मार डाला । कंस को मारकर कृष्ण हँसने लगे ।"[२]

राजाओं में श्रेष्ठतम् व प्रथम सम्माननीय होने के लिए किसी राजपुरुष का अद्वितीय वीर, साहसी, पराक्रम–सम्पन्न, नीति–निपुण आदि गुणों से विभूषित होना अनिवार्य है । अतः जैनागमों के कृष्ण वासुदेव अनेक गुणों से

१– *समवायांग सूत्र २०७*

२– *हरिवंश पुराण : षठ तिशतम सर्ग ४३–४५, प्रका. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।*

परिपूर्ण व्यक्तित्व वाले उत्तम पुरुष थे ।[1] समवायांग सूत्र में उत्तम पुरुष वासुदेव के अद्वितीय स्वरूप का वर्णन निम्न शब्दों में किया गया है ।

"ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, चमकीले शरीरवाले, सौम्य, सुभग, प्रिय-दर्शन, स्वरूपवान, सुन्दर स्वभाव वाले, सभी प्राणियों को प्रिय, स्वाभाविक बली, अत्यधिक बल-सम्पन्न, आहत न होने वाले, अपराजित, शत्रु का मर्दन करने वाले, दयालु, अमत्सर, अचपल, अक्रोध, परिमित व प्रिय संभाषण करने वाले, गम्भीर, मधुर व सत्यवचन बोलने वाले, शरणागत वत्सल, लक्षण, व्यंजन व गुणों से युक्त, मान-उपमान प्रमाण से पूर्ण, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान, प्रिय-दर्शन x x x x x महान धर्नुधारी, विशिष्ट बलधारक, दुर्धर धर्नुधारी, धीर पुरुष, युद्ध में कीर्ति पाने वाले, उच्च कुलोत्पन्न, भयंकर युद्ध को भी विघटित कर सकने वाले आधे भरतक्षेत्र के स्वामी, सौम्य, राजवंश के तिलक, अजित तथा अजित रथी x x x x x दीप्त तेजवाले प्रवीर पुरुष, नरसिंह, परपति, नरेन्द्र, नरवृषभ, देवराज इन्द्र के समान राज्यलक्ष्मी के तेज से दीप्त आदि-आदि ।"

कालान्तर में हिन्दी भाषा में लिखित जैन काव्यकृतियों में भी कृष्ण की वीरता, पराक्रम तथा शक्तिशाली वासुदेव राजा के स्वरूप का विभिन्न प्रकार से वर्णन हुआ है ।

कृष्ण का अद्वितीय पराक्रम बाल्यावस्था से ही प्रकट होने लगा था । इस पराक्रम को प्रकट करने के लिए हिन्दी कवियों ने कंस द्वारा पूर्व जन्म में सिद्ध की हुई देवियों द्वारा, कंस की आज्ञा से कृष्ण की खोज कर, उन्हें मारने के प्रयत्नों का वर्णन किया है । इस वर्णन-क्रम में पूतना के पराभव तथा गोवर्धन धारण की घटना का जैन कवियों ने वर्णन किया है । पूतना वध जैन काव्य में नहीं दिखाया है । इसके स्थान पर पूतना का रोते-चिल्लाते हुए भाग जाने का वर्णन है । कवि नेमिचन्द के शब्दों में -

"रूप कियो इक धाय को, आँचल दिया जाय ।
आँचल खैंच्या अति घणा, देवा पुकार भजि जाय ।।"[2]

पूतना के इस प्रयत्न के बाद देवियों ने बालक कृष्ण को मारने के अन्य प्रयत्न भी किये पर वे सफल नहीं हो सकीं । अन्त में सबने मिलकर प्रलयकारी वर्षा द्वारा कृष्ण सहित समस्त गोकुल को ही नष्ट कर देने का

१- समवायांग सूत्र २०७ ।

२- नेमिचन्द % नेमिश्वररास : छन्द सं० १२० (हस्तलिखित प्रति उपलब्ध - आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

प्रयत्न किया। कृष्ण ने गोकुल की रक्षा करने के लिए गोवर्द्धन पर्वत को ही इस भांति उठा लिया जैसे कि वीर योद्धा शत्रु-संहार हेतु अपना धनुष उठाता है –

"देवा वन में जाय, मेघतनी वरषा करी।
गोवर्द्धन गिरिराय, कृष्ण उठायो चाप सो ॥"[१]

कवि नेमिचन्द्र ने इस घटना का वर्णन निम्न प्रकार किया है –

"केसो मन में चिन्तवे, परवत गोरधन लीयो उठाय।
चिंटी अँगुली उपरै, तलिउ या सब गोपी गाय ॥"[२]

कवि खुशालचन्द्र ने अपने "उत्तर पुराण" ग्रन्थ में हाथी छोड़ने से लेकर कंस-वध तक का वर्णन निम्न शब्दों में किया है –

"जाके सम्मुख दौड्यो जाय। दंत उपरि लयो उमगाय।
ताही दंत थकी गज मारि। हस्ति भागि चल्यो पुर मझारि ॥
ताही जीति शोभित हरि भए। कंस आप मल्ल मृति लखि लिए।
रुधिर प्रवाह थकी विपरीति। देख क्रोध धरि करि तजि नीति ॥
आप मल्ल के आये सोच। तब हरि बैग अरि निज जाँच।
चरण पकरि तब लिये उठाय। पांखि सनउन ताहि फिराय ॥"

दोहा– "फेरि धरणि पटक्यो तणे,
कृष्ण कोप उपजाय।
मानों यमराजा तणी,
सौ ले भेंट चढ़ाय ॥"[३]

कृष्ण द्वारा चाणूर-वध का वर्णन कवि शालिवाहन ने निम्न शब्दों में किया है –

"चण्डूर मल्ल उठ्यो काल समान,
वज्रमुष्टि देयत समान।

१– खुशालचन्द्र काला : हरिवंश पुराण १४/४७, प्रति उपलब्ध : दि. जैन मंदिर, लुणकरण जी पाण्ड्या, जयपुर।

२– नेमिश्वर रास : छन्द १८४, प्रति–आमेर शास्त्र भण्डार–जयपुर।

३– खुशालचन्द : उत्तर पुराण, पृ. १९९–२००
हस्तलिखित प्रति–आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर।

जानि कृष्ण दोनों कर गहे,
फेरि पाइ धरती पर बहे ।।"[१]

कवि सोम सुन्दर (सन १४२६) के "रंगसागर नेमिफागु" में कंस की मल्लशाला में प्रदर्शित युवक कृष्ण के इस पराक्रम का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि यह पराक्रम सामान्य व्यक्ति में नहीं हो सकता । यह वीर तो नारायण (वासुदेव) है जिसने कंस का विध्वंस किया है । कवि के शब्दों में –

"अवतारीआ हणि अवसररि मथुरा पुरिस नव नेहरे,
सुख लालित लीला प्रीति अति बलदेव वासुदेव वे हुरे ।
वसुदेव रोहिण देवकी नंदन चंदन अंजन धान रे,
वृंदावनि यमुना जलि निरमलि रमति सांई गोई गान रे ।
रमति करंता रंगि चड़इ गोवर्द्धन शृंगि,
गूजरी गोवलणिए गाइंगोपी सिउं मिलीए ।
काली नाग जल अंतरालि कोमल कमलिनी नाल,
नाखिउ नारायणिए रमलि परायणीए ।
कंस मल्ला खाडइ वीर पहुता साहस धीर,
वेहु बाइ वाकरीए बलवंता बाहिं करीए,
बलभद्र वलिआ सार मारिउ मौष्टिक मार ।।
कृष्णि बल पूरिउए चाणूर चुरिउ ए,
मौष्टिक चाणूर च्यूरिए देखोय अठिउ कंस,
नव बलवन्त नारायणि तास कीथउ ध्वंस ।।"[२]

अपने "प्रद्युम्न चरित्र" काव्य में कवि सधारु ने नारद के मुख से रुक्मिणी के समक्ष कृष्ण के जो गुण–वर्णन कराए हैं; उनमें कृष्ण में विद्यमान उन लक्षणों का भी उल्लेख किया है जो वासुदेव (नारायण) शलाका पुरुष में होते हैं ।

नारद कहते हैं –

"संख चक्र गजापहण जासु, अरु बलभद्र सहोदर तासु ।
सात ताल जो बाणनि हणइ, सो नारायण नारद भणइ ।।

१– *शालिवाहन : हरिवंश पुराण, पन्ना ४५, – हस्तलिखित प्रति दि. जैन – पल्लीवाल मंदिर, धूलियागंज, आगरा ।*

२– *सोमसुन्दर : रंगसागर नेमि फागु : प्रथम खण्ड ३२–३६.*

आधी त्रहि वज्र मुंदडी, सोह्इ रतन पदारथ जड़ी ।

कोमल हाथ करइ चकचुरु, सो नारायणं गुण परिपुनु ।।"[1]

पराक्रमी वासुदेव कृष्ण जब रुक्मिणी–हरण के पश्चात् अपना पाँचजन्य संख फूँकते हैं तो सारी पृथ्वी थर–थरा जाती है । सुमेरु पर्वत, कच्छप तथा शेषनाग भी काँप उठते हैं । कवि शालिवाहन इस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

– लई रुक्मिणी रथ चढ़ाई,
पंचाहणं तव भूरिया ।
णि सुनि वयणु सब शैन कप्यौ,
महिमण्डल धर हर्यौ ।।
मेरु कमठ तथा शेष कंप्यो,
महली जाइ पुकारियो ।।
पुहमि राहु अवधारियो,
रुक्मिणी हरि ले गयो ।।"[2]

इस घटना से कुपित "रुक्मिणी के पिता भीष्मक तथा रिक्मिणी के लिए निश्चित वर शिशुपाल दोनों की संमिलित वाहिनी कृष्ण पर आक्रमण करती हैं । इस भयंकर युद्ध में कृष्ण–बलराम का पराक्रम तथा कृष्ण द्वारा शिशुपाल–वध का वर्णन कवि निम्न शब्दों में करता है–

– सेशपाल अरु भीखम राउ,
पैदल मिल ण सूझे ठाँउ ।
छोरणि बूँदत उछली खेह,
जाणो गरजो भादों–मेह ।।
शारंगपाणि धनक ले हाथ,
शशिपाल पठउ जम साथ ।।
हाकि पचारि उठे दोऊ वीर,
बरसे बाण शयण धनणीर ।।"[3]

"नेमिश्वर रास" के रचयिता नेमिचन्द्र कृष्ण द्वारा शिशुपाल–वध का

१– *सधारु : प्रद्युम्न चरित्र (प्रकाशक–अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी, प्रका. समिति, जयपुर) छन्द ५१–५३ ।*

२– *शालिवाहन : हरिवंश पुराण (अप्रकाशित–हस्तलिखित प्रति–आगरा) ५२/१९५७*

३– *शालिवाहन : हरिवंश पुराण (अप्रकाशित, हस्तलिखित प्रति, आगरा) ५२/१९५७ ।*

वर्णन करते समय इस बात का भी उल्लेख करते हैं कि शिशुपाल पर यह जो बाण छोड़ रहा है, वह नारायण (वासुदेव) है।

"इतना कहि जब कोपियों,
नारायण जब छोड्यो बाण तो।
सिर छेदो शिशुपाल को,
भांजि गया सब दल बल पाण तो॥
शिशुपाल मार्‌यो पैणस्यो, रुक्मयो लियो जु बाँध।
परणी राणी रुक्मणी, लगन महुरत साधि॥"[१]

इस सारे सन्दर्भ में कृष्ण का अद्‌भुत पराक्रम व तेज प्रकट हुआ है।

देवगण ने वासुदेव राजा कृष्ण की अर्चना की। जैन दिवाकर मुनि चौथमलजीने अपने काव्य-ग्रन्थ "भगवान नेमनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण" में इस तथ्य को निम्न शब्दों में अभिव्यक्त किया है –

"जरासंध और श्रीकृष्णने भारी युद्ध मचाया।
शूरवीर भी दहल गए हैं, विद्याधर कंपाया॥"

* * *

फिर तो जरासंध ने झुँझलाकर चक्ररत्न चलाया।
यादव सुभट देख उस ताई, तुरत मुख कुम्हलाया॥"

* * *

श्री श्रीकृष्ण ने उस चक्र को, ग्रहण किया कर भाई।
सबके जी में जी आया, फिर सभी रहे हुलसाई॥
देवगण कहें भरतक्षेत्र में, प्रगटे वासुदेव।
गंधोदक और पुष्प वर्षाकर, कीनी देव न सेव॥"[२]

जरासंध-वध के कारण तीनों लोकों में कृष्ण का जयजयकार हुआ और उनका वासुदेव रूप में अभिनन्दन किया गया।

इस घटना का वर्णन करते हुए कवि शालिवाहन ने लिखा है –

"तब मगध ता सन्मुख गयौ,
चक्र फिराई हाथ करि लयौ,।

१– *नेमिचन्द : नेमीश्वर रास (आमेर शास्त्र भण्डार प्रति)।*

२– *चौथमल : भगवान नेमनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण–पद संख्या २४३, २४५, २४८ व २४९।*

तापर चक्र डारियो जामा,
तीनों लोक कंपियो तामा ।।
हरि को नमस्कार करि जानि ।
दाहिने हाथ चढ्यौ सो आनि ।।
तब नारायण छोड्यो सोइ ।
मागध टूँक रतन-सिर होई ।।[१]"

यही कृष्ण का वासुदेव (नारायण) स्वरूप है ।

कवि देवेन्द्रकीर्ति के शब्दों में --

"तहाँ कृष्ण धारापति, भावी त्रिखण्ड नरेश ।
अमर भूप रसाधिपति, सब राजान विशेष ।।
राज्य वैभव भोगवि, यादव कुलाँ वर सूर ।
नाग शैय्या जिणि दलो, अरि करया बकचूर ।।"[२]

ऐसे श्रेष्ठ राजा के राज्य में सब प्रकार से सुख और समृद्धि का प्रजाजन अनुभव करते हैं । अपने "पाण्डव-यशोरसायन" महाकाव्य में मरुधरकेसरी मुनि श्री मिश्रीमल्लजी ने इन भावों को प्रकट करते हुए एक सुन्दर सवैया लिखा है, जो इस प्रकार है -

"सबदेश किसे सुख संपति है अरु नेह बढ़ै नित को सब में,
वित, वाहक, साजन धर्म धुरी कुल जाति दिपावत है तब में,
नहि झूठ लवार जु लाघत जोवत में व्यसनी शुभ भावन में,
मधुसूदन राज में सर्वसुखी इत-कित रु भीत लखी तब में ।।[३]"

कवि जयशेखर सूरि ने भी अपने नेमिनाथ फागु में श्रेष्ठ नगरी द्वारका और वहाँ के महान वीर, जरासंधहन्ता वासुदेव राजा कृष्ण का वर्णन किया है । यथा -

"दीपइँ जिणि जिणमंदिर मंदर शिखर समान,
दीसइँ दिसि दिसि हाटक हाट कहुँक विमान ।
धन दिहें सइँ हथि थापिय वापी अवर आराँमि ।
मणि कण धण सपूरिय पूरिय द्वारका नाँभि ।।

* * *

१-शालिवाहन : हरिवंश पुराण, १८/२२
२- देवेन्द्रकीर्ति : प्रद्युम्न प्रबन्ध, २३-२४ ।
३- मिश्रीलाल : पाण्डव यशोरसायन, पृ. २८५

वसुधा वीर वदीतउ बीतउ जिणि जरासिंधु ।
ताहि हरि अरिबल टालए राज सुबंधु ।।[१]

(ग) अध्यात्मिक भावना से युक्त राजपुरुष के रूप में

जैन साहित्य में श्रीकृष्ण को आध्यात्मिक भावना से युक्त राजपुरुष के रूप में चित्रित किया गया है । कृष्ण की यह धार्मिक निष्ठा तीर्थंकर अरिष्टनेमि के संदर्भ में वर्णित हुई है । जैन साहित्यिक कृतियों में प्राप्त वर्णन के अनुसार अरिष्टनेमि द्वारका के नागरिकों को उद्‌बोधन देने हेतु द्वारका आते ही रहते थे । अरिष्टनेमि के द्वारका प्रवास का प्रसंग अनेक आगमिक कृतियों में तथा जिनसेन कृत हरिवंश पुराण में हुआ है । इन सभी कृतियों में श्रीकृष्ण, उनके परिवारजन तथा द्वारका के अन्य नागरिकों के इस धर्मसभा में जाने का तथा प्रत्येक अवसर पर अरिष्टनेमि के उपदेश से प्रभावित होकर कृष्ण वासुदेव के ही परिवार तथा द्वारका के अन्य नागरिकों का अरिष्टनेमि के सान्निध्य में दीक्षा लेने का प्रसंग–वर्णन है ।

इसी प्रकार की एक सभा में श्रीकृष्णने अरिष्टनेमि से प्रश्न किया कि "क्या उनके लिए अरिष्टनेमि के पास प्रव्रजित होना सम्भव है या नहीं ?" इसका उत्तर देते हुए अर्हंत अरिष्टनेमि ने वासुदेव से कहा– "हे कृष्ण ! सभी वासुदेव (श्रेष्ठ पुरुष) पूर्वभव में निदान किये हुए होते हैं । अर्थात् वासुदेव अपने पूर्व जन्म में किसी अनुष्ठान विशेष से फल–प्राप्ति की अभिलाषा किए हुए होते हैं । इस कारण से हे कृष्ण ! ऐसा कहा जाता है कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ कि वासुदेव प्रव्रजित हो सके हो ।"

उक्त कथन से हम यह कह सकते हैं कि श्री कृष्ण की तीर्थंकर अरिष्टनेमि के धार्मिक सिद्धान्तों के प्रति रुचि थी तथापि वासुदेव होने की वजह से वे वैराग्य मार्ग के पथिक नहीं हो सकते थे ।

कालान्तर में इसी साहित्य को आधार बनाकर हिन्दी जैन कवियों ने बहुत सी कृतियाँ प्रस्तुत कीं । इन कृतियों का सारांश अरिष्टनेमि की सभाओं में जाना, उपदेशों को सुनना तथा दीक्षा लेना ही है ।

कवि नेमिचन्द के शब्दों में

"नमस्कार फिरि–फिरि कियो, प्रश्न कियो तब केशोराय ।
भेद कह्यो सप्त तत्त्व को, धर्म–अधर्म कह्यौ जिनराय ।।[२]"

१– *जयशेखर सूरि : नेमिनाथ फागु २–३ ।*

२ *नेमीश्वर रास : नेमिचन्द्र–छन्द सं० ११००*

तथा

"पटरानी केसो तणी,
रुक्मिणी ने दे आदि ।
दीक्षा ली जिनराज की,
तपस्या करे सुखादि ।।"

तथा– "प्रद्युम्न, संबुकुमार अनिरुधौ
प्रद्युम्न–सुत धीर तौ ।
तीनों जाय दीक्षा ग्रही,
जादव और सबे वीर वीर तौ ।"[१]

इसी प्रकार कवि सधारु ने अरिष्टनेमि के द्वारका आने पर कृष्ण का अपने दब–बल सहित उनकी सभा में उपस्थित होने का वर्णन इस प्रकार किया है ।

"छप्पन कोटि जादव मन रले,
नारायण स्यो हलधर चले ।
समउसरण परमेसरु जहाँ,
हलधर कान्ह पहुँचे वहाँ ।।"[२]

विभिन्न हिन्दी कवियों नें लगभग इसी शब्दावली में अरिष्टनेमि के द्वारका आगमन, उनकी उपदेश–सभा में कृष्ण–बलराम तथा उनके परिवार जन सहित अनेक द्वारकावासियों का उपस्थित होना तथा उपदेशों से प्रभावित होकर उनमें से कुछ का वैराग्य की दीक्षा ले लेने का वर्णन हुआ है । इसी तथ्य–कथन की पुनरावृत्ति सभी कृतियों में प्रसंगानुसार हुई है । इससे अधिक वर्णन अथवा विवरण इन कृतियों में नहीं हुआ है ।

निष्कर्ष–

हिन्दी जैन साहित्य से संबंधित सर्व–साधारण और प्रास्ताविक तथ्यों का अध्ययन करने के उपरान्त हम निष्कर्षतः कह सकते हैं कि हिन्दी जैन साहित्य विविध विषयक और विविधमुखी रहा है । इस साहित्य की परम्परा रही है कि इसके विद्वान जिस युग में जो जनसाधारण की भाषा होती है, उसीमें वे अपना साहित्य रचते हैं । मुख्यतः १५ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक जैन साहित्य के विद्वानों ने अपनी मुख्य रचनाएँ अपभ्रंश, प्राकृत तथा संस्कृत

१–नेमिश्वर रासः नेमिचन्द छन्द सं० ११९८ एवं १२००
२–प्रद्युम्न चरितः सधारु : छन्द ६६५

भाषाओं में ही रचीं । हिन्दी जैन साहित्य में रचित रचनाओं में अपभ्रंश साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है । यह प्रभाव १६ वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध तक हिन्दी जैन साहित्य की रचनाओं पर रहा । १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दी अपभ्रंश से मुक्त होकर एक स्वतंत्र भाषा बन जाती है । विकास की दृष्टि से इसे हम अपभ्रंश हिन्दी काल मानते हैं, जहाँ तक हिन्दी जैन साहित्य के विषय का प्रश्न है, ऐसा कोई निश्चित काल नहीं माना जा सकता । क्योंकि जैन साहित्य समयानुसारी नहीं, वरन् शाश्वत धर्मानुसारी अधिक रहा है । रचनाओं में वेग और शैथिल्य देश, काल और स्थिति के ही कारण बढ़ते-घटते अवश्य रहे हैं ।

कवियों की कृष्ण विषयक हिन्दी जैन विशाल काव्य-कृतियाँ जो मूलतः संस्कृत ग्रन्थों तथा जिनसेनाचार्य कृत हरिवंश पुराण, गुणभद्राचार्य कृत उत्तर पुराण (महापुराण) तथा हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित तथा लघु काव्य कृतियाँ जो रास, प्रबन्ध, चौपाई, फागु, बेलि, चरित्र आदि के रूप में लिखी गईं तथा जिन कृतियों में कृष्ण चरित्र का मूल तथा प्रसंगानुकूल रूप में वर्णन हुआ है, उन सभी का अध्ययन करने पर कृष्ण का जो स्वरूप हमारे सामने उभर कर आता है हम संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं-

हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के बाल-गोपाल रूप-वर्णन के दो ही रूप हैं-पहला नटखट व चपल ग्वाल बालक व द्वितीय कृष्ण का गोपाल-वेश । एक नटखट व चपल ग्वाल बालक के रूप में कृष्ण के दूध-दही खाने-फैलाने तथा विविध बाल-सुलभ क्रीड़ाएँ करने का वर्णन हुआ है । दूसरे रूप में गोपाल-वेश में पीताम्बर पहनने, मयूर-पिच्छ का मुकुट धारण करने, आभूषण पहनने तथा पुष्पों की माला धारण करने का वर्णन हुआ है ।

जैनागमों में कृष्ण के गोकुल-प्रवास की कथा तथा कृष्ण के बाल-गोपाल स्वरूप का वर्णन नहीं है । आचार्य जिनसेन से पहले जैन साहित्य में श्रीकृष्ण की महत्ता दो स्वरूपों में ही प्रस्तुत की हुई मिलती है । एक शलाकापुरुष के रूप में दूसरे आध्यात्मिक पुरुष के रूप में । आचार्य जिनसेन ने सर्व प्रथम शायद वैष्णव परम्परा तथा हरिवंश पुराण से प्रभावित होकर श्रीकृष्ण के बाल-गोपाल स्वरूप का वर्णन अपने हरिवंश पुराण में किया । जैन साहित्य पर भागवत पुराण में वर्णित बाल-गोपाल स्वरूप का जो वर्णन है, उसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई नहीं देता ।

द्वितीय-कृष्ण एक अद्वितीय वीर पुरुष थे । उनका अद्वितीय पराक्रम

बाल्यावस्था से ही स्पष्ट होने लगा था। इस पराक्रम को प्रकट करने के लिए हिन्दी कवियों ने कंस द्वारा पूर्व जन्म में सिद्ध की हुई देवियों द्वारा कृष्ण की खोज कर, उन्हें मारने के प्रयत्नों का वर्णन है। इस वर्णन-क्रम में पूतना के पराभव तथा गोवर्धन धारण की घटना का वर्णन मिलता है। जैन काव्यों में पूतना का वध नहीं दिखाया गया है, इसके स्थान पर पूतना का रोते-चिल्लाते भाग जाने का वर्णन है। उनके पराक्रम पूर्ण कार्यों में यमलार्जुनोद्धार, कालिय नागदमन तथा पद्मोत्तर व चम्पक वध तथा कंस वध इत्यादि हैं।

कृष्ण एक चक्रवर्ती राजा के रूप में महान वीर, अद्वितीय पराक्रमी तथा शक्ति-सामर्थ्य से परिपूर्ण शलाकापुरुष थे। अपने बुद्धिकौशल के बल पर कृष्ण आधे भरत-क्षेत्र के अधिपति अभिषिक्त हुए और उन्हें वासुदेव के रूप में मान्यता मिली। तत्कालीन परिस्थितियों का आकलन करने से विदित होता है कि श्रीकृष्ण के समय में राजकीय स्थिति बड़ी बेढंगी थी। क्षत्रिय नृपगण प्रजारक्षण के अपने सामाजिक दायित्व को विस्मृत कर अधिकार मद से मतवाले बन गए थे। एक ओर कंस के अत्याचार बढ़ते जा रहे थे, दूसरी ओर जरासंध अपने बल-पराक्रम के अभिमान के वशीभूत होकर नीति-अनीति के विचार को तिलांजलि दे बैठा था। तीसरी ओर शिशुपाल अपनी प्रभुता से मदान्ध हो रहा था तो चौथी ओर दुर्योधन अपने सामने सब को तृणवत् समझ कर न्याय का उल्लघंन कर रहा था। इस प्रकार भारत वर्ष में सर्वत्र अनीति का साम्राज्य फैला हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में रिपुमदमर्दन श्रीकृष्ण कार्यक्षेत्र में कूदते हैं और अपने अनुपम साहस, असाधारण विक्रम, विलक्षण बुद्धिकौशल एवं अतुल राजनीतिक पटुता के बल पर आसुरी शक्तियों का दमन करते हैं। उन्होंने सभी से युद्ध करके उनको पराजित किया। जैन साहित्य में वर्णित वासुदेव राजा कृष्ण द्वारका सहित सम्पूर्ण दक्षिण भारत प्रदेश के शक्तिशाली अधिपति हैं तथा कंस व जरासंध के हन्ता हैं। जैन हिन्दी काव्यों में राजगृह के शक्तिशाली अधिपति जरासंध तथा कंस के वध से प्रसन्न हुए देवगणों ने वसुदेवनन्दन कृष्ण का नवम वासुदेव के रूप में अभिनन्दन किया था।

इन ग्रन्थों में कृष्ण का जो तृतीय स्वरूप हमारे सामने आता है, वह है धर्मनिष्ठ आदर्श राजपुरुष के रूप में। कृष्ण की यह धार्मिक निष्ठा तीर्थंकर अरिष्टनेमि के संदर्भ में वर्णित हुई है। जैन परम्परानुसार कृष्ण तीर्थंकर अरिष्टनेमि के समकालीन ही नहीं, उनके चचेरे भाई भी हैं। वे उनकी धर्म-सभाओं में उपस्थित रहनेवाले तथा उनसे धर्मोपदेश सुननेवाले

राजपुरुष के रूप में वर्णित हैं । द्वारकाधीश श्रीकृष्ण का तीर्थंकर अरिष्टनेमि की धर्मसभाओं में उपस्थित होना, तथा उनसे धार्मिक चर्चा करना, शंका समाधान करना, बहुत ही स्वाभाविक रूप में हिन्दी जैन–साहित्य में वर्णित है ।

कृष्ण की धार्मिक निष्ठा के अनेक ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि उनका धर्म एवं सत्य अविचलित था । बलदृप्त लोगों की अपेक्षा अधिक बलवान होते हुए भी उन्होंने लोक का हित सोचकर शान्ति के लिए भरपूर प्रयत्न किया । जो कार्य युद्ध के बिना सम्पन्न हो सकता है, उसके लिए कृष्ण ने कभी भी युद्ध नहीं होने दिया । कंस–वध के पश्चात् उग्रसेन को राजा बनाकर उन्होंने अपने धर्म का पालन किया । क्योंकि राज्य उग्रसेन का ही था तथा कंस ने उसे बलपूर्वक प्राप्त किया था । कालयवन को जिस कौशल से कृष्णने समाप्त किया, उससे भी विदित होता है कि वह अनर्थक जीव हत्या के विरोधी थे ।

जैन हिन्दी काव्यों के अनुसार कृष्ण अपने युग में भी असाधारण पुरुष माने जाते थे । तत्कालिन राजाओं तथा जन–साधारण में उनका बहुत मान था । उन्हें जो महत्ता और गरिमा अपने जीवन में प्राप्त हुई, उससे सहज ही उनके चरित्र की उज्ज्वलता का अनुमान किया जा सकता है । उनके व्यक्तित्व में एकांगिता नहीं, सर्वांगीणता है । इसी व्यक्तित्व के कारण वैदिक परंपरा के अनुसार वे ईश्वर के पूर्णावतार कहलाए और जैन परंपरा में उन्हें भावी तीर्थंकर का उच्च–पद प्रदान किया गया ।

चतुर्थ अध्याय

वैदिक काल से आधुनिक काल तक वैष्णव साहित्य में कृष्ण के स्वरूप-विकास और हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के स्वरूप विकास से उसकी तुलना

भूमिका :-

आदिकाल से ही कृष्ण का भारतीय वाङ्मय और भारतीय जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध रहा है । भारतीय साहित्य में कृष्ण का चरित्र इतना व्यापक और विविधतापूर्ण है कि वेदों से लेकर आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य तक वह विभिन्न भावों और स्वरूपों को लेकर विकसित हुआ है । वैदिक साहित्य में श्रीकृष्ण के जीवन को विस्तार से लिखा गया है । प्राचीन और मध्य युग के साहित्य में श्रीकृष्ण की लीलाओं का निरूपण है, उन्हें राधा और गोपी-वल्लभ के रूप में चित्रित किया गया है । परन्तु जैन साहित्य में उनके उस रूप के दर्शन नहीं होते हैं । इसी प्रकार उनके जीवन से संबंधित घटनाओं का भी सभी साहित्य में शब्दों के हेर-फेर के साथ समान रूप से हुआ है । मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य में उनके जीवन से संबंधित कुछ घटनाओं का वर्णन अलग रूप से हुआ है । प्रस्तुत अध्ययन में वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक कृष्ण के स्वरूप-विकास और हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के स्वरूप-विकास से उसकी तुलना प्रस्तुत की है । वैदिक साहित्य में कृष्ण के वंश की उत्पत्ति तथा उसकी जैन साहित्य से तुलना व वैदिक कृष्ण कथा तथा जैन कृष्ण-कथा का साम्य-वैषम्य तथा वैदिक साहित्य के अवतारवाद की जैन साहित्य के उत्तारवाद से तुलना भी प्रस्तुत की है ।

(१) वैदिक तथा हिन्दी जैन साहित्य में वर्णित कृष्ण के वंश की उत्पत्ति :-

वैदिक हरिवंश पुराण में महर्षि वेद व्यास ने श्रीकृष्ण को अरिष्टनेमि का चचेरा भाई माना है । उन्होनें यदुवंश का परिचय देते हुए लिखा है कि महाराजा यदु के सहस्रद, पयोद, क्रोष्टी, नील और अंजिक नाम के देवकुमारों के तुल्य पाँच पुत्र हुए ।[१] क्रोष्ट की माद्री नामक द्वितीय रानी से युधाजित और देवमीढुष नामक दो पुत्र हुए ।[२] क्रोष्ट के ज्येष्ठ पुत्र युधाजित के वृष्णि

१- *हरिवंश पर्व ।, अध्याय ३३, श्लोक १ ।*
२- *हरिवंश १/३४/१-२ ।*

और अंधक नाम के दो पुत्र हुए। वृष्णि के भी दो पुत्र हुए, एक का नाम स्वफल्क और दूसरे का नाम चित्रक था।[१]

स्वफल्क के अक्रूर नामक महादानी पुत्र हुआ।[२] चित्रक के पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत, सुबाहु, बहुबाहु नामक बारह पुत्र और श्रविष्ठा तथा श्रवणा नामक दो पुत्रियाँ हुईं।[३] श्रीमद्भागवत में वृष्णि के दो पुत्रों का नाम स्वफल्क तथा चित्ररथ (चित्रक) दिया है। चित्ररथ (चित्रक) के पुत्रों का नामोल्लेख करते हुए "पृथुर्विपृथु धन्याद्याः" लिखा है, "पृथुर्विदूरथाद्याश्च" का उल्लेख कर केवल तीन और दो पुत्रों के नाम लिखकर आगे प्रभृति लिख दिया है।

हरिवंश में अरिष्टनेमि के वंशवर्णन के साथ ही श्रीकृष्ण का वंश-वर्णन भी दिया है। यदु के क्रोष्ट, क्रोष्ट के द्वितीय पुत्र देवमीढुष के पुत्र शूर और उनके पुत्र वसुदेव प्रभृति दश पुत्र तथा पृथुकीर्ति आदि पाँच पुत्रियाँ हुईं।[४] वसुदेव की देवकी नामक रानी से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ।[५] क्रोष्ट के प्रथम पुत्र युधाजित के दो पुत्र हुए, - वृष्णि और अन्धक। अन्धक के कोई सन्तान नहीं थी जबकि वृष्णि के दो पुत्र थे। स्वफल्क व चित्रक। अरिष्टनेमि चित्रक के पुत्र थे।

जैन साहित्य में चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव और नौ बलदेव-इन तिरसठ व्यक्तियों को श्लाघनीय और उत्तम पुरुष माना है। स्थानांग, समवायांग, आवश्यक नियुक्ति आदि में उन सभी के नाम, उनके माता-पिता के नाम, उनकी लम्बाई-चौड़ाई और आयुष्य के विषय में प्रकाश डाला है।

१- *हरिवंश, १/३४/३।*

२- *हरिवंश १/३४/१।*

३- *हरिवंश पर्व १, अध्याय १४, श्लोक १४-१५।*

४- *देवभागस्ततो जज्ञे, तथा देवश्रवा पुनः।*
अनाधृष्टि कनवको, वत्सवानथ गृंजिमः ॥२१॥
श्यामः शमीको गण्डूषः पंच चास्य वरांगनाः।
पृथुकीर्ति पृथा चैव श्रुत देवा श्रुतश्रवाः ॥२२॥
राजाधिदेवी च तथा, पंचैते वीरमातरः ॥२३॥
-हरिवंश, १/३४

५- *वसुदेवाच्च देवभ्यां, जज्ञे शौरि मलयशाः।*
-हरिवंश पुराणं, पर्व १, अध्याय ३५, श्लोक ७।

जैन साहित्य में वसुदेव के पुत्र को ही वासुदेव नहीं कहा गया है। नौ वासुदेवों में केवल एक श्रीकृष्ण ही वसुदेव के पुत्र हैं, अन्यथा नहीं।

जैन ग्रन्थों के अनुसार हरिवंश की उत्पत्ति इस प्रकार[1] है – दसवें तीर्थंकर भगवान शीतलनाथ के निर्वाण के पश्चात् और ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ के पूर्व हरिवंश की स्थापना हुई। उस समय वत्स देश में कौशाम्बी नामक नगरी थी। वहाँ का राजा सुमुख था। उसने एक दिन वीरक नामक एक व्यक्ति की पत्नी वनमाला देखी। वनमाला का रूप अत्यन्त सुन्दर था। वह उस पर मुग्ध हो गया। उसने वनमाला को राजमहलों में बुला लिया। पत्नी के विरह में वीरक अर्द्धविक्षिप्त हो गया। वनमाला राजमहलों में आनन्द क्रीड़ा करने लगी।

एक दिन राजा सुमुख अपनी प्रिया वनमाला के साथ वनविहार को गया। वहाँ पर वीरक की दयनीय अवस्था देखकर अपने कुकृत्य के लिए पश्चात्ताप करने लगा–"मैंने कितना भयंकर दुष्कृत्य किया है, मेरे ही कारण वीरक ही यह अवस्था हुई है।" वनमाला को भी अपने कृत्य पर पश्चाताप् हुआ। उन्होंने उस समय सरल और भद्र परिणामों के कारण मानव के आयु का बंधन किया। सहसा आकाश से विद्युत् गिरने से दोनों का प्राणान्त हो गया, और वे हरिवास नामक भोगभूमि में युगल रूप में उत्पन्न हुए।

कुछ समय के पश्चात् वीरक भी मरकर बाल–तप के कारण सौधर्मकल्प में किल्विषी देव बना। विभंगज्ञान से देखा कि मेरा शत्रु "हरि" अपनी प्रिया "हरिणी" के साथ अनपवर्त्य आयु से उत्पन्न होकर आनन्द क्रीड़ा कर रहा है।

वह क्रुद्ध होकर विचारने लगा – "क्या इन दुष्टों को निष्ठुरतापूर्वक कुचल कर चूर्ण कर दूँ ? मेरा अपकार करके भी ये भोगभूमि में उत्पन्न हुए हैं। मैं इस प्रकार इन्हें मार नहीं सकता। यौगलिक निश्चित रूप से मर कर देव ही बनते हैं, भविष्य में ये यहाँ से मरकर देव न बनें और ये अपार दुःख भोगें ऐसा मुझे प्रयत्न करना चाहिए।"

उसने अपने विशिष्ट ज्ञान से देखा – "भरतक्षेत्र में चम्पानगरी का नरेश अभी–अभी कालधर्म को प्राप्त हुआ है। अतः इन्हें वहाँ पहुँचा दूँ क्योंकि एक दिन भी आसक्तिपूर्वक किया गया राज्य दुर्गति का कारण है, फिर लम्बे समय की तो बात ही क्या है ?

देव ने अपनी देवशक्ति से हरियुगल की करोड़ वर्ष की आयु का

१–चउप्पन्न महापुरिस चरियं पृ. १८०।

एक लाख वर्ष में अपवर्तन किया और अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) को भी घटाकर १०० धनुष की कर दी।

देव उनको उठाकर वहाँ ले गया, और नागरिकों को सम्बोधित कर कहा – "आप राजा के लिए चिन्तित क्यों हैं, मैं तुम्हारे पर करुणा कर राजा लाया हूँ। नागरिको ने "हरि" का राज्याभिषेक किया।

राजा हरि की जो सन्तान हुई वह हरिवंश के नाम से विश्रुत हुई।

हरि के छह पुत्र थे –

१–पृथ्वीपति

२–महागिरि

३–हिमगिरि

४–वसुगिरि

५–नरगिरि

६–इन्द्रगिरि।

अनेक राजाओं के पश्चात् बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत भी इसी वंश में हुए।

जैन हरिवंश पुराण के अनुसार यदुवंश का उद्भव हरिवंश से हुआ है।[१] राजा यदु इक्कीसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के समय हुए। ये हरिवंश रूपी उदयाचल में सूर्य के समान थे और इन्हीं से यादववंश की उत्पत्ति हुई थी। राजा यदु के नरपति नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। और नरपति के शूर और सुवीर दो पुत्र हुए। राजा नरपति ने इन दोनों को राज्य दिया। राजा शूर के अतिशय शूर अन्धक वृष्णि और सुवीर के अतिशय वीर भोजक वृष्णि पुत्र हुए। राजा अन्धक वृष्णि की पत्नी का नाम सुभद्रा था, और उससे –

१– *हरिवंश पुराणं : खुशालचन्द काला (हिन्दी : हस्तलिखित)*
खुशालचन्द ने हरिवंश की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार किया है –
नेमिनाथ फुनि अंतरै ।। केते काल वितीत ।
जहँ पिछे यादूरायसु ।। हरिवंसी वरनीति ।।२१८
जिदुसौ यादव बंस कौ ।। भयौ बहुत विसतार ।।
ताके सुत नरपति भयौ ।। सब जन को सुखकार ।।२१९
जदु जग सेती विरक तमयौ ।। राज देय सुत ऊंवनिगयौ ।।
तपकरि सुरगयऊँ तो जाय ।। राजा नरपति राजकुमाय ।।
(शेष अगले पृष्ठ पर)

१. समुद्रविजय २. अक्षौभ्य, ३. स्तिमितसागर, ४. हितवान, ५. विजय, ६. अचल, ७. धारण, ८. पूरण, ९. अभिचन्द्र और १०. वसुदेव– ये दस पुत्र और दो कन्यायें कुन्ती और माद्री थीं।

वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण हुए।

सारांश यह है कि वैदिक परंपरा की दृष्टि से भी श्रीकृष्ण और अरिष्टनेमि दोनों चचेरे भाई सिद्ध होते हैं। दोनों के परदादा युधाजित और देवमीढुष सहोदर थे।

वैदिक और जैन संस्कृति की परंपरा में यही अन्तर है कि जैन साहित्य में कृष्ण के पिता वसुदेव समुद्रविजय के छोटे भाई हैं जबकि वैदिक परंपरा में चित्रक जोकि अरिष्टनेमि के पिता हैं वह वसुदेव के चचेरे भाई हैं। श्रीमद्भागवत् में चित्रक का ही "चित्ररथ" नाम आया है।

(२) वैदिक और जैन धर्मों में प्रचलित कृष्ण के कथा–रूपों का तुलनात्मक अध्ययन :–

जैन और वैदिक दोनों धर्मों में प्रचलित कृष्ण के कथा–रूपों के तुलनात्मक अध्ययन से उनमें न्यूनाधिक महत्त्व के कई अन्तर प्रकट होंगे। इनमें व्यक्तियों और स्थानों के नामों का अन्तर भी संमिलित है। जैन रूपमें हिन्दू–कथा की भाँति, वासुदेव के अतिरिक्त कृष्ण नारायण, केशव, माधव, आदि नामों का प्रयोग बराबर मिलता है। जैन कथा में, हिन्दू कथा के अनुकरण पर, कृष्ण के पिता का नाम वसुदेव और माता का नाम देवकी है।

कंस को व्याही गई जरासंध की पुत्री का नाम जैन कथा में जीवयशा

ता नरपति के जुग सुत भया ।। सूर सुवीर नाम सूत दया ।।
नरपति पुत्र निकौंदे राज ।। भयौ मुनी सुर निजि हित काज ।।
तव सुवीर मथुरा पुरि रह्यौ ।। सूर राय सौरी पुर लह्यौ ।।
सूरतिया सुर सुंदरिनाम ।। रूप मह्य इनि कौ रति काम ।।
अंधक विष्टी सुत अवतरयौ ।। सम्यक् दिष्टी बहु गुण भरयौ ।।
जोवन करि कैंममित भयौ ।। पाप सुभद्रातिय सुखलयौ ।।
अंधकविष्टि सुभद्रानारि ।। तिनिकैं दस सुत उपजे सार ।। २२४
समदविजैमति सागर तीजौ ।। नाम भयौ हिमवांस सुसारो ।।
तूर्यविजैवल पंचम धारण ।। षष्टम नाम लह्यो अविकारो ।।
सपतम पूरण नाम विष्पातजू ।। अष्टम सूरभयौ अधिकारो ।।
अभिनंदन नौमूं दसमुं ।। वसुदेवजू कौं वर रूप अपारो ।।
जुग कन्या उत्तम भई ।। कूंती मद्री जानि ।।
– खुशालचन्द्र काला–पन्ना १५–१६, श्लोक सं. २१८–२२७

है । हिन्दू कृष्ण-कथा में जरासंध की दो पुत्रियाँ कंस को ब्याही गई हैं और उनका नाम अस्ति और प्राप्ति है ।

नामों से भी अधिक भिन्नता घटनाओं, प्रसंगों और उपाख्यानों में मिलती है । जैन कथानुसार कृष्ण की वंश-परंपरा, जो काफी लम्बी है, हिन्दुओं से, नितान्त भिन्न है । जैन कथा-रूप की यह एक खास विशेषता है कि कृष्ण-जन्म के पूर्व उनके पिता वसुदेव के सौन्दर्य-प्रभाव, परिभ्रमण तथा अनेकानेक विवाहों का वृत्तान्त बड़े विस्तार से दिया गया है ।

कृष्ण जन्म की तिथियाँ और परिस्थितियाँ दोनों धर्मों में किंचित् भिन्न हैं । हिन्दू मान्यतानुसार कृष्ण भाद्रपद कृष्णाष्टमी को देवकी के गर्भ से अवतरित होते हैं । वे वसुदेव-देवकी की आठवीं सन्तान हैं । जैन धर्मानुसार कृष्ण का जन्म भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को होता है ।[१] वे अपने माता-पिता की सातवीं सन्तान हैं । हिन्दुओं के लिए वे विष्णु के अवतार हैं, जैनों के लिए नवें वासुदेव हैं ।

कंस से कृष्ण की रक्षा की व्यवस्था दोनों धर्मों में लगभग समान है - दोनों में कन्या कृष्ण का स्थान ग्रहण करती है । हिन्दू धर्म में कंस उसे शिला पर पटक कर मारने का प्रयत्न करता है और आकाशगामिनी उस कन्यारूपिणी देवी से अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी सुनता है । जैन धर्म में कंस कन्या की नाक चपटी करके छोड़ देता है ।

शकट-भंजन, यमलार्जुन-भंजन आदि घटनाएँ हिन्दू-कथा में या तो कृष्ण की अद्भुत लीला या उनके बाल-पराक्रम के उदाहरण रूप में प्रदर्शित हैं, उनका कृष्ण को मारने के लिए कंस के उपायों से कोई सम्बन्ध नहीं है । परन्तु जैन कथानुसार ये कंस द्वारा कृष्ण के संहार के प्रयत्न हैं । पूर्वभव में कंस ने सात देवियाँ सिद्ध की थीं । वे ही देवियाँ कंस के आदेश पर शकट, क्रूरपक्षी, यमल, अर्जुन, पूतना, वृषभ और तीव्र वर्षा का रूप धारण कर कृष्ण के विनाश का प्रयत्न करती हैं ।[२] अंतिम घटना में उस हिन्दू कथा का जैन रूप चित्रित है, जिसमें इन्द्र-कोप के परिणाम स्वरूप अजस्र वर्षा से व्रजवासियों के रक्षार्थ कृष्ण गोवर्धन पर्वत धारण करते हैं ।[३]

१- *भादौं बदि आवैं दिन सार ।। जांनिसि उपनूं कृष्ण कुमार ।।*
संखरु चक्र पदम लछि परे ।। सुजनां कै तौं सुख अवतरे ।।
-खुशालचन्द्र काल्रः हरिवंश पुराण (हिन्दी हस्तलिखित) ।

२- *जिन-हरिवंश पुराणः सर्ग ५३, श्लोक ३८-४८ ।*

३- *देवावन मैं आय मेघतणी वरषा करी गोवर्धनग ।।*
क्रिष्न उठ्यौ वावसौ
-खुशालचन्द काल्र - दोह्र १३५, पृ. ७६ ।

जैन कृष्ण कथा में देवकी पुत्र को देखने के लिए मथुरा से गोकुल जाती है ।[1] जैन कथा में यह भी एक नवीन उद्‌भावना है कि देवियों के प्रयत्नो के विफल होने पर कंस कृष्ण की खोज में स्वयं गोकुल जाता है । पर माता यशोदा, इसकी गंध लगने पर, किसी बहाने कृष्ण–बलराम को ब्रज भेज देती है, जहाँ कृष्ण ताडवी राक्षसी का वध करते हैं ।

कंस की घोषणा पर कृष्ण का नागशैय्या पर चढ़कर अजितंजय धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाना और पाँचजन्य शंख फूँकना भी जैन कृष्ण–कथाकी अपनी विशेषता है । नागशैय्या की कल्पना हिन्दू–कथा की कालियनाग पराजय से अनूप्रेरित प्रतीत होती है ।

जैन–कथा में ऐसा उल्लेख है कि जब कंस ने कृष्ण बलराम को गोकुल से मथुरा बुलाया तो उसकी नीयत के प्रति आशंका से भरकर वसुदेव ने शौर्यपुर के समुद्रविजय आदि यादवों को मथुरा बुला लिया । हिन्दू–कथा में न तो वसुदेव के समुद्रविजय आदि भाइयों का प्रसंग है, और न उनके इस प्रकार के बुलाये जाने का ।

मल्लयुद्ध के लिये कंस द्वारा आहूत होने पर कृष्ण–बलदेव जब अखाड़े के लिए चलते हैं तो, हिन्दू–कथा में वे एक धौबी का, जो माँगने पर उन्हें रंगीन कपड़े नहीं देता और दुर्विनीत भाव से बोलता है, वध करते हैं, गुणक नामक माली को जो प्रेमपूर्वक उन्हें मालाएँ समर्पित करता है, वरदान देते हैं, कुब्जा के प्रेमभाव पर रीझकर उससे अंगराग स्वीकार करते हुए उसका कुबड़ापन दूर करते हैं और कंस का अत्यन्त समृद्धिशाली विशाल धनुष भंग करते हैं ।[2] जैन–कथा में कृष्ण–बलदेव के किसी ऐसे काम का उल्लेख नहीं है । उसमें एक दूसरी ही उद्‌भावना है, कंस–भक्त तीन असुर रंगशाला के मार्ग में नाग, गधे और घोड़े का विकराल वेश बनाकर उनको हानि पहुँचाना चाहते हैं, पर दोनों भाई उन्हें मार भगाते हैं ।[3]

रंगशाला के द्वार पर हिन्दू कथा के कुवलयगीड़ की जगह जैन

१– *नीलवरण अति सोमैकल ।।*
कोमल मन मोहन सुकुमाल ।।
लखि सुकुमार सुषी अति भई ।।
तब देवकि मन साता लई ।।
–खुशालचन्द काला कृत हिन्दी हरिवंशपुराण, दोहा १२५, पन्ना ७६ ।

२– *हरिवंश, पर्व–२, अध्याय २७ ।*

३– *जिन–हरिवंशपुराण, ३६, ३१*

कथानुसार चम्पक और पादामर (पद्मावत) नामक दो हाथी दोनों भाइयों पर हूल दिये जाते हैं। बलदेव चम्पक को तथा कृष्ण पादामर को समाप्त कर रंगभूमि में प्रवेश करते हैं। हिन्दू हरिवंश के अनुसार कृष्ण चाणूर का वध करते हैं और बलराम मुष्टिक का। जैन मान्यतानुसार भी चाणूर कृष्ण द्वारा मारा जाता है और मुष्टिक बलराम द्वारा। दोनों कथाओं में मल्लो के मारे जाने की क्रिया भिन्न रूप से वर्णित है। जैन-कथा में जब कृष्ण चाणूर के साथ गुथे होते हैं तब मुष्टिक पीछे से उन पर प्रहार करना चाहता है। यह देखकर बलराम उसे एक मुक्के से निष्प्राण कर देते हैं।

हिन्दू और जैन मान्यताओं में कंस की मृत्यु के विषय में लगभग समानता है - कृष्ण कंस को केश पकड़ कर उसे घसीटते हैं और शिलातल पर पटक कर उसके प्राण ले लेते हैं।[१]

कंस के जन्म के विषय में हिन्दू कृष्ण-कथा के अनुसार वह उग्रसेन का जारज नहीं, क्षेत्रज पुत्र है। उसकी माता से सुयामुन पर्वत पर दानवराज दुमिल ने उग्रसेन का छद्म रूप बनाकर समागम किया जिससे कंस की उत्पत्ति हुई।[२] जिनसेन के हरिवंश पुराण[३] के अनुसार कंस राजा उग्रसेन और पद्मावती का पुत्र है। उसके गर्भ-स्थित होते ही पद्मावती के मन में नर-माँस-भक्षण आदि की क्रूर इच्छाएँ उत्पन्न होने लगी। अतः पुत्रोत्पत्ति के साथ ही उसे कुलघाती समझ, कांसे की पिटारी में भर कर नाम-मुद्रिका के साथ यमुना में बहा दिया गया। एक कलारिन के हाथ उसका संरक्षण तथा पालन-पोषण हुआ। बड़ा होकर जब वह अत्यन्त उत्पाती हुआ तब कलारिन ने उसे घर से निर्वासित कर दिया और वह जाकर वसुदेव का शिष्य बन गया। अन्ततः जरासंध की घोषणा पर सिंहरथ को पकड़ लाने के पश्चात् जीवयशा के विवाह के प्रश्न पर कंस के राजवंशी होने का भेद प्रकट हुआ। कांसे की पिटारी से प्राप्त होने के कारण उसका नाम कंस पड़ा। यह उल्लेखनीय है कि हिन्दू-कथा-रूप में वसुदेव और कंस में गुरु-शिष्य सम्बन्ध नहीं मिलता। जैन मान्यतानुसार वसुदेव के उपकारों से अनुगृहीत होकर कंस उन्हें अपनी राजधानी मथुरा ले जाता है और अपनी बहिन देवकी का विवाह उनके साथ करता है।

१- हरिवंश, २, ३० तथा जिन-हरिवंश पुराण-३६, ४५। (हरिवंश पुराण) खुशालचन्द्र काल, दोहा १९४-१९५

२- हरिवंश २, २८।

३- (क) जिन-हरिवंशपुराण ३३, २३

(ख) हरिवंश पुराण खुशालचन्द्र संधि १४

कंस के निधन से विधवा बनी जीवयशा के करुण विलाप से क्रुद्ध होकर जरासंध, जैन-कथा में, कृष्ण से प्रतिशोध लेने के लिए पहले अपने पुत्र कालयवन को भेजता है और उसके मारे जाने पर जरासंध का भाई अपराजित प्रबल सेना के साथ शत्रु पर आक्रमण करता है।[१] हिन्दू कथा में जरासंध स्वयं ही ससैन्य मथुरा पर चढ़ाई करता है और सेना के पराजित होने पर बलराम से गदा-युद्ध करता है और हार कर भाग निकलता है।[२]

जैन कथा में जिस कालयवन को जरासंध का पुत्र कहा गया है वह हिन्दू कथानुसार गार्ग्य महामुनि का पुत्र है जिसे उन्होंने १२ वर्ष के तप और शंकर के वरदान से प्राप्त किया है। वह मथुरा-मण्डल में उत्पन्न लोगों द्वारा अवध्य है।[३] जरासंध तथा अन्य कृष्ण-विरोधी राजाओं के अनुनय पर वह मथुरा के प्रति अभियान करता है और पलायमान कृष्ण की चाल से राजा मुचकुन्द के कुपित नेत्रों द्वारा भस्मीभूत होता है।[४]

सत्यभामा-रुक्मिणी-नारद-प्रसंग जैन और हिन्दू-कथाओं में भिन्नता लिए हुए है। हिन्दू हरिवंश में सत्यभामा की रुक्मिणी के प्रति ईर्ष्या का कारण पारिजात-पुष्प है जिसका वृक्ष कृष्ण, नरकासुर के वध के पश्चात् सत्यभामा के साथ स्वर्ग जाकर इन्द्र के उद्यान से उखाड़ कर लाये थे। जिन-हरिवंश में पारिजात-प्रसंग नहीं है। सत्यभामा और रुक्मिणी के परस्पर ईर्ष्यालु होने में नारद की भूमिका दोनों कथाओं में आती है, पर कुछ भिन्नता के साथ। हिन्दू कथानुसार रैवत पर्वत पर रुक्मिणी के व्रतोधान के अवसर पर कृष्ण पारिजात पुष्प देकर रुक्मिणी का सम्मान करते हैं। इस पर नारद सत्यभामा से रुक्मिणी के सर्वाधिक सौभाग्य की प्रशंसा करते हैं जिसे सुनकर सत्यभामा अतिशय ईर्ष्या से भर जाती है और कोप-भवन में चली जाती है। श्रीकृष्ण के मनाने पर उसका मन स्वस्थ होता है और वह खेद प्रकट करती है।[५]

जैन कथा-रूप के अनुसार नारद कृष्ण के अन्तःपुर में जाते हैं किन्तु सत्याभामा अपने श्रृगार में लीन होने के कारण उनका स्वागत नहीं करती है। सत्यभामा का मान भंग करने के लिए नारद कुंडिनपुर पहुँचते हैं और राजकुमारी रुक्मिणी को देखकर उसे कृष्ण की पटरानी होने का आशीर्वाद

१- *जिन-हरिवंश पुराण : ३६, ७०-७३*

२- *हरिवंश २, ३६।*

३- *हरिवंश, २, ५३।*

४- *हरिवंश, २, ५७।*

५- *हरिवंश २, ६५।*

देते हैं। इधर रुक्मिणी कृष्ण पर आसक्त हुई, इधर नारद उसका चित्रपट लेकर कृष्ण के पास पहुँचते हैं और उन्हें रुक्मिणी उनके प्रति अनुरक्त बताते हैं। रुक्मिणी की फूफी मध्यस्थ बनती है और कृष्ण को गुप्त पत्र लिखती हैं। कृष्ण कुंडिनपुर पहुँचते हैं और पूजा के बहाने उद्यान में आई हुई रुक्मिणी का हरण कर उसे द्वारका लाते हैं।[१]

रुक्मिणी के विवाहोपरान्त सत्यभामा के मन में उसके प्रति सपत्नीभाव उत्पन्न होता है और वह उस रूपवती को देखने के लिए कृष्ण से आग्रह करती है।[२]

जैन कथा में शिशुपाल का वध रुक्मिणी–हरण के अवसर पर दिखाया गया है;[३] जबकि हिन्दू कथा में उसका वध युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर होता है।

जरासंध की सेना जब दूसरी बार मथुरा पर आक्रमण करती है उसके बाद के घटनाक्रम में हिन्दू और जैन कथाओं में अन्तर है। हिन्दू हरिवंश के अनुसार विदुर का उपदेश स्वीकार कर कृष्ण–बलराम मथुरा निवासियों को युद्ध के भीषण परिणामों से बचने के लिए मथुरा–त्याग का निश्चय करते हैं। मथुरा से प्रस्थान कर वे दक्षिण भारत की ओर जाते हैं और मार्ग में परशुराम से भेंट होने पर उनका परामर्श मान कर गोमन्त पर्वत पर चढ़ते हैं। जरासंध द्वारा गोमन्त पर्वत में आग लगाये जाने पर वे शत्रु–सेना पर टूट कर उसका विनाश करते हैं और जरासंध को पलायन के लिए विवश करते हैं। तत्पश्चात् दोनों भाई मथुरा लौट आते हैं। फिर वे रुक्मिणी–स्वंयवर में जाते हैं जहाँ से उनके वापस आने के बाद कालयवन मथुरा पर आक्रमण करता है। तब कृष्ण अपने सर्ग–संबंधियों के साथ अंतिम बार मथुरा का परित्याग करते हैं और समुद्र–तट पर पहुँच कर द्वारका को अपना निवासस्थान बनाते हैं।[४]

जिन हरिवंश के अनुसार जब कालयवन और अपराजित मारे जाते हैं तब जरासंध स्वयं शौर्यपुर पर आक्रमण करता है। इस पर यादव परस्पर

१– *(क) जिन–हरिवंश, सर्ग ४२,*

(ख) हरिवंश पुराणः खुशालचन्दकाला, संधि १८, पृ० ११६ – १७१।

२– *जिन–हरिवंश, सर्ग ४३।*

३– *(क) जिन–हरिवंश पुराण, ४२, ९४।*

(ख) हरिवंश पुराणः खुशालचन्द काला: दोहा ७३८–७५२, पृ० ११४

४– *हरिवंश २, ३६–४५।*

मंत्रणा करते हैं और वे पश्चिम दिशा की ओर चल पड़ते हैं । जरासंध उनका पीछा करता है । विन्ध्याचल के वन में एक देवी कृत्रिम चिताएँ जलाकर यादवों के नष्ट होने का मिथ्या समाचार फैलाती है और जरासंध को वापस कर देती है ।[१] यादवों के समुद्र-तट पर पहुँचने पर कुबेर द्वारकापुरी की रचना करते हैं ।

श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्न का आख्यान हिन्दू और जैन धर्मों में कुछ समान होते हुए भी भिन्नता रखता है । जैन मान्यतानुसार प्रद्युम्न को शिशु अवस्था में ही उसके पूर्वभव का वैरी धूमकेतु नामक असुर हर ले जाता है । मूधकूट नगर के राजा कालसंवर विद्याधर द्वारा उसकी रक्षा होती है । कालसंवर की स्त्री कनकमाला प्रद्युम्न के रूप पर आसक्ति अनुभव कर पहले उससे प्रेम करती है और उसके विफल होने पर अपना रूप बिगाड़ कर उस पर बलात्कार का आरोप लगाती है । कालसंवर और उसके पाँच सौ पुत्र प्रद्युम्न के प्राणों के गाहक बन जाते हैं । प्रद्युम्न किसी प्रकार उस प्रेम-जाल से बचकर मार्ग में अद्‌भुत कृत्य करता हुआ अपने मां-बाप की नगरी द्वारका पहुँचता है और अनेक मायापूर्ण क्रीड़ाएँ करने के पश्चात् अपना असली रूप प्रकट करता है ।[२]

हिन्दू हरिवंश के अनुसार प्रद्युम्न-जन्म के सातवें दिन दैत्यराज शंबरासुर उन्हें हर ले जाता है और पुत्र-रूप में अपनी रूपवती भार्या मायावती के हाथ में देता है । मायावती में पूर्व-काल की स्मृति जाग उठती है कि यह तो पूर्व-जन्म में उसका प्रियतम पति था । वह धाय के हाथ प्रद्युम्न का पालन कराती है और रसायन के प्रयोग से उसे शीघ्र ही बड़ा कर देती है । जब प्रद्युम्न पर मायावती का मंतव्य प्रकट होता है और उसके मुख से वह अपने अपहरणकर्ता के विषय में सुनता है तो वह अत्यन्त कुपित होकर शंबरासुर का युद्ध में आह्वान करता है । युद्ध के मध्य नारद प्रद्युम्न को बताते हैं कि वह पूर्वभव का कामदेव है और मायावती उसकी स्त्री रति है । शंबरासुर का संहार कर प्रद्युम्न मायावती से मिलता है और दोनों सानन्द द्वारका लौटते हैं ।

जैन-कथा में प्रद्युम्न और उसकी प्रेमिका को पूर्वभव के कामदेव और रति रूप में नहीं ग्रहण किया गया है । दूसरी बात यह है कि जैनकथा में

१- *(क) जिन हरिवंश, सर्ग ४० ।*
(ख) हरिवंश पुराणः खुशालचन्द काला, संधि ४७ ।

२- *(क) जिन-हरिवंश पुराण, सर्ग ४७ ।*
(ख) हिन्दी जैन हरिवंश पुराणः खुशालचन्द कालाः संधि २२ ।

प्रद्युम्न के द्वारका लौटते ही इस प्रसंग का अन्त हो जाता है। पर हिन्दू कथा में उसके अन्य अनेक पराक्रमपूर्ण कार्य आगे दिखाये गये हैं। उसका विवाह अपने मामा रुक्मी की पुत्री शुभांगी से होता है। पारिजात के लिए जब इन्द्र के विरुद्ध कृष्ण को युद्ध करना पड़ता है[१] तब प्रद्युम्न जयन्त के विरुद्ध मोर्चा संभालता है। ब्राह्मण ब्रह्मदत्त के युद्ध में जब दैत्यों द्वारा उसकी कन्याओं का हरण होता है,[२] तब प्रद्युम्न माया द्वारा उनकी रक्षा करता है। निकुम्भ राक्षस जब भानुमती का अपहरण करता है तब अन्त में प्रद्युम्न उसका उद्धार कर उसे लेकर द्वारका पहुँचाता है। त्रिलोक-विजय की आकांक्षा रखनेवाले असुरराज वज्रनाभ का वध प्रद्युम्न के हाथ से होता है।[३]

जैन हरिवंश के अनुसार द्वारका में यादवों के बढ़ते हुए वैभव को सुनकर जरासंध युद्ध के लिए फिर उद्यत होता है और इस बार के युद्ध में कृष्ण द्वारा उसका संहार होता है।[४] महाभारत के अनुसार कृष्ण, भीम तथा अर्जुन ब्राह्मण वेश में राजगृह जाते हैं। यहाँ पर भीम का जरासंध से द्वन्द्व युद्ध होता है तथा जरासंध की मृत्यु होती है। हरिवंश में जरासंध की मृत्यु का वर्णन नहीं मिलता।

जैन धर्म की कृष्णकथा में द्वैपायन अथवा कृष्ण द्वैपायन मुनि के क्रोध अथवा अभिशाप से द्वारकापुरी के भस्म होने या यादव-कुल के नष्ट होने की बात कही गई है। जैन कथा में बलदेव के पूछने पर जिनेन्द्र नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) बारह वर्ष पश्चात् घटित होने वाले विनाश का पूरा ब्यौरा भविष्य वाणी के रूप में दे देते हैं और तदनुरूप ही सब कुछ होता है।[५]

हिन्दू कथा में द्वैपायन के अभिशाप या क्रोध की चर्चा कहीं नहीं है। और न द्वारका का नाश या कृष्ण का निधन दिखाया गया है। केवल पूर्व-सूचना के रूप में एक स्थान पर उसका संकेत-मात्र है।[६] जरत्कुमार, जिसके बाण से घायल होकर कृष्ण की मृत्यु होती है, जबकि जैन-कथा में

१- *हरिवंशः २, ७३।*

२- *वही, २,८३।*

३- *वही, २, ९७।*

४- *(क) जिन-हरिवंश, सर्ग ५१।*
(ख) हरिवंश पुराणः खुशालचन्द्र काला, दोहा ८३५।

५- *(क) जिन-हरिवंश, सर्ग ६१, ६२,*
(ख) हरिवंश पुराण, खुशालचन्द काला, संधि ३३।

६- *हरिवंशः २, १०२।*

वह वसुदेव की रानी जरा से उत्पन्न यदुवंशी राजकुमार और कृष्ण का सौतेला भाई है । जैनकथा में यदुवंशियों की संहार-लीला का "अभिप्राय" होनहार की अनिवार्यता प्रदर्शित करना है । जरत्कुमार और द्वैपायन के सभी प्रयत्नों और सावधानियों के होते हुए भी द्वारका का दाह और कृष्ण की मृत्यु उन्हीं के निमित्त से हुई ।

जैन कथा का हिन्दू कृष्ण-कथा से पार्थक्य सूचित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण अंश नेमिचरित है । हिन्दू-कथा में कृष्ण सर्वोपरि हैं, जैनकथा में जिनेन्द्र नेमि का स्थान सर्वोच्च है, बाकी सब उनके नीचे हैं । नेमिचरित से संबंधित कृष्ण-वृत्तान्त केवल जैन कृष्ण-कथा की विशेषता है । अतएव हिन्दू कथा से उसकी तुलना का प्रश्न ही नहीं उठता ।

हरिवंश तथा पुराणों में वर्णित कृष्णकथा में कौरव-पाण्डव युद्ध के अन्तर्गत कृष्ण की भूमिका का कोई उल्लेख नहीं मिलता । किन्तु जिन-हरिवंश में कौरव-पाण्डव-विग्रह का संक्षिप्त वर्णन कुछ सर्गों में प्राप्त होता है ।[१] यहाँ वास्तविक महाभारत के युद्ध का वर्णन नहीं है, केवल कौरवों के अनीतिपूर्ण व्यवहार का वर्णन पाण्डवों के द्वारका-गमन के प्रसंग में कर दिया गया है ।

(३) वैष्णव साहित्य के अवतारवाद और हिन्दी जैन साहित्य में निहित उत्तारवाद का तुलनात्मक अध्ययनः-

वैष्णव परम्परा का विश्वास अवतारवाद में है । अवतरणामवतारः (उच्च स्थान से निम्न स्थान पर उतरना ही अवतरण या अवतार है ।) भगवान का बैकुण्ठधाम से भू-लोक पर लीलादि के निमित्त अवतार होता है । कहा जाता है कि बुद्ध की देवताओं के समान गणना होने के पश्चात् से ही अवतारवाद का प्रचलन हुआ और पुराणों ने इसे पुरस्सर तथा प्रचारित किया । परन्तु अवतारों के बीज वैदिक साहित्य में भी खोजे गये हैं । "शतपथ ब्राह्मण" में मत्स्यावतार तथा कूर्मावतार, "तैतरीय संहिता" और "तैतरीय ब्राह्मण" एवं "शतपथ ब्राह्मण" में वामनावतार का उल्लेख है । "ऋग्वेद" में विष्णु की तीन डगों से सृष्टि नापने की कल्पना है । "ऐतरेय ब्राह्मण" तथा "छान्दोग्योपनिषद" में देवकीपुत्र कृष्ण तथा "तैतिरीय आरण्यक" में वासुदेव श्रीकृष्ण का उल्लेख है । वैदिक ग्रन्थों में इन्हें ब्रह्मा का अवतार कहा है, परन्तु पुराणों में ये विष्णु के अवतार माने गए हैं ।

गीता के अभिमतानुसार ईश्वर अज, अनन्त और परात्पर होने पर भी

१- *जिन-हरिवंशपुराणः सर्ग ४५-४७ ।*

अपनी अनन्तता को, अपनी माया शक्ति संकुचित कर शरीर को धारण करता है । गीता की दृष्टि से ईश्वर तो मानव बन सकता है, किन्तु मानव कभी ईश्वर नहीं बन सकता । ईश्वर के अवतार लेने का एक मात्र उद्देश्य है सृष्टि में चारों ओर जो अधर्म का अंधकार छाया हुआ होता है उसे नष्टकर धर्म का प्रकाश किया जाय । साधुओं का परित्राण, दुष्टों का नाश, और धर्म की स्थापना की जाय ।[१]

जैन धर्म का विश्वास अवतारवाद में नहीं, उत्तारवाद में है । अवतारवाद में ईश्वर को स्वयं मानव बनकर पुण्य और पाप करने पड़ते हैं । भक्तों की रक्षा के लिए अधर्म भी करना पड़ता है । स्वयं राग–द्वेष से मुक्त होने पर भी भक्तों के लिए उसे राग भी करना पड़ता है और द्वेष भी । वैष्णव परम्परा के विचारकों ने इस विकृति को ईश्वर की लीला कहकर उस पर आवरण डालने का प्रयास किया है । जैन दृष्टि से मानव का उत्तार होता है । वह प्रथम विकृति से संस्कृति की ओर बढ़ता है फिर प्रकृति में पहुँच जाता है । राग–द्वेष युक्त जो मिथ्यात्व की अवस्था है, वह विकृति है । राग–द्वेष मुक्त जो वीतराग अवस्था है, वह संस्कृति है । पूर्ण रूप से कर्मों से मुक्त जो शुद्ध–सिद्ध अवस्था है, वह प्रकृति है । सिद्ध बनने का तात्पर्य है कि अनन्तकाल के लिए अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति में लीन हो जाना । वहाँ कर्मबंध और कर्मबंध के कारणों का सर्वथा अभाव होने से जीव पुनः संसार में नहीं आता ।

जैन शास्त्रों में कहा गया है कि ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अन्तराय – इन अष्ट कर्मों का जिन्होंने जड़मूल नाश कर दिया वे फिर संसार में जन्म धारण नहीं करते । उनको जन्म धारण करने योग्य कोई कर्म नहीं है और कारण भी नहीं हैं । कहा भी है कि–

"दग्धे बीजे यथात्यन्तं, प्रादुर्भवति नांकुरः ।
कर्म बीजे तथा दग्धे, न रोहति भवांकुरः ।।[२]

अर्थात् बीज के जल जाने के बाद अंकुर पैदा नहीं हो सकता, उसी प्रकार कर्म रूप बीज जल जाने के पश्चात् भवरूप अंकुर पैदा नहीं होता यानी जन्म–मरण नहीं करना पड़ता ।

१– *यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।*
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे । –श्रीमद्भगवत् गीता ।

२– *जैन दर्शन–देवेन्द्र मुनि ।*

जैन–साहित्य में अवतारवाद प्रमुख अभिव्यक्ति का विषय नहीं है, फिर भी उसमें कतिपय अवतारवादी तत्वों के दर्शन होते हैं । इस दृष्टि से इस साहित्य में व्याप्त ६३ महापुरुषों की परम्परा उल्लेखनीय है । क्योंकि एक ओर तो इनमें गृहीत २४ तीर्थंकरों के आर्विभाव पर अवतारवादी रंग चढ़ाया गया है और नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव के रूप में वैष्णव परम्परा में प्रचलित अवतारवादी रूपों का जैनीकरण किया गया है ।

यों तो जैन अपभ्रंश हिन्दी साहित्य में अभी तक जितने महाकाव्य उपलब्ध हो सके हैं, सभी में धार्मिक भावनाओं का प्राधान्य रहा है । इनमें "पउम चरिउ" के उपरान्त स्वम्भू तथा जैन कवियों द्वारा लिखे गए "रिट्ठणेमि चरिउ", "हरिवंशपुराण", हेमचन्द्र का, "त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित", पुष्पदंत के "महापुराण" और "उत्तरपुराण" – इन प्रमुख ग्रंथों में वैष्णव अवतारों के जैनीकृत रूप तथा जैन अवतारवाद के कतिपय उपादान मिलते हैं ।

जैन पुराणों में वर्णित तीर्थंकरों का अवतारवाद वैष्णव, अवतारवाद से कुछ अंश में भिन्न प्रतीत होता है । वैष्णव अवतारों में परमपुरुष परमात्मा विष्णु अवतरित होते हैं । उनको यह पद किसी साधना के बल पर नहीं प्राप्त हुआ है अपितु वे स्वयं अद्वितीय ब्रह्म, स्रष्टा पालक और संहारक हैं । इसके विपरीत जैन तीर्थंकर प्रारम्भ में ही अद्वितीय ब्रह्म या परमात्मा न होकर साधना के द्वारा उत्क्रमित होकर परमात्मा या लोकेश होते हैं । सन्तों एवं साम्प्रदायिक आचार्यों सदृश जैन मत में भावना की अपेक्षा साधना का अत्यधिक मूल्य समझा जाता है ।

बारह चक्रवर्ती, बलदेव–वासुदेव और प्रतिवासुदेवः–

तीर्थंकरों के पश्चात् तिरसठ महापुरुषों में बारह चक्रवर्ती परिगणित होते हैं । जैन पुराणों में ये पृथ्वी मण्डल को सिद्ध करने वाले बतलाये गये हैं ।[१]

जैन साहित्य में क्रमशः नौ बलदेव, नौ वासुदेव, नौ प्रतिवासुदेव, को त्रिषष्टि महापुरुषों में ग्रहण किया गया है । अनेक विषमताओं के होते हुए भी इन तीनों का सम्बन्ध विष्णु के पौराणिक अवतारों और उनके शत्रुओं से विदित होता है । जैन पुराणों में दी हुई इनकी कथाओं से यत् किंचित् वैषम्य होते हुए भी तीर्थंकरों के सदृश इनकी कथाओं में भी पुनरावृत्ति हुई है । सामान्यतः सभी कथाओं में एक बलदेव, एक वासुदेव और एक प्रतिवासुदेव ग्रहीत हुए हैं । अतः प्रथम त्रिषष्ठ वासुदेव (जिन्हें नारायण और विष्णु भी

१– *तिलोयपण्णति, पृ० २०४; ४, ५१५–५१६ ।*

कहा जाता है) के साथ विजय–बलदेव और अश्वग्रीव (हयग्रीव) प्रतिवासुदेव हैं । तदनन्तर क्रमशः द्विषष्ठ के साथ अचल और तारक, स्वयम्भू के साथ धर्म और मधुसूदन, पुरुषसिंह के साथ सुदर्शन और मधुक्रीड़, पुण्डरीक के साथ नान्देषेण और निशुम्भ, दत्त के साथ नन्दिमित्र और वलि, लक्ष्मण के साथ राम और रावण और कृष्ण के साथ बलदेव और जरासंध संयोजित हैं ।

उक्त सूची में बलरामों की योजना जैन साहित्य की अपनी विशेषता है । इस योजना के आधार पर अंतिम बलदेव प्रतीत होते हैं । क्योंकि इस सूची में वैसे बलदेव की संख्या सर्वाधिक है जो पूर्ण रूप से जैन साहित्य की कल्पना है । वैष्णव पुराण में राम और बलराम को छोड़कर अन्य किसी भी बलराम का उल्लेख नहीं मिलता है । आठवीं जोड़ी में लक्ष्मण के स्थान पर राम बलराम से नाम–साम्य के कारण आठवें बलदेव हो गये और लक्ष्मण, कृष्ण–विष्णु के स्थान में बड़े भाई बलराम की तुलना में ही कृष्ण वर्ण राम तथा रावण को मारने वाले माने गये ।[१] इस प्रकार जैन महाकवि पुष्पदंत वाल्मीकि और व्यास की भूलों को सुधारते प्रतीत होते है ।[२]

"हरिवंश पुराण" ८८, ९ में कृष्ण गोपाल को पृथ्वी का रक्षक कहा गया है । ये शेषशायी तथा पंचजन्य और धनुष धारण करने वाले हैं । जैन पुराणकार के अनुसार भी इनका अवतार प्रयोजन कंस–वध ही रहा है ।[३] फिर भी संभवतः बलदेव–कृष्ण को जैन परम्परा में समेटने के लिए बताया गया है कि पूर्वकालीन जन्मों में कृष्ण और बलदेव जैन मुनि थे । दूसरे जन्म में वे मुनि द्वय बलदेव–कृष्ण के रूप में अवतरित होते हैं ।[४] पुनः दूसरे स्थल पर बताया गया है कि कृष्ण जो विष्णु–वामन के अवतार हैं, कंसका वध करने के लिए वामनावतार के देव पुनः अवतरित होते हैं ।[५]

इन प्रसंगो से स्वतः स्पष्ट है कि कृष्ण की अवतार कथाओं को

१– *महापुराण ७४, ११, ११ ।*
लक्खण दामोदरणमियकमु, अट्ठम हलहरु रणरस विसमु ।

२– *महापुराण ६९, ३, । ०– ११ ।*
कि मल्लिसं सहासहि धउलइइ लइ लोउ असच्चु सव्वु कहइ ।
वम्मीय वासवयणिहि पहिउ अण्णाणु कुम्भग्गकवि पडिउ ।

३– *जैन हरिवंश पुराणं ८५, १७ ।*

४– *जैन हरिवंश पुराण, ८९, ८–१८ ।*

५– *वही, ८५–८ ।*

वैष्णव पुराणों से ही ग्रहण किया गया है। साम्प्रदायिक रंग देकर केवल बलराम-कृष्ण को जैन मुनि ही प्रमाणित करने की चेष्टा नहीं हुई है, अपितु अन्य अवतार प्रसंगों को भी विकृत रूप में सम्बद्ध किया गया है।

इस प्रकार जैन साहित्य में जैन तीर्थंकरों के दिव्य जन्म में अवतारवादी तत्त्वों के दर्शन होते हैं। असंख्य अवतारों के सदृश तीनों कालों में होने वाले जिनों की संख्या भी अनन्त विदित होती है। वे नित्य रूप में स्थित विमानों से संभवतः जैन धर्म के निमित्त अवतरित होते हैं। इनमें ऋषभ तो विष्णु एवं अनेक अवतारों से भी अभिहित किये गए हैं। इसके अतिरिक्त उस साहित्य में उपलब्ध उपादानों से राम, कृष्ण, प्रभृति वैष्णव अवतारों के ही संकेत नहीं मिलते अपितु बलदेव, वासुदेव का आधार स्पष्ट लक्षित होता है। जैन महाकाव्यों में विष्णु की अपेक्षा हरि-हलधर की अवतार परम्परा प्रचलित हुई है।

(४) वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य तक कृष्ण के स्वरूप-वर्णन की तुलनाः-

(क) वैदिक साहित्य में कृष्ण का स्वरूप/जैन साहित्य में कृष्ण का स्वरूपः-

वेदों से लेकर पुराणों तक के विस्तृत क्षेत्र में कृष्ण का व्यक्तित्व विकसित हुआ है। कृष्ण का एक रूप गोपाल कृष्ण का है, जिसका प्रारंभिक विकास ऋग्वेद की ऋचाओं में मिलता है। "राय चौधरी सुदूर वेदों के अन्तर्गत विष्णु के नटखट रूप में बालकृष्ण के बीज की उत्पत्ति बतलाते हैं।"[१] ऋग्वेद में विष्णु को संबोधित की गई ऋक् उन्हें "कुचर" और "गिरिष्ठा" कहती है।[२] यहीं से कृष्ण की बाल-लीलाओं का आभास मिलता है। ऋग्वेद[३] के अन्य स्थलों में "गोपा" नाम से विष्णु का संबोधन गोपों से उनके निकट संबंध को सूचित करता है। मैकडानल और कीथ ने भी "गोपा" से "गौओं" के रक्षक" का अर्थ लिया है।[४] हापकिन्स ने इसका अर्थ "गोप" लिया है।[५]

१- *अर्ली हिस्ट्री आफ दी वैष्णव सेक्ट, कलकत्ता १९२०, पृ० ४६-४८।*

२- *ऋग्० १ ५४, २, प्रतदविष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यश्चोरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्व॥*

३- *ऋग्वेद १, २२, । ८ त्रीणि यदा विचक्रमे विष्णु गोपा अदाभ्यः॥*

४- *वैदिक इन्डेक्स, जिल्द १, पृ० २७८।*

५- *हापकिन्स, रिलीजन्स आफ इंडिया, पृ० ५७।*

इन विद्वानों द्वारा "गोपा" शब्द की व्युत्पत्ति गो, गोप और कृष्ण के सम्बन्ध को पुष्ट करती है।[1]

ऋग्वेद में अन्यत्र[2] अनेक सींगों वाली गायों से युक्त उच्चलोक की कल्पना की गई है जिसे विष्णु का परमपद कहा गया है। वैष्णव पुराणों के गोलोक, वृन्दावन और गोकुल की मूल उद्भावना का आभास भी इन ऋक् में पाया जा सकता है।

उत्तर वैदिक साहित्य में भी कृष्ण और विष्णु की अभिन्नता को सिद्ध करने वाले कुछ प्रमाण मिलते हैं। तैतिरीय आरण्यक (१०, १, ६) में वासुदेव एवं विष्णु की अभिन्नता के उल्लेख विद्यमान है। बौधायन धर्मसूत्र में विष्णु को गोविन्द और दामोदर कहा गया है जो कृष्ण के ही उपनाम हैं।[3]

कृष्ण का दूसरा रूप दार्शनिक है जिसका विकास उपनिषदों से आरम्भ हुआ। छान्दोग्योपनिषद में कृष्ण घोर आंगिरस ऋषि का शिष्य और देवकी का पुत्र बताया गया है। इस उपनिषद के अध्याय ३, खण्ड १७ में आत्मयज्ञोपासना का वर्णन है। इस यज्ञ की दक्षिणा के रूप में तप, दान, आर्जव (सरलता), अहिंसा, और सत्य वचन का उल्लेख है। यह यज्ञ-दर्शन घोर आंगिरस ऋषि ने देवकी पुत्र कृष्ण को सुनाया था। इस उपदेश को सुनकर कृष्ण की अन्य विद्याओं के विषय में कोई तृष्णा नहीं रही, अर्थात् उनकी जिज्ञासा शान्त हो गई और उन्हें कुछ जानना शेष नहीं रहा। घोर आंगिरस ने कृष्ण को यह भी उपदेश दिया था कि अन्तकाल में उन्हें तीन मंत्रों का जप करना चाहिए:- (१) तू अक्षिक्त (अक्षय) है,

(२) तू अच्युत (अविनाशी), तथा

(३) तू अति सूक्ष्म प्राण है।

छान्दोग्य के इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि आंगिरस ने कृष्ण को आत्मवाद का उपदेश दिया था। इस आत्मवाद या आत्मयज्ञ के उपकरण के रूप में तप, दान, आर्जव, अहिंसा और सत्यवचन का उल्लेख है। स्पष्ट ही यह विचारधारा वैदिक यज्ञोपासना से भिन्न प्रकार की थी। वैदिक परंपरागत यज्ञोपासना के बारे में यह मान्य तथ्य है कि वह हिंसा एवं कर्म-काण्ड प्रधान थी; जबकि आत्मयज्ञ की इस धारणा में तप, त्याग, हृदय की सरलता (निष्कपट भाव) सत्य वचन व अहिंसा आदि श्रेष्ठ

१- *श्रीमती वीणापाणि : हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १३-१४।*

२- *ऋग्० १, १५४-६*

३- *राय चौधरी : पृ० ३७।*

गुणों को अंगीकार करने के द्वारा आत्मशुद्धि व आत्मा का परिष्कार ही मुख्य बात थी।

जैन धर्म व दर्शन की समस्त परंपरा भी इन्हीं विचारों पर आधारित हैं। आत्मा की श्रेष्ठता वहाँ मान्य है। अहिंसा को यह परंपरा परम धर्म मानती हैं। तप, त्याग और सत्य का आचरण इस धर्म के लक्षण हैं।

इस प्रकार घोर आंगिरस द्वारा देवकी पुत्र कृष्ण को दिया गया यह उपदेश जहाँ जैन-पम्परा या श्रमणिक विचारधारा के निकट है, वहीं वैदिक परंपरा तथा विचारधारा से विपरीत हैं।[1]

डॉ. राधाकृष्णन ने भी लिखा है कि – "कृष्ण वैदिक धर्म के भाजक का विरोधी थे और उन सिद्धान्तों का प्रचार करते थे जो उन्होंने घोर आंगिरस से सीखे थे। साथ ही उनके विचार से, घोर आंगिरस की शिक्षाओं और गीता में कृष्ण की शिक्षाओं में परस्पर बहुत अधिक समानता है।[2] लेखक के अनुसार गीता हमारे सम्मुख जो आदर्श उपस्थित करती है, वह अहिंसा का है। यह बात सातवें अध्याय में मन, वचन और कर्म की पूर्ण दशा है और बारहवें अध्याय में भक्त के मन की दशा के वर्णन से स्पष्ट हो जाती है।[3]

इस प्रकार कृष्ण का अहिंसा धर्म के प्रति लगाव हमें सोचने को बाध्य करता है। घोर आंगिरस की शिक्षाओं का जैनपरंपरा से साम्य विचारणीय लगता है। पुन : जैन परंपरागत साहित्य में तीर्थंकर अरिष्टनेमि तथा कृष्ण का पारिवारिक सम्बन्ध इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण लगता है। ऐसा लगता है कि कृष्ण अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में अपने ही कुल के राजपुत्र अरिष्टनेमि के अहिंसा तथा आत्मा की श्रेष्ठता व अमरता के विचारों से प्रभावित हुए थे।

महाभारत में वासुदेव को विष्णु का अवतार माना है।[4] महाभारत में वासुदेव का उल्लेख आया है, किन्तु वासुदेव के स्वरूप के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। वासुदेव वैदिक परम्परा में कब से उपास्य रहे हैं, इसको

१– *भगवद्गीता : परिचयात्मक निबन्ध, पृ० ३२ –डॉ. राधाकृष्णन।*

२– *वही, पृ० ३२।*

३– *वही, पृ० ७५।*

४– *: क : महाभारत : भीष्म पर्व, अ. ६५।*

: ख : सर्वेषामाश्रयो विष्णुरैश्वर्य – विधिमास्थितः।
सर्वेभूतकृतावासो वासुदेवेति चोच्यते॥
– महाभारत : शान्तिपर्व, अ. ३४७, श्लोक ९४।

बताते हुए भण्डारकर,[१] लोकमान्य तिलक,[२] डा. राय चौधरी[३] आदि विद्वानों ने पाणिनि व्याकरण[४] के सूत्रों का प्रमाण प्रस्तुत किया है और इसके आधार पर उन्होंने बताया है कि, ईसा के पूर्व सात शताब्दी से वासुदेव की उपासना प्रचलित हो गई थी ।[५] किन्तु वासुदेव की भक्ति का विकसित रूप हमें महाभारत में मिलता है । पं. रामचन्द्र शुक्ल ने भी "सूरदास" में स्पष्ट लिखा है कि – "वासुदेव भक्ति का तात्त्विक निरूपण महाभारत के काल में ही प्रचलित हुआ ।"[६] विष्णु और वासुदेव का ऐक्य भी महाभारतकार ने स्वीकार किया है । वे विष्णु को ही वासुदेव का रूप मानते हैं ।[७]

वैदिक परम्परा में श्रीकृष्ण का अपर नाम ही वासुदेव है । डॉ. भण्डारकर का अनुमान है कि – "वासुदेव" भक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक का नाम था ।[८] महाभारत के शान्ति पर्व में यह कहा गया है कि सात्वत या भागवत धर्म का सबसे पहले कृष्ण वासुदेव ने अर्जुन को उपदेश दिया ।[९] यहाँ पर वासुदेव और कृष्ण दो पृथक व्यक्ति न होकर एक ही हैं, किन्तु डॉक्टर भण्डारकर ने इन दोनों को पृथक–पृथक स्वीकार किया है । उनकी यह धारणा है कि प्रारम्भ में ये दो पृथक् अस्तित्व वाले देवता थे जो बाद में एक हो गए । इस मत को परवर्ती विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है । महाभारत में जिस श्रीकृष्ण का वर्णन है, वह एक ही है, उसके नाम चाहे अनेक हों ।

'गीता रहस्य' में तिलक ने स्पष्ट लिखा है – "हमारा मत यह है कि कृष्ण चार–पाँच नहीं हुए हैं, वे केवल एक ही ऐतिहासिक पुरुष थे ।"[१०]

१– *कलेक्टेड वर्क ऑफ सर आर. जी. भण्डारकर, वोल्युम ४, पृ. ४१५ ।*

२– *गीता रहस्य, पृ. ५४६–४७, बालगंगाधर तिलक ।*

३– *एच. राय चौधरी, "दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट, पृ.१२४ ।*

४– *वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन् – पाणिनि अष्टाध्यायी–४/३/९८ – सूत्र के वसुदेवक शब्द से वसुदेव की भक्ति करने वाला सिद्ध होता है।*

५– *राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, पृ.११ ।*

६– *सूरदास (भक्ति का विकास) – पृ.२६ ।*

७– *महाभारत, शान्ति पर्व, अ. ३४७, श्लोक ९४ ।*

८– *एच. राय चौधरी : अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट, पृ. ४४ ।*

९– *महाभारत, शान्ति पर्व, अ. ३४७–४८ ।*

१०– *गीता रहस्य अथवा कर्मयोग : पृ.५४८ (पाद टिप्पणी सहित)*

–– श्री बालगंगाधर तिलक ।

हेमचन्द्र राय चौधरी ने अपने वैष्णव धर्म सम्बन्धी ग्रन्थ में कृष्ण और वासुदेव का पार्थक्य स्वीकार नहीं किया है । अपने मत की पुष्टि में उन्होंने कीथ के लेख का उदाहरण दिया है ।[1]

वासुदेव और श्रीकृष्ण का सामंजस्य घटित करने के लिए यह भी कहा जाता हैं कि वासुदेव मुख्य नाम था और "कृष्ण" गोत्रसूचक नाम के रूप में प्रयुक्त होता था । "घटजातक" में वासुदेव के साथ कृष्ण या कान्ह एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु उससे भिन्न व्यक्तित्व सूचित नहीं होता । दीर्घनिकाय के अनुसार वासुदेव का ही दूसरा नाम कृष्ण था ।[2] महाभाष्यकार पतंजलि ने एक स्थान पर लिखा है कि – "कृष्ण ने कंस को मारा और दूसरे स्थान पर लिखा है कि वासुदेव ने कृष्ण को मारा ।" ईस कथन से यह ज्ञात होता हैं किं वासुदेव और श्रीकृष्ण एक ही हैं । महाभाष्यमें "वासुदेव" शब्द चार बार ओर कृष्ण शब्द एक बार आया है । पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि जैसे वैयाकरणों के ग्रन्थों में "वासुदेवक" एवं "जघान कंस" "किल वासुदेवः" आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है । चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में मकदूनिया के राजदूत मैगस्थनीज ने सात्वतों और वासुदेव कृष्ण का स्पष्ट उल्लेख किया है । डॉ. राजकुमार वर्मा कृष्णको वासुदेव का पर्यायवायी मानते हैं ।[3] आर. जी. भण्डारकर ने अपने 'वैष्णविज्म और शैविज्म' ग्रन्थ में वासुदेव संबंधी शिलालेखों का वर्णन किया हैं ।[4]

इस प्रकार हम देखते है कि वैदिक परम्परा में वासुदेव अनेक नहीं, अपितु एक ही हुए हैं । श्रीकृष्ण को ही वहाँ वासुदेव कहा गया है ।[5] किन्तु जैन परम्परा में वासुदेव नौ हैं । श्रीकृष्ण उन सभी में अंतिम वासुदेव थे ।[6] श्रीकृष्ण को जैन और वैदिक दोनों ही परम्पराओं ने वासुदेव माना है ।

1 - "But it is impossible to accept the Statement that Krishna Whom epic tradition identifies with Vasudeo was originally an altogether different individual. On the contrary, all available evidence, Hindu, Buddhist, and Greek, points to the Correctness of the identity, and we agree with Keith when he says that "the separation of Vasudeva and Krishna as two entities it is impossible to justify."

-H. Ray chaudhuri, early history of the Vaishanav Sect., P.36

२– *हिन्दी साहित्य में राधा : पृ. ३१ से उद्धृत ।*

३– *हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : रामकुमार वर्मा, पृ. ४७२ ।*

४– *वैष्णविज्म–शैविज्म–भन्डारकर, पृ. ४५ ।*

५– *वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनंजय–गीता १०/३७ ।*

६– *नवमो वासुदेवोऽयमिति देवा जगुस्तदा –जैन हरिवंशं पुराणं ५५/६० ।*

महाभारत के अन्तर्गत कृष्ण के व्यक्तित्त्व के विविधरूप देखे जा सकते हैं। "महाभारत" के आरम्भ में ही कृष्ण को "युधिष्ठिर रूपी धर्म-वृक्ष का मूल" कहकर कौरव और पाण्डवों के वृत्तान्त में उनके स्वतंत्र व्यक्तित्त्व को प्रस्तुत किया गया है। उसके "वनपर्व" में मार्कण्डेय ऋषि प्रलय-काल में जगत् को आत्मसात् करके वट-वृक्ष के पत्र में शयन करने वाले विष्णु को "कृष्ण रूप" बतलाते हैं। "शान्तिपर्व" का नारायणीय-वृत्तान्त "कृष्ण के परब्रह्म स्वरूप पर सबसे अधिक प्रकाश डालता है। इसमें नर-नारायण, कृष्ण और हरि को सनातन नारायण के चार अवतार कहा गया है। शान्ति-पर्व के "भीष्म स्तवराज" के अन्तर्गत कृष्ण के विष्णु स्वरूप की स्तुति की गई है। सभी पर्व में राजसूय यज्ञ के अवसर पर कृष्ण की अग्र-पूजा में शिशुपाल आदि राजाओं के विरोध करने पर भी भीष्म कृष्ण के विष्णु स्वरूप पर जोर देते हैं।

महाभारत के कुछ स्थलों पर कृष्ण के देव-स्वरूप को छोडकर उनके मानव-रूप को ही प्रस्तुत किया गया है। पाण्डवों के सलाहकार के रूप में कृष्ण के ईश्वरत्व पर विश्वास न करने वाले ब्राहमणं उनकी सीमित शक्ति की और संकेत करते हैं। अश्वमेध-पर्व के अनुगीता भाग में उत्तंक ऋषि का कृष्ण को शाप देने को उद्यत होना भी उनके मानव-चरित्र की ओर संकेत करता है। सभापर्व, वनपर्व तथा शांतिपर्व में कृष्ण के गोपाल रूप का वर्णन भी पाया जाता है।

पतंजलि का "महाभाष्य" कृष्ण के व्यक्तित्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। इसमें वासुदेव को कंस का निहन्ता कहा गया है। कंस की घटना प्रस्तुत करने के कारण "वासुदेव" कृष्ण का ही नाम ज्ञात होता है। पाणिनि की "अष्टाध्यायी" में भी वासुदेव का उल्लेख है। पाणिनि का समय विद्वानों ने लगभग ढाई हजार वर्ष प्राचीन माना है। इस प्रमाण से कृष्ण-पूजा पाणिनि से बहुत अधिक पुरानी सिद्ध होती है। वासुदेव का आशय कृष्ण से ही है, यह "गीता" के दसवें अध्याय के इस श्लोक से भी सिद्ध होता है-

"वृष्णीनां वासुदेवो स्मि पाण्डवानां धनंजय।"

जैन महाभारत का केन्द्रबिन्दु श्रीकृष्ण-वासुदेव दोनों हैं। बाकी के सभी पात्र उनके इई-गिर्द घूमते हैं। जैन साहित्य में वसुदेव के पुत्र को ही वासुदेव नहीं कहा गया है। नौ वासुदेवों में केवल एक श्रीकृष्ण ही वसुदेव के पुत्र हैं, अन्य नहीं। वासुदेव यह एक उपाधि विशेष है। जो तीन खण्ड के अधिपति होते हैं, जिनका तीन खण्ड पर एक-छत्र साम्राज्य होता है वे

वासुदेव कहलाते हैं । उन्हें अर्ध–चक्री भी कहा जाता है । यह पद निदानकृत होता है ।[१] वासुदेव के पूर्व प्रतिवासुदेव होता है, उनका भी तीन खण्ड पर साम्राज्य होता है । जीवन की सांध्यबेला में वे अधिकार के नशे में बेभान बन जाते हैं और अन्याय, अत्याचार करने लगते हैं । उस अत्याचार को मिटाने के लिए वासुदेव उनके साथ युद्ध करते हैं । युद्ध में प्रतिवासुदेव वासुदेव से पराजित होते हैं । युद्ध के मेदान में वासुदेव के हाथ से प्रतिवासुदेव की मृत्यु होती है । दूसरे शब्दों में कहा जाय तो स्वचक्र से उनका हनन होता है । प्रतिवासुदेव के तीन खण्ड के राज्य को वासुदेव प्राप्त कर लेते हैं । वासुदेव महान वीर होते हैं, कोई भी युद्ध में उन्हें पराजित नहीं कर सकता । कहा जाता है कि वासुदेव अपने जीवन में तीन सौ साठ युद्ध करते हैं, पर कभी भी किसी युद्ध में वे पराजित नहीं होते । वासुदेव में बीस लाख अष्टपदों की शक्ति होती है ।[२] किन्तु वे शक्ति का कभी भी दुरूपयोग नहीं करते । जैन परम्परा में वासुदेव को भी ईश्वर का अंश या अवतार नहीं माना गया है । वासुदेव शासक है, पर उपास्य नहीं । तिरसठ श्लाघनीय पुरुषों में चौबीस तीर्थंकर ही उपास्य माने गये हैं । वासुदेव भी तीर्थंकर की उपासना करते हैं । भौतिक दृष्टि से वासुदेव उस युग के सर्वश्रेष्ठ अधिनायक होते हैं, पर निदानकृत होने से वे आध्यात्मिक दृष्टि से चतुर्थ गुण के आगे नहीं बढ़ पाते ।[३] वासुदेव स्वयं तीर्थंकर व श्रमणों की उपासना करते हैं । श्रीकृष्ण वासुदेव भगवान अरिष्टनेमि के परम भक्त थे । जब अरिष्टनेमि द्वारका पधारते तब श्रीकृष्ण अन्य कार्य छोड़कर उन्हें वंदन करने के लिए अवश्य जाते । अरिष्टनेमि से श्रीकृष्ण वय की दृष्टि से ज्येष्ठ थे तथापि आध्यात्मिक दृष्टि से अरिष्टनेमि ज्येष्ठ थे । अतः वे उनकी उपासना करते थे ।

कृष्ण का "वासुदेवत्व" उनके वीरत्व का द्योतक है । कृष्ण की अप्रतिम वीरता व शक्तिसम्पन्नता को जैन–परम्परा ने शलाकापुरुष वासुदेव के रूप में मान्यता देकर ग्रहण किया । जबकि वैष्णव–परम्परा ने अपनी अवतारवाद की भावना के अनुकूल उन्हें भगवान विष्णु के अवतार, स्वयं भगवान वासुदेव के रूप में माना तथा स्वीकार किया । वासुदेव रूप में कृष्ण का मुख्य कार्य पृथ्वी पर उत्पन्न असुरों का संहार करना है ।

१– समवायांग– १५८ ।

२– (क) समवायांग १५८ ।

(ख) आवश्यक भाष्य गा. ४३ ।

३– (क) समवायांग १५८ ।

(ख) आवश्यक नियुक्ति ४१५ ।

जैन दृष्टि में कृष्ण निकट भविष्य में होने वाले भगवान हैं। भविष्य में होने वाले तीर्थंकरों में श्रीकृष्ण बाहरवें क्रम के "अमम" नामक तीर्थंकर होंगे। यह तो उनकी आत्मा के महत्त्व को समझते हुए जैन शैली से उसको स्थान दिया गया है। किन्तु यही आत्मा कृष्ण के स्वरूप में भी जैन दृष्टि से एक अति उच्च कोटि की आत्मा स्वीकार करने में आई है। धार्मिक तथा राजनीतिक दोनों ही क्षेत्रों में श्रीकृष्ण विलक्षण प्रतिभा के स्वामी थे। जो व्यक्ति पक्का राजनीतिज्ञ होते हुए भी धर्मात्मा हो, ऐसे ही व्यक्ति श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्ण महाभारत के युद्ध के पक्ष में नहीं थे। किन्तु उनके प्रयत्नों के उपरान्त भी जब युद्ध शुरु हो गया तब पाण्ड्वों का पक्ष लेकर उन्हें विजयश्री से मंडित करने में भी कृष्ण का उद्देश्य सामाजिक तथा धार्मिक दोनों ही था। उनका उद्देश्य दुष्टों का आधिपत्य समाप्त करके उनके स्थान पर सत्पुरुषों का स्थापित करना था।

जैन महाभारत में कृष्ण के मन में एक ही न्याय की परिभाषा थी, एक ही सत्य था। उनकी राजनीति भी यही थी, जगत् पर से दुष्टों का शासन समाप्त हो तथा उसे दूर करने के लिए जो कुछ भी करना पड़े वह न्याय, जो कुछ बोलना पड़े वह सत्य, जो कुछ करना पड़े वह नीति। कृष्ण का यह सत्य जैन परम्परा के अनुसार अनुबन्ध सत्य कहलाता है।

जैन शैली के अनुबन्ध सत्य को जानने वाली आत्माएँ कृष्ण के स्वरूप को जितना न्याय दे सकती हैं उतना न्याय अजैन लोग भी नहीं दे सकते। श्रीकृष्ण का सत्य, न्याय, नीति, दया इत्यादि सभी अनुबन्ध परिणाम पर आधारित है। परिणाम को ध्यान में रखकर ही कृष्ण ने उसको प्राप्त करने के साधन निश्चित किये। जैन शैली में कृष्ण का गीता का उपदेश नहीं है। इसके विपरीत अर्जुन ने महाभारत के युध्ध में जब अपने बन्धुओं से लड़ने को मना किया तब श्रीकृष्ण ने कहा–"ये सभी व्यकित अपने पाप के भार से मरने वाले हैं। तू तो निमित्त मात्र है।" इसके विपरीत अजैन महाभारत में कृष्ण अर्जुन से कहते हैं – "तू कहाँ किसी को मारने वाला है। मारने तथा जीवन देने वाला तो मैं ईश्वर हूँ। तुझे तो सिर्फ बाण चलाने का कार्य करना है।"

महाभारत से अनुप्राणित होकर पौराणिक काल में कृष्ण के विविध रूपों की विस्तृत व्याख्याएँ प्रस्तुत की गईं, यद्यपि इनमें प्रधानता इनके अव्यक्त और व्यक्त रूपों की रही। ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, भागवतपुराण, वायुपुराण, अग्निपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, गरुडपुराण, हरिवंशपुराण, आदि सभी पुराणों में श्रीकृष्ण के विविध रूपों और लीलाओं

के मार्मिक वर्णन मिलते हैं। इनमें भागवतपुराण निशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें कृष्ण के रूपों के सबसे अधिक वर्णन हुए हैं, और यही वैष्णव भक्ति का मूलाधार रही है। डॉ. विश्वनाथ शुक्ल के शब्दों में श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण रूपों का सारांश यह है–

–श्रीकृष्ण प्रकृति से परे, प्रकृति नियामक, साक्षात् ईश्वर हैं। वे अपनी विच्छित्ति से माया को निरास कर अपने कैवल्यरूप में स्थित हैं। कृष्ण, वासुदेव, देवकी पुत्र, नन्दगोपकुमार, गोविन्द आदि नामों से इसी परब्रह्म परमेश्वर को प्रणाम किया जाता है। वे वस्तुतः अजन्मा और अकर्मा हैं, किन्तु ऋषि, मनुष्य, तिर्यक, जलचरादि योनियों में जन्म लेना और तत् योनियों के अनुरूप आचरण करना इनकी लीला मात्र है। वे कालरूप, अनादि–निधन और सर्वव्यापक हैं। वे आत्माराम हैं, किन्तु भक्तों की कीर्ति–कौमुदी विकीर्ण करने के लिए उस अजन्मा ने यदुकुल में जन्म लिया। भक्तियोग की स्थापना करना भी उसका लक्ष्य था। भक्ति–पराधीन होने के कारण भगवान–कृष्ण को पुत्र, मित्र, पति, मंत्री, दूत और सारथी तक बनना पड़ा। वस्तुतः तो वे समदर्शी, अद्वितीय परमात्मा हैं। वे आदिपुरुष नारायण हैं जो लोगों को विमोहित करते हुए गूढ़ रूप से वृष्णि वंश में विचरण कर रहे हैं। परम प्रेमविह्वला भक्त गोपियों के साथ उस योगेश्वर आतमाराम को साधारण प्राकृत पुरुष के समान भी रमण करना पड़ा।"

जैन समाज में जो भी पुराण–साहित्य विद्यमान है, वे अपने ढंग का निराला है। जहाँ अन्य पुराणकार इतिवृत्त की यथार्थता सुरक्षित नहीं रख सके हैं, वहाँ जैन पुराणकारों ने इतिवृत्त की यथार्थता को अधिक सुरक्षित रक्खा है।

यति वृषभाचार्य ने "तिलोयपण्णति" के चतुर्थ अधिकार में तीर्थंकरों के माता–पिता के नाम, जन्म नगरी, पंचकल्याणतिथि, अन्तराल, आदि कितनी ही आवश्यक वस्तुओं का संकलन किया है। जान पडता है कि हमारे वर्तमान पुराणकारों ने उस आधार को दृष्टिगत रख कर पुराणों की रचनाएँ की हैं। पुराणों में अधिकतर त्रेसठ शलाकापुरुष का चरित्रचित्रण है। प्रसंगवश अन्य पुरुषों का भी चरित्र–चित्रण हुआ है।

जैन पुराणों की खास विशेषता यह है कि इनमें यद्यपि काव्य शैली का आश्रय लिया गया है तथापि इतिवृत्त की प्रामाणिकता की ओर पर्याप्त दृष्टि रखी गई है।

जैन साहित्य में हरिवंश पुराण में शलाकापुरुष वासुदेव कृष्ण की

वीरता, तेजस्विता, अप्रतिम शक्ति सम्पन्नता आदि का वर्णन है । इसमें कृष्ण के बाल काल के पराक्रम की अनेक क्रीडाओं का वर्णन है । कृष्ण को सर्वगुण–सम्पन्न विशिष्ट उत्तम पुरुष के रूप में वर्णित किया है ।

(ख) मध्यकालीन वैष्णव सम्प्रदायों में कृष्ण का स्वरूप तथा मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य से उसकी तुलना :–

मध्ययुगीन कृष्ण–साहित्य परिमाण और गुण दोनों में श्रेष्ठ है । अनेक कवियों ने काव्य लिखकर कृष्ण–काव्य की श्रीवृद्धि की है । मध्कालीन सम्प्रदायों के अधिकांश भक्त वाणीकार हैं । पत्र–पुष्प के साथ इन भक्त कवियों ने अपनी भावना–बद्ध वाणी का नैवेद्य भी भगवान कृष्ण को समर्पित किया है । प्रत्येक सम्प्रदाय में कृष्ण का स्वरूप अभिन्न होते हुए भी भिन्न रूप में अभिव्यक्त हुआ है । मध्ययुगीन सम्प्रदायों ने कृष्ण के विविध रूपों को अपने–अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से देखा है । श्रीकृष्ण के संबंधित प्रमुख रूप से निम्नलिखित सम्प्रदाय आते हैं–

(अ) १. वल्लभ सम्प्रदाय
२. निम्बार्क सम्प्रदाय
३. चैतन्य अथवा गौडीय सम्प्रदाय
४. हरिदासी सम्प्रदाय
५. राधावल्लभ सम्प्रदाय
६. श्रीनाथजी के धामी सम्प्रदाय में कृष्ण
७. वंशी अलि के ललित सम्प्रदाय में कृष्ण
८. मीरा सम्प्रदाय में कृष्ण

(ब) उत्तर मध्ययुगीन (रीतिकाल) हिन्दी साहित्य में कृष्ण

(क) रीति–मुक्त कवियों के साहित्य में कृष्ण का स्वरूप

अ (१) वल्लभ सम्प्रदाय में कृष्ण :–

वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण को परब्रह्म माना जाता है । जिस परम तत्त्व को श्रुतियों ने परब्रह्म कहा है,[१] उसी को वल्लभाचार्यजी ने पुराणेश्वर पुरुषोत्तम कहा है ।[२] जब भगवान व्यापी वैकुण्ठ में विराजते हैं तब

१– *परब्रह्म तु कृष्णो हि सच्चिदानन्दक बृहत्–सिद्धान्त मुक्तावली श्लोक ३ षोडष ग्रन्थ पृ. २४ ।*

२– *यत्र येन यतो यस्य यस्मे यद्यद्यथा यदा ।*
स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधान पुरुषेश्वरः ।।..... तत्त्वदीप
निबन्ध शास्त्रार्थ प्रकरण ज्ञान सागर बम्बई, पृ. २३७ ।

पुरुषोत्तम कहलाते हैं तथा जब प्रकट होते हैं तब वे ही श्रीकृष्ण कहलाते है। वेदान्त शास्त्र में जिसे ब्रह्म कहा गया है, स्मृति अथवा पुराणों में जो परमात्मा शब्द से संहिता हैं, भागवत शास्त्र में जिसे भगवान शब्द से व्यक्त करते हैं, वे पुष्टि-मार्ग में रस-स्वरूप श्रीकृष्ण हैं।[1] श्री वल्लभाचार्य का सिद्धान्त शुद्धाद्वैत था। आचार्य शंकर के अद्वैत से भिन्नता दिखाने के लिए ही अद्वैत के साथ "शुद्ध" विशेषण दिया गया है। अद्वैत मत में मायाशंबलित ब्रह्म जगत का कारण माना जाता है, परन्तु इस मत में माया से अलिप्त, माया सम्बन्ध से विरहित अतएव नितान्त शुद्ध ब्रह्म जगत का कारण माना जाता है।[2]

भक्ति के जिस मार्ग का निर्देशन श्री वल्लभाचार्य ने किया उसे पुष्टि मार्ग कहा गया। श्रीकृष्ण पूर्णानन्द स्वरूप पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं।" अद्भुत अलौकिक कर्म करने वाले उस कृष्ण को में नमस्कार करता हूँ, जिससे जगत का आविर्भाव हुआ और जो रूप और नाम के भेद से इस जगत में रमण कर रहे है।[3] आनन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। वल्लभाचार्य ने उन्हीं को अपने मार्ग का इष्ट और उन्हीं की भक्ति को परमानन्द प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन माना है। सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के अवतार रूप में दो रूप मान्य है। एक लोक-वेद कथित पुरुषोत्तम, दूसरा लोक-वेदातीत पुरुषोत्तम, मधुरा, द्वारका, तथा कुरुक्षेत्र में लीला करने वाले, ब्रज में दुष्टों का संहार करने वाले, तथा धर्म की स्थापना करने वाले वेद-रक्षक कृष्ण हैं तथा बाल-रूप से यशोदा और नन्द को मोहने वाले वृन्दावन में ग्वाल-बालों के साथ गायें चराने वाले तथा वृन्दाविपिन में गोपियों के साथ रास करने वाले कृष्ण का रूप रसात्मक है। देवकीनन्दन वासुदेव धर्मरक्षक-रूप हैं तथा यशोदा- नन्दन और नन्दनन्दन रसरूप हैं।[4] जब यह परब्रह्म अपने अपरिमित आनंद को बाह्य रूप से अनुभव करना चाहता है तब वह अपनी आत्मा के दो विभाग करके उसके स्त्री-भाव और पुं-भाव

१- *श्रीकंठ मणि पुष्टि मा. सिद्धान्त की आध्या. पृष्ठभूमि।*

२- *माया सम्बन्ध रहितं शुद्धमित्युच्यते बुधैः*
कार्यकारण रूपंहि शुद्धं ब्रह्म न मायिकम् ॥

- शुद्धाद्वैत मार्तण्ड-२८

३- *नमो भगवते तस्मै कृतयादद्भुत कर्मणे,*
रूप नाम विभेदेन जगतः क्रीडति यो यज्ञः ॥

- स.दी. निए शास्त्रार्थ, प्रकरणं श्लोक। पृ.।

४- *डो. दीन दयाल गुप्त : अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय, पृ. ४०४।*

को प्रकट करता है ।[1] दो होकर भी परब्रह्म पूर्ण ही रहता है । इस प्रकार उसका द्विविध अन्तर्यामी रूप पूर्ण हो पुरुषोत्तम में स्वामिनी भाव (राधा भाव) एवं स्वामिनी में पुरुषोत्तम भाव से स्थित रहता है । जब पुरुषोत्तम बाह्य रूप से लीला करते हैं तब उनकी शक्तियाँ भी बाह्य-स्थित रहती हैं और विविध रूप, गुण और नामों से उनसे विलास करती हैं । उन अनन्त शक्तियाँमें श्रिया, पुष्टि, गिरा और कान्त्या आदि द्वादश शक्तियाँ मुख्य हैं । ये ही श्रीस्वामिनी, चन्द्रावली, राधा और यमुना आधिदैविक रूप और नामों से प्रकट होकर पुरुषोत्तम के साथ ही स्थित रहती हैं ।[2]

श्रीकृष्ण अवतार तथा अवतारी भी हैं । जो ब्रह्म प्राकृत गुणों से रहित निर्गुण स्वरूप हैं वही इस लोक में अवतार धारण कर सगुण रूप से लीलाएँ करते हैं । इसी सिद्धान्त के अनुसार वल्लभ सम्प्रदायी भक्तों ने भगवान् कृष्ण की अनेक लीलाओं की अवतारणा की है । सम्प्रदाय में भागवत को विशेष रूप से मान्यता प्राप्त है । जितने भी वल्लभ-सम्प्रदायी कृष्ण-भक्त कवि हुए प्रायः सभी ने भागवत को आधार मानकर श्रीकृष्ण की अनेक मनोहारी, लीलाओं का उद्‌घाटन किया । काव्य के लिए भी उन्होंने भागवत को आधार बनाया । सूरदास का "सूरसागर" नंददास का "भँवरगीत" तथा "रास-पंचाध्यायी" आदि रचनाएँ इसका प्रमाण है ।

वल्लभ-सम्प्रदाय में कृष्ण के साथ राधा का भी समावेश है किन्तु उन्हें सच्चिदानन्द प्रभु की आल्हादिनी शक्ति माना जाता है । अपनी आल्हादिनी शक्ति के साथ ब्रह्म का जगत में आविर्भाव एवं तिरोभाव होता है । वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीकृष्ण के स्वरूपों की सेवा और पूजा होती है । सम्प्रदाय में इन्हें मूर्ति न कहकर भगवान का साक्षात् स्वरूप माना जाता है । इसीलिए इन्हें "स्वरूप" कहा जाता है ।

शुद्धाद्वैत सिद्धान्त के अनुसार श्री राधा परब्रह्म की आत्मशक्ति होने से सर्वथा अभिन्न मानी गई है । श्रीनाथजी के साथ राधा-भाव अभिन्न है । इसी कारण राधा का प्रथम विग्रह दृष्टिगोचर नहीं होता । शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में श्रीकृष्ण की प्रधानता है क्योंकि यहाँ शक्ति शक्तिवान के अधीन ही मानी गई है । वस्तुतः राधा और कृष्ण अभिन्न और एकरूप है, यही शुद्धाद्वैत सिद्धान्त का वास्तविक स्वरूप है ।

१- सएकाकी नारमत् । सआत्मानं द्वेधा पातयत
तथा - भजनानंदसिद्धयर्थं द्विरूपत्वमयीष्यते । - भा. ए. एक नि. कारिका

२- द्वारकादास परीख "सूर-निर्णय" पृ. १९० ।

(२) निम्बार्क सम्प्रदाय में कृष्ण :–

निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुसार ईश्वर चित् और अचित् है, साथ ही भिन्न भी है। एक मात्र वेदप्रमाण से जानने योग्य, सबसे भिन्न और फिर सबसे अभिन्न भी विश्वस्त भगवान ही ईश्वर तत्त्व है।[१] वे स्वयं आनन्दमय है, और जीव के आनन्द का कारण भी है। वह पुण्य पाप से परे है॥

सम्प्रदाय के कृष्ण सदैव राधा के साथ विराजित हैं। गोपियों से घिरे हुए कृष्ण को जिनमें राधा प्रधान है, महत्त्व दिया गया है। राधा कृष्ण की वामांगिनी कही गयी है।[२] युगलकिशोर श्री राधा–कृष्ण की पूजा–उपासना और उनका ही ध्यान करने का विधान सम्प्रदाय में पद्मपुराण के पाताल खण्ड से लिया गया प्रतीत होता है।[३]

निम्बार्क सम्प्रदाय में भागवत का विशेष आदर है। भागवत के अनुसार नवधा–भक्ति का महत्त्व यहाँ भी है। कीर्तन–पद्धति उनमें भी विशेष है। कृष्ण–राधा की माधुर्य–लीला इस सम्प्रदाय की प्रमुख भावलीला है। साधना और सिद्धान्त अथवा आधार–पक्ष तथा मान्यता–पक्ष दोनों में ही निम्बार्क सम्प्रदाय भागवत से प्रभावित है।

सम्प्रदाय की अनुरागात्मिका उपासना में निकुंजबिहारी श्रीराधा प्रिया–प्रियतमा के भाव से आराध्य है। इस भाव का स्थल इस भूमण्डल से परे गोलोक धाम है जिसका दूसरा रूप ब्रज–मण्डल में नित्य वृन्दावन धाम है।

(३) चैतन्य अथवा गौड़ीय सम्प्रदाय में कृष्ण :–

चैतन्य सम्प्रदाय के अनुयायी श्री चैतन्य महाप्रभु को साक्षात् कृष्ण मानते हैं। श्रीकृष्ण राधा–भाव का आस्वाद करना चाहते थे। केवल कृष्ण रूप से तो उनका अवतार ब्रज में ही हो चुका था, अब राधा–भाव से संयुक्त होकर उन्होंने प्रेमरस–माधुरी का आस्वादन कराने के हेतु नवद्वीप में अवतार लिया।[४] अतः चैतन्यदेव कृष्ण–राधा संयुक्तावतार है। उनका गौर

१– *वेदान्त पारिजात सौरभ–१–१–२, ४, १०, १२*

२– *अंगेतु बामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामतस सौभगाम्।*
सखी सहस्त्रैः परिसेवितां सदा, स्मरेय देवीं सकलेष्टकामदाम्॥
–दशश्लोकी, श्लोक–५

३– *पद्मपुराण–पाताल खण्ड, अध्याय ८१–३५–५० श्लोक*

४– *राधा भाव कांति दुइ अंगीकार करि।*
श्रीकृष्ण चैतन्य रूप कइल अवतार॥ चै. च. आदि लीला ४ पृ. २५

वर्ण भी इसी बात का द्योतक है कि उनमें राधा-भाव समाविष्ट है । भाव और वर्ण उनमें दोनों ही राधा के थे । उनके अन्तर का वर्ण तो भिन्न है, कृष्ण है, बाहर का वर्ण श्रीराधा की अंग कान्ति है ।[1]

श्री चैतन्य दैव के शब्दों में – "ब्रजेन्द्रनन्दनमद्वय ज्ञान-तत्त्व वस्तु है । सबके आदि सर्वांशी, किशोर, शेखर, चिदानन्द, स्वरूप, सर्वाश्रय और सर्वेश्वर हैं । वे स्वयं भगवान हैं, इनका दूसरा नाम गोविन्द हैं, सर्वैश्वर्यपूर्ण है, गोलोक धाम हैं ।"[2]

कृष्ण अवतार नहीं, अवतारी हैं, अंश नहीं अंशी हैं । इष्टदेव कृष्ण की देह का धर्म बाल्य और पोगन्ड है, किन्तु स्वयं अवतारी और गोविन्द मोहिनी हैं । वे समस्त कांताओं की शिरोमणि हैं । ये राधा कृष्णमयी हैं, वे सब जगह कृष्ण को ही देखती हैं । राधा सर्वपूज्य परम देवता हैं, सभी की पालन-कतृ जगत-माता हैं । कृष्ण स्वयं जगत-मोहन हैं, राधा इन्हें भी मोहित करती हैं । अतः वे सबसे श्रेष्ठ हैं । राधा पूर्ण शक्ति हैं, कृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं । इन दोनों में इसी प्रकार कोई भेद नहीं है, जैसे मृगमद और इसकी गंध में तथा अग्नि और उसकी ज्वाला में ।[3] राधा-कृष्ण एक ही स्वरूप हैं केवल लीला रस के आस्वादन करने के लिए दो रूप धारण किये हैं ।[4]

१- *अंतरे वरण भिन्न, बाहिउ गोरांग चिन्ह ।*
श्री राधार अंग कांति राजे ।। गो. प. त. १/३/११।।

२- *कृष्णे-स्वरूप विचार शुन सनातन ।*
अद्वय जान तत्त्व वस्तु ब्रजेन्द्र नन्दन ।।
सर्व्वांपि सर्व्व अंशी किशोर शेखर।
चितानन्द देह सर्व्वाश्रय सर्व्वेश्वर ।।
स्वयं भगवान कृष्ण गोविन्द परनाम ।
सर्व्वैश्वर्यपूर्ण जांर गोलोक नित्य धाम ।।
-चै.च. मध्यलीला परि. २० पृ.२६१ ।

३- *अंश शक्त्यावंश रूपे द्विविधावतार ।*
बाल्य और पोगन्ड धर्म दुइत प्रकार ।।
किशोर स्वरूप स्वयं अवतारी ।
चै. च. आदि लीला परि. २, पृ.१६ ।

४ *गोविन्दा नन्दिनी राधा गोविन्द मोहिनी ।*
गोविन्द सर्वस्व सर्व कांता शिरोमणि ।।

चैतन्य मत "अचिन्त्य भेदाभेद" के सिद्धान्त को मानता है। भगवान श्रीकृष्ण ही परम तत्त्व हैं। उनकी अनन्त शक्तियाँ हैं। शक्ति और शक्तिमान में न तो परस्पर भेद ही सिद्ध होता है और न अभेद, –इन दोनों का संबंध तर्क के द्वारा अचिन्त्य है। ब्रजस्वामी नन्द के पुत्र श्रीकृष्ण ही आराधनीय भगवान हैं। इनका धाम वृन्दावन है। ब्रज की गोपिकाओं के द्वारा की गई रमणीय उपासना ही साधकों के लिए माननीय प्रमाणिक उपासना है। श्रीमद्भागवत निर्मल प्रमाण–शास्त्र है। प्रेम ही सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ है–चैतन्य मत का यही सारांश है।[1]

कृष्ण के प्रति प्रेम काम किसी प्रकार नहीं हो सक्ता। गोपियों का कृष्ण के प्रति भाव काम का नहीं, प्रेम का था। इसलिए वह उज्ज्वल था। गोपियाँ अपने सुख के लिए नहीं, कृष्ण के सुख के लिए उनसे प्रेम करती थीं।[2]

कृष्णमयी कृष्ण जांर मितरे बाहिरे।
जोहा जोहा नेत्र पड़े त्नेहा कृष्ण स्फुरे॥
अतएव सर्वपूज्या परम देवता।
सर्वपालिका सर्व जगतरे माता॥
जगत मोहन कृष्ण ताहार मोहिनी।
अतएव समस्तेर परा ठकुराणी।
राधा पूर्ण शक्ति कृष्ण पूर्ण शक्तिमान। दुइ वस्तु भेद नाहिं शास्त्रेण प्रमाण।
मृगमद तारगंध जैसे जैसे अविच्छेद। अग्निज्वाला ते जैछे वसु नाहि भेद।
राधाकृष्ण एछे सदा एकइ स्वरूप। लीलारस आस्वादि ते धरे दुइ रूप॥
–चै.च.आदिलीला ४, पृ. २४–२५

१– *आराध्ये भगवान ब्रजेशतनय स्तद्धाम वृन्दावन।*
रम्या काचिदुपासना ब्रज वधूवर्गेण या कल्पिता॥
शास्त्र भागवतं प्रमाण ममले, प्रेमा पुमर्थी महान्।
श्री चैतन्यमहाप्रभोमंतमिदं तत्रादरो नः परः॥
–विश्वनाथ चक्रवर्ती दे.द.पृ.५२७।

२– *काम तात्पर्य कहै केवल संभोग निज,*
कृष्ण सुख तात्पर्य प्रेम बल यही है।
वेद, धर्म, लोक धर्म, देहधर्म, कर्म लज्जा,
धैर्य आत्मदेह सुख जोई प्रिय सही है॥
दुस्त्यज जो आर्यपथ परिजन स्वजन कों,
ताडन और भर्त्सन सोऊ सुख नहीं है।
सवै त्यागि कृष्ण भजे, तत्सुख ही हेत सजै,
करै प्रेम सेवा भाँति प्रिय रुचि लही है॥
सुबल श्यामकृत चैतन्य चरितामृत

चैतन्य सम्प्रदाय में कृष्ण ही अंतिम तत्त्व हैं। कृष्ण की तीन शक्तियाँ है–चित्, माया और जीव। चित् शक्ति से भगवान अपने गुणों की अभिव्यक्ति करते हैं। राधा उनकी आह्लादिनी शक्ति आनन्द–शक्ति है। कृष्ण प्रिया ही अपने व्यक्त स्वरूप में राधिका कही जाती है। माया शक्ति से भगवान जड् जगत् को उत्पन्न करते हैं और जीव शक्ति से अनन्त आत्माओं को। जीव भगवान से भिन्न है और अणु–परमाणु वाला है। जीव और जगत् भगवान के विशेषण नहीं, उनकी शक्ति की अभिव्यक्तियाँ है। भगवान् की इच्छा मात्र से माया में गति उत्पन्न होती है। संप्रदाय में मोक्ष का अर्थ है–भगवान् की प्रीति का निरन्तर अनुभव प्रेम ही मुक्ति है। भक्ति ही वास्तविक मोक्ष है और भगवद–भक्ति की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है।

(४) हरिदासी संप्रदाय में कृष्णः–

स्वा. हरिदास सखि भाव के उपासक, अत्यन्त रसिक भावुक भक्त थे। उन्होंने अपने इष्टदेव का जो रूप रखा, संप्रदाय में वही मान्य हुआ। अतः संप्रदाय में परात्पर रस स्वरूप नित्य किशोर वृन्दावन–बिहारी श्रीकृष्ण ही आराध्य हैं। स्वा. हरिदास अनन्य सखी ललिता का अवतार माने जाते हैं। ललिता सखी की दृष्टि ने वृन्दावन–बिहारी और विहारणी की नित्य केलि क्रीड़ाओं की जो झाँकी देखी वह संप्रदाय की अतुल संपत्ति है। युगल सरकार की रसात्मक उपासना के अन्तर्गत ही उनके सारे स्वरूपों परब्रह्म, लीलावतारी, दुष्टदलन, भक्तत्राता आदि का अन्तर्भाव हो गया है। दयनीय किशोर मूर्ति श्रीकृष्ण की रूप–माधुरी के मधुपायी चंचरीक हरिदासजी एवं परवर्ती भक्तों ने भगवान की रसात्मक केलि और किशोर क्रीड़ा में अपने को निमज्जित कर दिया है।

स्वामी हरिदासजी के परात्पर रस स्वरूप नित्य बिहारी श्रीकृष्ण के भी अवतारी हैं।[१] उपासना का यह छाँट रस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वामी हरिदासजी ने स्पष्ट कहा है कि उनकी उपासना ब्रज की उपासना नहीं है:–

उनका यह उपास्य ब्रज का नहीं है, यह तो नव निकुंज सुखपुंज महल

१– *सरि श्री हरिदास जी को करि है।*
कर्म धर्म भक्ति मुक्ति इति भरजा दहि को टरि है।
असकला अवतारन के, ब्रज के रस–सिंधुहिं को तरि है।
रस रीति सों रीति प्रतीत यहै श्री विहारिनदासहि जो बरि है।
जिनके सुख सार बिहार सही, सरि श्री हरिदास की को करि है।
–बिहारिनदास।

में बसने वाला है । जिसे वेद-तत्त्व और विचार से भी नहीं पाया जा सकता-उसी रस को स्वामी हरिदास प्रत्यक्ष रूप से पाते है । उनके इष्ट का नाम श्री कुंजबिहारी है ।[१] धाम वृन्दावन है और नित्य बिहार उनका क्रम है । हरिदासजी युगल की काम-केलि के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार के प्रेम प्रकाशन को महत्त्व नहीं देते ! सर्वदा नव-यौवन से उन्मत्त किशोर किशोरियाँ एक दूसरे के प्रेममें आबद्ध हैं ।

नित्य बिहार में गोपियों की पहुँच नहीं है । यह सखी संप्रदाय है । सखी भी नित्य बिहारी परात्पर प्रेम का एक स्वरूप है । यह प्रेम परात्पर प्रेम है । नित्य तत्त्व है । अतः प्रेम के ये सभी स्वरूप नित्य हैं । सखी सहचरी नित्य है । इस नित्य आनन्द की उपासना भी नित्य है ।[२]

(५) राधावल्लभ सम्प्रदाय में कृष्णः-

श्री राधावल्लभ सम्प्रदाय वृन्दावन का प्रमुख संप्रदाय है । यह सखि संप्रदाय है । श्रीकृष्ण तथा राधा इस संप्रदाय के उपास्य हैं । भक्ति में माधुर्य भावना की जो धारा निम्बाकाचार्य ने आरम्भ की थी राधावलल्भ सम्प्रदाय में आकर उसका विकास हुआ । राधा वल्लभ संप्रदाय की भावपूर्ण माधुर्य उपासना का श्रेय श्री हितहरिवंश गोस्वामी को है ।

सम्प्रदाय में नित्य बिहारी युगल की उपासना की जाती है किन्तु उनकी भाव-पद्धति की विशेषता है-राधा की प्रधानता । उनकी "हरिते प्रथम पूजियत राधा" आराध्य मुख्य रूप से राधा तथा उनके द्वारा उन्हीं के संबंध से मधुर संबंध वाले कृष्ण उन्हें प्रिय थे । सुधर्म बोधिनी के अनुसार श्री राधा के चरणों में सुन्दर श्याम की अधिक आसक्ति देखकर ही हित हरिवंश उन पर रीझे थे । अतः राधावल्लभ सम्प्रदाय में श्री राधा-कृष्ण के अनुसंग से पूजित होते हैं । वस्तुतः राधा ही इस संप्रदाय की इष्ट हैं । वे कृष्ण की आराध्या हैं तथा प्रेम स्वरूपा हैं ।

(६) श्री प्राणनाथ जी के धामी सम्प्रदाय में कृष्णः-

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री प्राणनाथजी थे । ये श्री राधाकृष्ण की रास

१- *श्रीकुंज बिहारी सर्व संसार-बिहारिनदास जी की वाणी, सिद्धान्त के पद, सं० १४१ ।*

२- *नित्य बिहारिनि नित्य बिहारी ।*
नित्य निकुंज मंजु सुख पुंजनि, नित्य नेह उपचारी ।।
नित्य सखी सहचरी, संपति वन, नित्य मोद मनुहारी ।
नित्य उपास किशोरदास बसि नित आनन्द उदारी ।।
-सिद्धान्त सार संग्रह किशोरदास, पृ० २१५ ।

लीला के उपासक हैं तथा सखी भाव से युगल की मानसी आराधना करते है।

आपने श्रीकृष्ण लीला के व्यावहारिकी, प्रतिभासिकी, वास्तवी–तीन भेद माने जो क्रमशः श्रेष्ठ हैं। नित्य ब्रजलीला व्यावहारिकी लीला है। नित्य रासलीला, प्रतिभासिकी है एवं दिव्य ब्रह्मपुर की वास्तवी लीला को ब्रह्मानन्द मानकर ये उसकी उपासना करते थे। श्री श्यामा जू ठकुराइन "रासेश्वरी श्री राधा पर आपका अनन्य प्रेम था। श्रीकृष्ण की पराभक्ति करने का उपदेश आपने दिया है। श्री प्राणनाथजी की वाणी के अन्तर्गत "श्रीधाम की पहेली" में घाट, पुल, महल, चबूतरा, पहाडों वाले धाम का वर्णन है, योगमाया प्रकरण में रास का तत्त्व बताया है तथा "भागवत को सार" में ब्रह्मलीला, ब्रजलीला, रासलीला की उत्तरोत्तर सूक्ष्मता बतायी है।

(७) वंशीअलि के ललित सम्प्रदाय में कृष्ण :–

ललित सम्प्रदाय राधा कृष्ण भक्ति को लेकर चलने वाला एक नवीन सम्प्रदाय है। इसे वंशीअलि जी का सम्प्रदाय कहा जाता है।

इस सम्प्रदाय में राधा को विशिष्ट स्थान की अधिकारी माना जाता है। यह स्थान हरिदासी एवं हरिवंशी सम्प्रदाय से कुछ और भी विशेष है। श्री वंशीअलि की दृष्टि में श्री राधा का ही अमर नाम ब्रह्म है। वे ही परा शक्ति के रूप में सर्वत्र सूत्र की भाँति व्याप्त हैं और समस्त जड़–चेतन उन्हीं की स्वतंत्रता के आधीन है। किन्तु श्री राधा सर्वोपरि होते हुए भी भक्त– पराधीन हैं। श्रीकृष्णचन्द्र श्री राधा के अनन्य भक्त हैं अतः उनके साथ समान भाव से विहार करने के लिए ही श्री राधा ने अवतार ग्रहण किया है। श्री राधा सर्वेश्वरी है, अतः विहार में उनकी समानता और कृष्ण पत्नीत्व भक्तों के आनन्द के लिए ही है। वंशीअलि जी ने राधा को दार्शनिक आधार भी दिया है। राधा प्राधान्य के प्रभाव से महारास में राधा ही महारास की ठीक वैसी नायिका है जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण। अतः यहाँ श्रीकृष्ण की स्थिति सेवक के समान है। वंशीअलिजी ने कहा है–

"सेव्य सदा श्री राधिका सेवक नंद कुमार।
दूजे सेवक सहचरी; सेवा विपुल विहार॥"

(८) मीरां सम्प्रदाय में कृष्णः–

मीरां सम्प्रदाय की प्रवर्तक मेवाड़ की रानी मीरांबाई कही जाती हैं। इनका जन्म सन् १४९८ ई० में हुआ। कविता–काल १६ वीं शती है। आचार्य प्रवर्तित सम्प्रदायों की किसी परंपरा में उन्हें नहीं रखा जा सकता।

उन्हें बचपन से कृष्ण को पति रूप में पाने की धुन थी। किसी अन्य

को देखने की न उन्हें आवश्यक्ता थी और न अवकाश ही । कृष्ण अनन्य रूप से मीरा के प्रभु, प्रेमी तथा पति हैं । कृष्ण की बाल-लीलाओं का उन्हें ज्ञान था । कालियनाग नाथने की लीला का वर्णन भी उन्होंने अपने एक पद में किया है । किन्तु उनका कृष्ण के प्रति प्रेम माधुर्य भाव का ही था ।[१] माधुर्य भाव में ही उनकी आसक्ति थी । युवाकाल की प्रेम तथा माधुर्य से भीनी लीलाएँ ही उनके प्राण हैं, जिनमें कृष्ण से उनका सीधा सम्पर्क है । इस सम्पर्क में राधा का अस्तित्त्व नहीं है । यहाँ तो मीरा ही राधा है । एक-दो स्थलों पर जहाँ राधा का नाम उन्होंने लिया है वहाँ भी कदाचित उनका तात्पर्य अपने से ही है । मीरा के हृदय में कृष्ण की साँवली मूर्ति बसी हुई है । मोर मुकुट, पीताम्बर और गले में वैजयन्ती माला धारण करके मुरली बजा बजा कर वृन्दावन में जो गउएँ चराता है वही कृष्ण उनका प्रियतम है । राधा बन कर मीरा उनके साथ लगी फिरती है । मीरा की भक्ति-भावना में कृष्ण अपना ऐतिहासिक, पौराणिक तथा पारलौकिक अस्तित्त्व समाप्त कर प्रेम की परिपूर्णता और रस-निष्ठा के प्रतीक बनकर रह गये है ।

(ब) उत्तर मध्ययुगीन, (रीतिकाल) हिन्दी साहित्य में कृष्ण :-

इस काल में दास्य, सख्य तथा वात्सल्य भाव की भक्ति की अपेक्षा माधुर्य भाव ने कृष्ण के स्वरूप को अधिक प्रभावित किया । मध्ययुग के सभी सम्प्रदाय, माधुर्य-भक्ति को प्रधानता देते थे । चैतन्य तथा वल्लभ सम्प्रदाय का गोपीभाव तथा हरिदास, राधावल्लभ , निम्बार्क सम्प्रदाय का सखी भाव माधुर्य के ही दो रूप हैं । विविधताओं के होते हुए भी उन सब में माधुर्य भाव की एकता दृष्टिगत होती है । भक्ति के विभोर-भाव ने श्रृंगार रस को भी "उज्ज्वल रस" बना दिया था किन्तु कालान्तर में स्थूल रस स्थूलता को प्राप्त होकर पुनः श्रृंगार के रूप में परिणित हो गया । श्रृंगार रस के प्रभाव से कृष्ण का रूप इस काल में परिवर्तित हो गया । कृष्ण के प्रति आस्था कम हो गई तथा उनका वर्णन यदि किया भी गया तो विलासिता के वातावरण के बीच उन्हें स्थान दिया गया । यहाँ तक कि कृष्ण अपना समस्त रूप भूल कर मात्र श्रृंगार के नायक शेष रह गए ।

(स) रीतिबद्ध कवियों के साहित्य में कृष्ण का स्वरूप :-

रीतिबद्ध कवियों में कृष्ण को श्रृंगार का नायक माना गया है । राधा के पैरों को पलोटने वाले राधावल्लभ कृष्ण रीतिकाल के कवियों को प्रिय

१- *भुवनेश्वर नाथ मिश्र : "माधव" -मीरां की प्रेम साधना-पृ० २६ ।*

हैं । बिहारी ने कृष्ण को राधा के पैर पलोटने वाले कहकर चित्रित किया है । रसखान ने "देव्यो दुरयो वह कुंज कुटिर में बेठो पलोटन राधिका पायन" कहकर कृष्ण का राधा के प्रति अतिशय प्रेमभाव प्रदर्शित किया है तो बिहारी ने मान करने पर कृष्ण का उनके चरणों पर लोटने का संकेत किया है ।

रीतिकाल में कृष्ण का रसिक अथवा रसात्मक रूप ही अधिक चित्रित हुआ है । नायक के विविध रूपों की चर्चा कृष्ण के श्रृंगार प्रसंग में हुई है । यद्यपि कृष्ण के बाल रूप की चर्चा भी रीतिकाल के कवियों ने यदाकदा की है, किन्तु विषय का मुख्य स्वर श्रृंगार ही है । रीतिकालीन कवियों का कृष्ण विनयी, क्षमावान, करुण, सत्यवान, नवयौवन सम्पन्न एवं परिहास विशारद है । कृष्ण का व्यक्तित्व माधुर्य से मुक्त है ।

जहाँ भक्त कवियों ने श्रीकृष्ण के श्रृंगार चित्रण पर बहुत अधिक बल दिया है और क्षण-क्षण उनकी नयनाभिराम झाँकी की चर्चा की है वहाँ रीतिबद्ध कवियों ने कृष्ण के श्रृंगार से एक प्रकार से दृष्टि हटा ली है तथा नारी सौन्दर्य के चित्रण में अपनी संपूर्ण काव्य-प्रतिभा का अपव्यय कर ड़ाला है । भगवान श्रीकृष्ण के कमनीय रूप को कामुक रूप चित्रित करते हुए इन कवियों ने विलासप्रियता का परिचय दिया है ।

(ड) रीतिमुक्त कवियों के साहित्य में कृष्ण का स्वरूप :-

जिस स्वच्छन्द प्रेमधारा का प्रवर्तन रसखान ने किया, वह हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल तक चली । रसखान तथा आलम भक्तिकाल के अंतिम चरण के कवि हैं । अतः वे रीतिकाल की परिधि में नहीं आते । रीतिकाल की परिधिमें आने वाले ये स्वच्छन्द काव्यधारा वाले कवि घनानन्द, बोधा, और ठाकुर हैं । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने इन्हें रीतिमुक्त कवि कहा है ।[१]

वस्तुतः ये कवि अपनी स्वच्छन्दता के लिए किसी परंपरा में नहीं आते । इसीलिए इनकी चर्चा पृथक रूप से की जा रही है ।

रसखान ने कृष्ण को प्रभु नहीं किन्तु अपना प्रिय माना । किन्तु उन्होंने परब्रह्म का स्वरूप भुलाया नहीं । उनके कृष्ण गोधन चरानेवाले तथा वेणु बजाने वाले होते हुए भी शेष, गनेश, महेश, दिनेश और सुरेश के द्वारा गेय हैं । रसखान के कृष्ण मानव अधिक है, अलौकिक कम । परम ज्योति ही सीधी कृष्ण रूप में अवतरित हुई । उसकी अनुभूति और उसके कार्य सब मानवीय है । इसीलिए नन्दनन्दन ब्रजराज कृष्ण अवतारी हैं ।

१- *हिन्दी साहित्यः पृ० ३४१*

कवि आलम की प्रेमानुभूति भी व्यक्तिगत है । इनके कृष्ण भी रस नायक तथा रसात्मक हैं । कृष्ण गोपीवल्लभ हैं और अनुकूल नायक भी । आलम में कृष्ण का भक्त-कल्याणकारी रूप भी प्रस्तुत किया है ।

घनानन्द के कृष्ण शान्त भक्ति के आराध्य कृष्ण हैं । कृष्ण के चरण परम सुख की सीमा और दुःख को दूर करने वाले हैं । वे प्यास को दूर करने वाले रस-निवास आनन्द के घन हैं ।

घनानन्द जी मुख्य रूप से मधुरा भक्ति तथा स्वच्छन्द प्रेम के कवि हैं । घनानन्द के कृष्ण राधा के पति हैं और राधा पत्नी । उन्होंने कृष्ण को "दुल्हा" तथा "बना" बनाया है और राधा को "बनी" या "दुलहिन" । अतः कृष्ण राधा के स्वकीय पति हैं किन्तु राधा-कृष्ण के परस्पर प्रेम में परकीया की सी उन्मद भाव-धारा बहती है । यह घनानन्द का अपना भाव है । राधा महाभाव की आश्रय हैं तथा श्रीकृष्ण उसके आलंबन । घनानन्द के कृष्ण प्रेम-स्वरूप हैं । राधा और कृष्ण का प्रेम मानवीय उच्च स्तर का है । वे प्रेम के अपार सागर में एकरस होकर सदा निमग्न रहा करते हैं । उनमें सूर और मीरा की सी तन्मयता, तुलसी की सी उदारता, विद्यापति का सा पद-लालित्य तथा बिहारी का सा अर्थ गौरव है । वे प्रेममार्ग के धीर पथिक थे तथा उनके कृष्ण प्रेम-स्वरूप ।

कवि बोधा ने कृष्ण को साक्षात् प्रेम-स्वरूप माना है । कृष्ण प्रेम-स्वरूप हैं इसीलिए बोधा के प्रिय हैं, जो प्रिय हैं वे ही भगवान हैं, अतः श्रीकृष्ण भगवान हैं । तात्पर्य यह कि बोधा के कृष्ण पूर्ण रसात्मक हैं और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं ।

इसी परम्परा में ठाकुर भी रीतिमुक्त कवि है । उन्होंने कृष्ण की मधुर लीलाओं का, उनके रूप-सौन्दर्य का सीधा सादा वर्णन किया है । उनके अपने ऐश्वर्य में भगवान और प्रेम में मानव है ।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में वैष्णव धर्म परम्परा से संबंधित विविध सम्प्रदायों एवं रीतिकालीन कृष्ण के स्वरूप-विकास का अनुशीलन प्रस्तुत करने के पश्चात् अब हम उसी युग-विशेष में जैन कृष्ण-साहित्य में उनके स्वस्थ विकास का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे है ।

जैन लेखकों ने मध्यकाल में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश भाषा में ही नहीं, हिन्दी भाषा में भी विपुल कृष्ण साहित्य की रचना की । इस भाषा के लेखक श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा के साहित्यकार रहे हैं । ज्यादातर लेखकों ने अपनी रचना का आधार आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराण व गुणभद्र कृत उत्तर पुराण को ही बनाया है । इन कृतियों में कुछ

विशालकाय कृतियाँ हैं[१] जैसे खुशालचन्द काला कृत हरिवंश पुराण, शालिवाहन कृत हरिवंश पुराण,महासेनाचार्य कृत प्रद्युम्न चरित्र, नेमिचन्द कृत हरिवंशपुराण, बुलाकीदास कृत पाण्डव पुराण इत्यादि । इसके विपरीत कुछ लघु कृतियाँ हैं जो रास, चौपाई, फागु, वेलि आदि के रूप में लिखी गई हैं । ये कृतियाँ नेमिनाथ, प्रद्युम्न, बलराम, पाण्डव इत्यादि से संबंधित हैं । हिन्दी का उत्कर्ष-रूप इस काल के प्रारम्भ में बनने लगता है जो इसके अन्त में आधुनिक रूप में परिवर्तित हुआ है । इस काल के हिन्दी जैन विद्वानों में "यशोधर चरित्र" के कर्ता गौरवदास और प्रसिद्ध "कृष्ण चरित्र" तथा "नेमीश्वर की वेलि" के कर्ता कवि ठाकुरसी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । जैन पुराण-साहित्य केवल पौराणिक कथाओं का ही संकलन नहीं है; किन्तु काव्य की दृष्टि से भी उत्तम रचनाएँ हैं । जैन विद्वानों ने हिन्दी पद्य में ही पुराणों की रचनाएँ नहीं कीं, किन्तु हिन्दी गद्य भाषा में भी इन पुराणों को लिखा है और हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में पर्याप्त योग दिया है । इस काल में हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण-स्वरूप से संबंधित दो प्रमुख रचनाएँ लिखी गईं - शालिवाहन कृत हरिवंश पुराण तथा खुशालचन्द काला कृत हरिवंश पुराण ।[२] इन दोनों कृतियों का आधार जिनसेन कृत हरिवंश पुराण है । इन दोनों कृतियों में हरिवंश की उत्पत्ति व कृष्ण के जन्म[३] से लेकर अन्त तक की सभी घटनाओं का कवि ने अपने तरीके से वर्णन किया है । इन्होंने कृष्ण के अलौकिक स्वरूप का वर्णन किया है ।

इन रचनाओं में कृष्ण के जीवन से संबंधित घटनाओं का वर्णन कुछ स्थानों पर परिवर्तन के साथ किया गया है । जैसे-कृष्ण गोकुल से जाने के पश्चात् पुनः यशोदा को लेने मथुरा से गोकुल जाने का वर्णन,[३] बाल स्वरूप का वर्णन[४] भी हिन्दी हरिवंश पुराण में बहुत संक्षिप्त किया है । पुतना-वध का वर्णन इसमें नहीं है । इसी प्रकार हिन्दी हरिवंश पुराण में नारदजी कृष्ण के वैभव का वर्णन जरासंध को करते है, जबकि जिनसेन ने अपने हरिवंश

१- *उक्त कृतियों का विस्तृत परिचय तृतीय अध्याय में दिया गया है ।*

२- *भाद्रौ बदि आवे दिन सार ।। जानिसि उपनुं कृष्ण कुमार ।।*
संखरु चक्र पदम लछि परे ।। सुजनां कै तौ सुख अवतरे ।।
-खुशालचन्द काला कृत हरिवंश पुराण

३- *वही, पृ० ८१ ।*

४- *नील वरण अति सो मैवाल । कोमल मन मोहन सुकुमाल ।*
लखि सुकुमार सुषी अति भई । तब देवकि मन साता लई ।।
दोहा १२५, पन्ना ७६ । --खुशालचन्द काला कृत हरिवंश पुराण

पुराण में यही वर्णन व्यापारियों द्वारा कराया है । इन पुराणों के अनुसार जरासंध का युद्ध ही महाभारत का युद्ध था ।

मध्यकालीन साहित्य में कृष्ण का जो स्वरूप हमारे सामने आता है वह है उनका बाल–गोपाल रूप । यह उनके परम्परागत व्यक्तित्व से कुछ भिन्न है। कृष्ण के इस स्वरूप पर वैष्णव परम्परा तथा संस्कृत हरिवंश पुराण का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । इन दोनों का प्रभाव हिन्दी जैन काव्य कृतियों पर द्रष्टव्य है । इन कृतियों में नटखट ग्वाल–बालक के रूप में कानों में कुण्डल पहनने, पीताम्बर धारण करने, मुकुट लगाने, बांसुरी बजाने आदि का तथ्यात्मक वर्णन हुआ है । हिन्दी जैन साहित्य में कहीं भी कृष्ण व गोपियों की रासलीला व राधा का वर्णन नहीं है ।

कृष्ण का द्वितीय स्वरूप अर्द्धचक्रवर्ती राजा के रूप में, एक महान वीर अद्वितीय पराक्रमी तथा शक्ति–सामर्थ्य से परिपूर्ण शलाका पुरुष थे ।

कृष्ण का तृतीय स्वरूप एक धर्मनिष्ठ आदर्श राजपुरुष के रूप में वर्णित है, जिनका अरिहन्त अरिष्टनेमि एवं उनके धार्मिक सिद्धातों के प्रति श्रद्धाभाव है ।

(ग) आधुनिक हिन्दी साहित्य में कृष्ण का स्वरूप और जैन साहित्य में निरुपित कृष्ण से उसकी तुलना :–

आधुनिक काल के हिन्दी कवियों ने जहाँ कृष्ण के परम्परागत स्वरूप वर्णन को अपनी कृतियों का आधार बनाया है वहीं नए युग–बोध के अनुरूप कृष्ण के महामानवत्व के स्वरूप को भी प्रस्तुत किया है । आधुनिक साहित्य में कृष्ण का रूप भी परिवर्तित होकर एक नए रूप में हमारे सामने आता है । बुद्धिवाद, आदर्शवाद, जनवाद, मानववाद, राष्ट्रवाद तथा क्रान्तिवाद इस युग की प्रधान प्रवृत्तियाँ थी । उनके प्रकाश में कृष्ण को एक नवीन रूप में देखा गया ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र नई धारा के कवि थे । "उनकी अधिकांश कविता कृष्ण–भक्त कवियों के अनुकरण पर गेय पदों के रूप में है, जिनमें राधाकृष्ण की प्रेमलीला और विहार का वर्णन है ।[१] उनके पदों में दो प्रकार के पद विशेष हैं – विनय संबंधी तथा प्रेम संबंधी । विनय के पदों में विष्णु और कृष्ण की अभिन्नता स्थापित करके कवि उनसे 'महापतित' को तार देने की प्रार्थना करता है । प्रेम संबंधी पदों में राधा–कृष्ण का प्रेम व्यंजित हुआ है । कवि स्वयं भी राधा–कृष्ण की प्रेम–मदिरा के आनन्द से

१– *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास – पृ. ५९१ ।*

छकना चाहता है । कृष्ण और गोपियों की रासलीला पर देव–देवियाँ तथा शिव–ब्रह्मा भी मोहित हो जाते है । भारतेन्दुजीने "दानलीला" "रानीछद्मलीला" "मानलीला" तथा "फूल–बुझौअल" – आदि स्फुट प्रबन्ध लिखे हैं तथा उनके अन्त में राधा–कृष्ण के विलास की दिव्यता का प्रतिपादन किया है ।

"प्रेम माधुरी" में कृष्ण के रूप तथा मुद्राओं का वर्णन किया गया है । "प्रेम–तरंग" में कृष्ण शठ नायक के रूप में प्रकट होते हैं । "प्रेम–मालिका" में कृष्ण के परकीया–प्रेम के अन्तर्गत उनकी विदग्धता, धृष्टता और लंपटता की अभिव्यक्ति हुई है । "फूलों का गुच्छा" नामक काव्य में राधा–कृष्ण के माधुर्य–भाव की अभिव्यक्ति उर्दू–फारसी की प्रेम–वर्णन शैली पर हुई है ।

ब्रज भाषा के दूसरे आधुनिक कवि श्री जगन्नाथदास "रत्नाकर" हैं । "रत्नाकर" की कविता में कृष्ण का राधा–वल्लभ तथा गोपी–वल्लभ रूप खूब उभरा है । "उद्धव शतक" में राधाविषयक आसक्ति की गहनता का अत्यन्त मार्मिक चित्रण हुआ है । यमुना में स्नान करते हुए कृष्ण का उसकी जल धार में बहते हुए मुरझाए हुए कमल को देखकर राधा का स्मरण, मूर्छित होना, सचेत होने पर उद्धव के कंधे का सहारा लेकर डगमग चलना, चित्त की बेचैनी के कारण नेत्रों को न खोलना उनके राधा–प्रेम का परिचायक है । गोपी–प्रेम उद्धव के सन्दर्भ में प्रकट हुआ है ।

सत्यनारायण "कविरत्न" बीसवीं शती के कवि हैं । भक्ति एवं राष्ट्रीयता आपके काव्य की मूल प्रेरणा है । भक्ति के क्षेत्र में वे भक्त कवियों की तरह कृष्ण के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हैं – वे दानशील, दयालु, अशरण–शरण, करुणासिन्धु तथा शरणागत–वत्सल कह गये हैं । कृष्ण का यह रूप रुढ़िगत है । कृष्ण गोपी–वल्लभ हैं ।

"प्रिय प्रवास" :–

अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" द्वारा विरचित "प्रिय प्रवास" खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य है । इसमें कृष्ण को केवल लौकिक नर रूप में ही चित्रित किया गया है । बुद्धिवाद, आदर्शवाद, जातीयता तथा राष्ट्रीयता आदि प्रवृत्तियों से प्रेरणा लेकर हरिऔधजी ने कृष्ण को एक महामानव का रूप प्रदान किया है । भागवत के गोपाल कृष्ण को नर रूप में उपस्थित करने का श्रेय हरिऔधजी को ही है । समस्त अलौकिक तत्त्वों का निराकरण करके कृष्ण को लौकिक रूप प्रदान किया गया है ।

"प्रिय प्रवास" के कृष्ण आदर्श मानव है । विभिन्न पात्रों द्वारा कृष्ण के गुणों का गान किया गया है । यशोदा उनकी अनुरंजनकारी प्रवृत्ति, सौम्यता,

शील–सौजन्य, परदुख–कातरता, सरलता, सहज–स्नेह, शीलता, सहृदयता, शिष्टता, विनम्रता, शांतिप्रियता, मृदुता आदि का बारबार स्मरण करती है। वे निस्वार्थ भाव से लोक–सेवा में निरत हैं, इसलिए "महात्मा" कहे जाते हैं। उद्धव ने भी ब्रज से आकर गोपियों के सम्मुख उनकी निष्काम वृत्ति, कर्तव्य–निष्ठा, न्याय–प्रियता, अनासक्ति तथा लोकोपकारी प्रवृत्तियों की प्रशंसा की है।[१]

बाल–सुलभ लीलाओं का भी उल्लेख "प्रिय प्रवास" में हुआ है। किन्तु उसमें कोई नवीनता नहीं है। बड़े होकर वे गोपी–वल्लभ तथा राधा–वल्लभ हो जाते हैं। कृष्ण राधा के प्रिय एवं प्रेमी दोनों रूपों में चित्रित किये गये हैं तथा उनके चारित्रिक गौरव की पूर्ण रक्षा की गई है।

"जयद्रथ वध" :–

मैथिलीशरण गुप्त ने प्रस्तुत काव्य में परंपरा से परे महाभारत के कृष्ण को लिया है। जयद्रथ–वध एक खण्ड काव्य है। इसमें गीता के उपदेष्टा कृष्ण के आदर्श को जनता के सम्मुख रखने की चेष्टा की गई है। राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये महाभारत के विस्मृत कृष्ण पर सर्व प्रथम दष्टि ड़ालने वाले श्री मैथिलीशरण गुप्तजी ही हैं।

"द्वापर" :–

"द्वापर" के कृष्ण गतानुगतिकता का विरोध करते हैं तथा युग–धर्म के अनुकूल उसका परिष्कार करने पर बल देते हैं। "द्वापर" में कृष्ण के चरित्र–निर्माण में इसी सिद्धान्त पर अधिक बल दिया गया है। राष्ट्र तथा समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल गोपाल कृष्ण की नवीन रूप में प्रतिष्ठा की गई है।

"द्वापर" में कृष्ण गीता के कृष्ण हैं। सब धर्मों को त्यागकर जो उनकी शरण में आयेगा, उसे वे सब पापों से मुक्त कर देंगे।[२] यशोदा उन्हें

१– *थोड़ी अभी यदिच है उनकी अवस्था।*
तो भी नितान्त–रत वे शुभ कर्म में हैं॥
ऐसा विलोक वर–बोध स्वभाव से ही।
होता सु–सिद्ध यह है, वह है महात्मा॥

–प्रिय प्रवास, सर्ग १२, पद ९१।

२– *कोई हो सब धर्म छोड़ तू, आ, बस मेरा शरण धरे।*
डर मत, कौन पाप वह जिससे, मेरे हाथों तू न तरे॥"

–द्वापर–श्रीकृष्ण सर्ग।

अत्यधिक स्नेह करके भी अवतारी समझती हैं ।[१] उनका "श्याम सलोना रूप" है तथा "मधु से मीठी बोली" है । कुटिल अल्कों वाले की आकृति भोली है, "मृग से नेत्र" और "अनी सी तीक्ष्ण दष्टि" है ।[२]

"द्वापर" के कृष्ण राधा-वल्लभ तथा गोपी-वल्लभ हैं । मथुरा जाने पर जब कृष्ण कुब्जा पर कृपा करते हैं तो वह राधा को ब्रजेश्वरी कहकर पुकारती है । कृष्ण राधा के प्रिय तथा प्रेमी दोनों ही हैं । गोपियों के द्वारा वर्णित मान-प्रसंग में कृष्ण के प्रेमी रूप की व्यंजना हुई है । इसमें वे अत्यन्त आसक्त एवं अधीन नायक के रूप में दिखाए गए हैं । यह रूप परंपरित है । राधा एक समर्पित भक्त के रूप में चित्रित हुई है । राधा कृष्णमयी हो जाती है और भावावेश की अवस्था में कृष्ण रूप हो जाती है । उद्धव एक मूर्ति के अर्धांग में राधा का तथा आधे में कृष्ण का दर्शन करते हैं । यह रूप परंपरित होते हुए भी नवीन रूप में चित्रित हुआ है ।

"जयभारत" :-

"जयद्रथ-वध" की तरह इस काव्य की रचना भी मैथिलीशरण गुप्त ने महाभारत के आधार पर की है । पाण्डवों के साथ कृष्ण की कथा भी "जयभारत" में यथास्थान कही गई है । द्रौपदी-चीरहरण तथा कृष्ण दूतत्व प्रसंगों में से अलौकिकता का निवारण करके मनोवैज्ञानिकता की प्रतिष्ठा की गई है । 'जयभारत' के पात्र अधिक मानवीय हैं । यह काव्य-ग्रन्थ मानवतावाद से अधिक प्रभावित है । इसी प्रवृत्ति के अनुकूल कृष्ण का अंकन करने की चेष्टा की गई है ।

"कृष्णायन" :-

"कृष्णायन" अवधी भाषा में तुलसी के "रामचरितमानस" की परम्परा पर लिखा हुआ श्रेष्ठ काव्य है । इसके कवि श्री द्वारिकाप्रसाद मिश्र हैं, जिन्होंने कृष्ण की संपूर्ण कथा को संकलित करके उसे महाकाव्य का रूप प्रदान किया है । मध्ययुगीन कवियों की कृष्ण संबंधी उक्तियाँ कहीं-कहीं भाषान्तर करके ज्यों-की त्यों उद्धृत कर दी गई हैं । आधुनिक युग में कृष्ण में

१- *जिये बाल गोपाल हमारा,*
वह कोई अवतारी ।। - द्वापर - यशोदा सर्ग ।

२- *मेरे श्याम सलाने की है*
मधु से मीठी बोली ।
कुटिल अलक वाले की आकृति,
है क्या भोली भोली ।। - द्वापर - यशोदा सर्ग ।

राष्ट्रीयता का समावेश तथा नवचेतना के प्रकाश में उनके चरित्र का परिष्कार करके उन्हें उत्तम मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया है। गुण तथा परिमाण दोनों में यह ग्रंथ श्रेष्ठ है। तथा कृष्ण का सम्यक् चरित्र सम्मुख लाता है।

"कृष्णायन" में गोपीजन–वल्लभ, भक्त–वल्लभ और असुर–संहारक कृष्ण आज के युग की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का समाधान करते हुए एक धर्म–संस्थापक, समाज–सुधारक, राष्ट्र–नायक के रूप में हमारे सामने आते हैं।[१] इस ग्रन्थ के रचयिता ने कृष्ण के परम्परागत रूपों को ग्रहण करके भी देशकाल की आवश्यकता के अनुसार उसमें संशोधन, परिमार्जन, परिष्करण तथा विकास की अवतारणा की है।

"कृष्णायन" के कृष्ण देवकी के पुत्र हैं तथा विष्णु के अवतार हैं। वे कारावास में वसुदेव–देवकी को तथा सरोवर में अक्रूर को विष्णु के रूप में दर्शन देते हैं। वे मायापति हैं। इसी की सहायता से इन्द्र के प्रकोप को प्रभावहीन बनाते हैं तथा अक्रूर की बुद्धि को भ्रम में ड़ालते हैं। उनके असुर–विनाशक कार्य अलौकिक शक्ति–सम्पन्न होने के परिचायक हैं। कवि ने उनके कृत्यों को लीला तथा उन्हें लीलापति कहा है।

बाल–रूप का वर्णन परम्परा के अनुसार हुआ है। वे थोड़ा खाते, किन्तु बहुत लिपटाते हैं। स्वयं खाकर नन्द को खिलाते तथा मिर्च लगने पर रोते हैं।[२] चन्द्र प्रस्ताव, दाऊ का खिजाना आदि सभी कथायें भक्त कवियों जैसी हैं।

कंधे पर "कमरी" और लकुटी रखे तथा वेणु बजाते हुए कृष्ण को गोचारण के लिए प्रस्थान करते दिखाया है।

गोपी–वल्लभ तथा राधा–वल्लभ रूप परंपरित हैं। गोपी–वल्लभ कृष्ण में माधुर्य के स्थान पर दास्य तथा वात्सल्य भाव का समावेश करके कृष्ण चरित्र को देश–काल की माँग के अनुरूप उज्ज्वल बना दिया है।

राधा–वल्लभ कृष्ण का चित्रण आध्यात्मिक स्तर पर हुआ है। उसके पारस्परिक अनुराग को विष्णु–लक्ष्मी के प्रेम का रूप प्रदान किया है।[३]

१– *डॉ. गोविन्दराम शर्मा : हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य : कृष्णायन, पृ. ३१८।*

२– *विहंसत पितु कछु कौर खवाये ।।*
लागि मिरिच लोचन भरि आये ।।" – कृष्णायन : अवतरण कांड, पृ. ४०

३– *जनु कछु क्षीर सिंधु सुधि आई। –*
–कृष्णायन : अवतरण काण्ड, पृ. ५४।

कृष्ण सम्बन्धी उपन्यास साहित्य में बंकिमचन्द्र उपाध्याय का "कृष्ण चरित्र" एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृति है । मूल कृति बंगला भाषा में है जिसका हिन्दी अनुवाद डॉ. ओमप्रकाश ने १९८५ में किया है । यह एक विस्तृत, व्यवस्थित एवं विचारपूर्ण कृति है । अध्ययन, मनन के फलस्वरूप बंकिमचन्द ने श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के अन्य पक्षों का अनुसंधान किया और उनके पूर्ण व्यक्तित्व की स्थापना की । पुराणों का अध्ययन करने पर वह इस नतीजे पर पहुँचे कि कृष्ण संबंधी जो पाप-कथा जनमानस में प्रचलित हो गई है, वह समस्त निर्मूल है और मनगढन्त कथाओं को बाहर निकाल देने पर कृष्ण चरित्र में जो कुछ बचता है वह अति विशुद्ध, परम पवित्र एवं अतिशय महान है । लगता है ऐसा सर्वगुण-सम्पन्न, समस्त-पापसंस्पर्शशून्य आदर्श चरित्र अन्यत्र कहीं भी नहीं है । न किसी देश के इतिहास में है, और न किसी देश के काव्य में है । उनके अनुसार वह महान बलशाली, अतिशय सुन्दर, तथा अस्त्रविद्या में पूर्ण निपुण थे । उनका ज्ञान व बुद्धि सर्वव्यापी तथा सर्वदर्शिनी थी । उन्होंने मानव-शक्ति द्वारा निज कर्म का निर्वाह किया, परन्तु उनका चरित्र अतिमानवीय है । वे एक आदर्श पुरुष थे ।

आधुनिक हिन्दी जैन कृष्ण साहित्यः-

आधुनिक काल में भी हिन्दी जैन कृष्ण साहित्य की रचना की गई है । मरुधरीय कविवर्य चौथमलजी ने भी कृष्णलीला का निर्माण किया है । नेमिचन्द्रजी ने नेमिनाथ और राजुल की रचना की । आचार्य खूबचन्दजी ने प्रद्युम्न और शाम्बकुमार पर लिखा । जैन दिवाकर चौथमलजी म. ने "भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण" तथा मरुधर केशरी मिश्रीमलजी का "महाभारत", काशीनाथजी का "नेमिनाथ चरित्र" तथा देवेन्द्र मुनि का "भगवान अरिष्टनेमि" और कर्मयोगी श्रीकृष्ण आदि सुन्दर रचनाएँ है ।

रचनाओं के अलावा भी श्रीकृष्ण से संबंधित कुछ शोध-पत्र भी हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुए हैं जिनमें प्रमुख श्री सुखालालजी का - "चार तीर्थंकर" श्री अगरचन्दजी नाहटा ने "प्राचीन जैन ग्रंथों में श्रीकृष्ण" श्रीचन्दजी रामपुरीया ने "अर्हन्त अरिष्टनेमि और वासुदेव श्रीकृष्ण" महावीर कोटीया ने जिनवाणी पत्रिका व मुनि हजारीमलजी स्मृति-ग्रन्थ में "जैन साहित्य में श्रीकृष्ण" लेख लिखकर प्रकाश डाला है । प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापडिया ने "वासुदेव श्रीकृष्ण और जैन साहित्य" में अच्छा संकलन किया है ।

इन सभी कृतियों में श्रीकृष्ण से संबंधित एक बात जो सामान्य तौर पर दृष्टिगोचर होती है वह यह है कि जैन साहित्य समयानुसारी नहीं, वरन्

शाश्वत धर्मानुसारी ही अधिकतर रहता है । सभी कृतियों में कृष्ण के परम्परागत वीर श्रेष्ठ पुरुष का व्यक्तित्व ही चित्रित किया गया है । जैन विचारक मुनि चौथमलजी अपने काव्य ग्रन्थ "भगवान नेमनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण" में इस तथ्य को निम्न शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं –

"जरासंध और श्रीकृष्ण में भारी युद्ध मचा ।
शूरवीर भी दहल गए हैं, विद्याधर कंपाया ।।

* * *

फिर तो जरासंध ने झुँझलाकर चक्र रत्न चलाया ।
यादव सुभट देख उस ताई, तुरत मुख कुम्हलाया ।।

* * *

श्रीकृष्ण ने उस चक्र को, ग्रहण किया कर मांही ।
सबके जी में जी आया, फिर सभी रहे हुलसाई ।।
देवगण कहें भरत क्षेत्र में, प्रगटे वासुदेव ।
गंधोदक और पुष्प वर्षाकर, कीनी देव ने सेव ।।"[१]

एक श्रेष्ठ राजा के राज्य में सब प्रकार से सुख और समृद्धि का प्रजाजन अनुभव करते है । अपने "पाण्डव–यशोरसायन" महाकाव्य में मरुधर केशरी मुनि श्री मिश्रीमल्लजी ने इन भावों को प्रकट करते हुए एक सुन्दर सवैया लिखा है, जो इस प्रकार है –

"सब देश किसे सुख संपति है अरु नेह बढ़ै नित को सब में,
वित, वाहक, साजन धर्म धुरी कुल जाति दिपावत है सब में,
नहि झूठ लवार जु लाघत जोवत में व्यसनी शुभ भावन में,
मधुसूदन राज में सर्व सुखी इत–कित रु भीत लखी तब में ।।"[२]

हिन्दी जैन कृष्ण–स्वरूप संबंधित अधिकतर कृतियों में कृष्ण के जीवन की घटनाओं का वर्णन लगभग समान रूप से हुआ है । अधिकांश कृतियों के रचनाकारों ने अपनी कृति का आधार आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराण को ही बनाया है । आचार्य जिनसेन से पहले जैन साहित्य में श्रीकृष्णकी महत्ता दो स्वरूपों में ही प्रस्तुत की हुई मिलती है – एक शलाकापुरुष के रूप में तथा दूसरे आध्यात्मिक पुरुष के रूप में । आचार्च जिनसेन ने सर्वप्रथम शायद वैष्णवों के पौराणिक साहित्य से प्रभावित होकर

१– *चौथमल : भगवान नेमनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण, पद सं. २४३, २४५,*

२– *मिश्रीलाल : पाण्डव यशोरसायन– पृ. २८५ । (२४८ व २४९)*

श्रीकृष्ण के बालगोपाल स्वरूप का वर्णन किया है । बाद में इस रचना को आधार बनाकर जो हिन्दी जैन हरिवंश पुराण लिखे गए उनमें कृष्ण के बालगोपाल स्वरूप का वर्णन है । हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के बालगोपाल स्वरूप का ज्यादा रोचक वर्णन नहीं है जबकि वैष्णव साहित्य इससे ओतप्रोत है ।

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में नटखट ग्वालबाल के रूप में, कानों में कुण्डल पहनने, पीताम्बर धारण करने, मुकुट लगाने, बाँसुरी बजाने आदि का तथ्यात्मक वर्णन हुआ है । कृष्ण के माखन खाने तथा गोप-गोपियों के साथ घूमने फिरने का भी वर्णन हुआ है । यह वर्णन हिन्दी जैन साहित्य में संक्षिप्त है तथा सामान्य है । कृष्ण का रूप गोकुल की ग्वालनियों के लिए जादुई आकर्षण है । हिन्दी जैन कवि मुनि मिश्रीमलजी ने अपनी कृति "पाण्डव यशोरसायन" में इसका मनोहारी वर्णन किया है । उदाहरण के रूप में –

"दहीड़ो ड़ाले दूध में, मांखण जल मांही रे ।
जल राले कभी छाछ में, मूं राख भराई रे ।।
कौतुक दूध का कर रह्या, खेले अपने दावे रे ।
अधर बजावै बाँसूरी सब ही हँस जावे रे ।।
पुरस्यो रे खावै नहीं, माता नजर चुरावे रे ।
छाने कोठा में घुसी, माखन गटकावे रे ।।"[१]

* * *

"मुकुट धर मोरनी, मुझ पर हेर लीनो रे ।
कामणारी कान्हड़ौ, मो पै जादु कीनो रे ।।
टुम टुम चाल सुहावनी, अणियाली आँखड़त्या रे ।
घुघरवाला केश है, जुल्फा बाकडत्या रे ।।"[२]

उपसंहार

जैन परम्परागत कृष्ण कथा, जैन साहित्यकारों, टीकाकारों तथा जैन मुनियों द्वारा प्रणीत कृष्ण विषयक संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी जैन साहित्य तथा उसमें वर्णित कृष्ण के विविध स्वरूपों का हमने पिछले अध्यायों में अध्ययन किया है । "उपसंहार" में यह देखना उचित होगा कि

१– *पाण्डव यशोरसायन : मुनि श्री मिश्रीमल्ल, पृ. १७७/४७ ।*

२– *वही, पृ. १७७ ।*

जितने जैन साहित्य का हमने अध्ययन किया, उतने से कृष्ण चरित्र का कथा- स्वरूप प्रतिपन्न होता है ?

वैदिक साहित्य से अपभ्रंश साहित्य तक कृष्ण के स्वरूप का वर्णन भिन्न-भिन्न विद्वानों तथा कवियों ने किया है । इस परिचय से हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के स्वरूप-विकास की पृष्ठभूमि स्पष्ट हो जाती है और हम देखते हैं कि भारतीय संस्कृति की जैन, बौद्ध और वैदिक - इन तीनों धाराओं ने कर्मयोगी श्रीकृष्ण के जीवन को विस्तार और संक्षेप में युगानुकूल भाषा में चित्रित किया है । जहाँ वैष्णव धर्म के अनुसार कृष्ण को विष्णु का पूर्ण अवतार मान कर श्रद्धा और भक्ति से कृष्ण का स्तवन किया है, वहाँ जैन परम्परा ने भावी तीर्थंकर और श्लाघनीय पुरुष मानकर उनका गुणानुवाद किया है तथा बौद्ध परम्परा ने भी उन्हें बुद्ध का अवतार मानकर उनकी उपासना की है । वैदिक साहित्य से लेकर अपभ्रंश साहित्य तक सभी विद्वानों ने कृष्ण को पराक्रमी, महावीर तथा एक महापुरुष माना है । वे लोक-रक्षक, धर्म व नीति के संस्थापक और आदर्श पुरुष हैं ।

जहाँ तक कृष्ण सम्बन्धी जैन साहित्य का प्रश्न है, यह मुख्यतः प्रबन्धबद्ध है तथा बड़े परिमाण में उपलब्ध है । एक ओर जहाँ जैनेतर हिन्दी साहित्य की लम्बी कालावधि में कृष्ण सम्बन्धी अधिकांश साहित्य मुक्तक रूप में लिखा गया, वहाँ जैन साहित्य की परम्परा में प्रारम्भ से ही कृष्ण चरित प्रबन्ध काव्य का विषय रहा । इन प्रबन्ध काव्यों में कृष्ण की वीरता, पराक्रम तथा द्वारकाधीश रूप में उनका वासुदेव राजा का रूप ही मुख्य वर्ण्य-विषय रहा है । जबकि हिन्दी के मुक्तक साहित्य में कृष्ण के कालान्तर में विकसित गोकुल-प्रवास की कथा व उनका गोपाल, गोपीजन-प्रिय रूप ही वर्णन का मुख्य आधार रहा । इस प्रकार हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण के अपेक्षाकृत प्राचीन व ऐतिहासिक स्वरूप का वर्णन हुआ है । हिन्दी के पूर्व के भाषा रूप-अपभ्रंश तथा आदिकालिक हिन्दी में कृष्ण-सम्बन्धी रचनाएँ प्रमुखतः जैन-साहित्यकारों की ही उपलब्ध हैं । इनमें स्वयंभू, पुष्पदंत जैसे अपभ्रंश-काव्य के अद्वितिय महाकवियों की विशालकाय पौराणिक रचनाएँ हैं तो आदिकालिक हिन्दी में रचित फागु, रास, बेलिशीर्षक अविवादास्पद रचनाओं में से अनेक जैन-साहित्यकारों की कृष्ण-चरित विषयक रचनाएँ हैं । ये सभी रचनाएँ तत्कालीन भाषा-रूप तथा काव्य-रूप के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती हैं ।

जैन कवि मुख्यतः परम्परावादी हैं । इस कारण कृष्ण चरित के अति प्राचीन ऐतिहासिक स्वरूप को अक्षुण्ण रखने में वे सफल रहे हैं ।

बाल्यावस्था से ही कृष्ण शारीरिक बल में आदर्श थे । उनके सहज बल के प्रभाव से वृन्दावन हिंस्र प्राणियों से सुरक्षित बन गया था । उसी बल के कारण पूतना, कालियनाग, चम्पक, कंस के मल्ल व स्वयं कंस आदि मारे गए थे । बल का परिमार्जित रूप शस्त्र विद्या में दिखलाई पड़ता है जिसके कारण उस समय का क्षत्रिय समाज उनको सर्वप्रधान शस्त्रविद मानता था । कोई भी योद्धा उनको कभी भी पराजित नहीं कर पाया । कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि योद्धागण एवं काशी, कलिंग, पौन्ड्रक, गान्धार, प्रभृति बहुतेरे राजाओं के साथ उनका युद्ध हुआ जिसमें उन्होंने सबको पराजित किया ।

श्रीकृष्ण के वीर पुरुष के ऐतिहासिक व्यक्तित्व ने कालान्तर में देवत्व का स्वरूप धारण कर लिया और अवतारवाद के विकास क्रम में कृष्ण विष्णु के अवतार रूप में प्रतिष्ठित हुए । उनकी पूजा-अर्चनाने एक सम्प्रदाय का रूप धारण किया, जो वासुदेव मत, भागवत सम्प्रदाय अथवा वैष्णव मत आदि नामों से जाना गया । कृष्ण इस सम्प्रदाय में स्वयं भगवान वासुदेव रूप में पूज्य हुए । महाभारत में कृष्ण का स्वरूप चित्रण इस धारणा के अनुरूप है ।

जैन कथा के नायक कृष्ण भी वासुदेव हैं । वे अमित वैभव व शक्ति से सम्पन्न द्वारका के राजा हैं । जैन परम्परा में कृष्ण की "वासुदेव" संज्ञा बिरुद सूचक है, ठीक वैसे ही जैसे चक्रवर्ती, विक्रमादित्य आदि ऐतिहासिक बिरुद रहे हैं । जैन-परम्परानुसार वासुदेव राजा अर्द्धचक्रवर्ती राजा माना गया है । जैन-साहित्य में ऐसे नौ वासुदेव राजाओं का वर्णन हुआ है जिनमें द्वारकाधीश कृष्ण अंतिम वासुदेव कहे गए हैं ।

पुराणों के अध्ययन से यह नतीजा निकलता है कि कृष्ण संबंधित जो समस्त पाप-कथा जन समाज में प्रचलित हो गई है वह समस्त ही निर्मूल है और मनगढ़न्त कथाओं को बाहर निकाल देने पर कृष्ण चरित्र में जो कुछ शेष बचता है वह अति विशुद्ध, परम पवित्र एवं महान है । श्रीकृष्ण जैसा सर्वगुण-सम्पन्न, सर्वपाप-संस्पर्शशून्य आदर्श व्यक्तित्व अन्यत्र कहीं भी नहीं है - न किसी देश के इतिहास में है और न किसी देश के काव्य में है ।

जैनागमों में कृष्ण के गोकुल-प्रवास की कथा तथा कृष्ण के बाल-गोपाल स्वरूप का वर्णन नहीं है । आचार्य जिनसेन से पहले जैन साहित्य में श्रीकृष्ण की महत्ता दो स्वरूपों में ही प्रस्तुत हुई मिलती है - एक शलाकापुरुष के रूप में और दूसरे आध्यात्मिक पुरुष के रूप में । आचार्य जिनसेन ने सर्वप्रथम शायद वैष्णव परम्परा तथा "हरिवंश पुराण" से

प्रभावित होकर श्रीकृष्ण के बाल-गोपाल स्वरूप का वर्णन अपने "हरिवंश पुराण" में किया। जिसको आधार मानकर बाद में उसी प्रकार का वर्णन शालिवाहन व खुशालचन्द काला ने अपने हिन्दी भाषा में रचित "हरिवंश पुराण" में किया। जैन साहित्य पर भागवत पुराण में वर्णित कृष्ण के बाल गोपाल स्वरूप का जो वर्णन है, उसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई नहीं देता।

द्वितीय कृष्ण एक अद्वितीय वीर पुरुष थे। एक चक्रवर्ती राजा के रूप में महानवीर, अद्वितीय पराक्रमी तथा शक्ति-सामर्थ्य से परिपूर्ण शलाका-पुरुष थे। अपनी बुद्धि-कौशल के बल पर कृष्ण आधे भरतक्षेत्र के अधिपति, अभिषिक्त हुए और उन्हें वासुदेव के रूप में मान्यता मिली। कृष्ण के समय में भारत वर्ष में सर्वत्र अनीति का साम्राज्य फैला हुआ था। ऐसी परिस्थितियों में रिपुमर्दक श्रीकृष्ण कार्य-क्षेत्र में कूदते हैं और अपने अनुपम साहस, असाधारण विक्रम, विलक्षण बुद्धि-कौशल एवं अतुल राजनीतिक पटुता के बल पर आसुरी शक्तियों का दमन करते हैं। ऐसे युद्धों में विजयश्री वरमाला उनके गले में पहनाती है।

जैन ग्रन्थों में कृष्ण का जो तृतीय स्वरूप हमारे सामने आता है वह है धर्मनिष्ठ आदर्श राजपुरुष का रूप। कृष्ण की यह धार्मिक-निष्ठा तीर्थंकर अरिष्टनेमि के सन्दर्भ में वर्णित हुई है। जैन परम्परानुसार कृष्ण तीर्थंकर अरिष्टनेमि के समकालीन ही नहीं, उनके चचेरे भाई भी हैं। वे उनकी धर्म सभाओं में उपस्थित रहने वाले तथा उनके धर्मोपदेश सुननेवाले राजपुरुष के रूप में वर्णित हैं। द्वारकाधीश श्रीकृष्ण का तीर्थंकर अरिष्टनेमि की धर्मसभाओं में उपस्थित होना, तथा उनसे धार्मिक चर्चा करना, शंका-समाधान करना बहुत ही स्वाभाविक रूप में हिन्दी जैन साहित्य में वर्णित है।

कृष्ण आदर्श धार्मिक व्यक्ति थे। उनकी धार्मिक निष्ठा के अनेक ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि उनका धर्म एवं सत्य अविचलित था। कृष्ण हिंसापूर्ण वैदिक यज्ञों के विरोधी थे और उसके स्थान पर आत्म-यज्ञों की विचारधारा को उन्होंने पोषित किया। इस विचारधारा के अनुसार तप, त्याग, हृदय की तरलता, सत्य वचन तथा अहिंसा के आचरण के द्वारा आत्मशुद्धि का मार्ग ही धर्म माना गया। बलदृप्त लोगों की अपेक्षा अधिक बलवान होते हुए भी उन्होंने लोकहित सोचकर सदैव शान्ति के लिए प्रयत्न किया। जो कार्य युद्ध के बिना सम्पन्न हो सकता हो, उसके लिए कृष्ण ने कभी भी युद्ध नहीं होने दिया।

कंस का वध करके कृष्ण ने कंस के पिता उग्रसेन को ही राजा बनाया।

हमारे देश की यह रीति–नीति है कि जो राजा का वध करता है, वही उसकी गद्दी पर बैठता है । कृष्ण भी ऐसा कर सकते थे, परन्तु उन्होंने वैसा नहीं किया । धर्मानुसार वह राज्य उग्रसेन का ही था । कंस उनको राज्यच्युत करके स्वयं सिंहासन पर जम गया था । कृष्ण जन्म से ही धर्मात्मा थे । वे स्वभावतः धर्मपालन में निरत थे । अतः जिसका राज्य था, उसको देकर उन्होंने धर्म का निर्वाह किया । कृष्ण परहित साधन को सबसे बड़ा धर्म मानते थे । उन्होंने कंस का वध भी धर्म हित में ही किया था – यादव जाति का हित साधने के लिए अत्याचारी कंस का वध किया था । कंस–वध का प्रमाण हमें इतिहास में मिलता है । इसी प्रसंग से हमें विदित होता है कि कृष्ण अत्यन्त बलशाली, परम कार्यदक्ष, परम धर्मात्मा, पर–हित–निरत एवम् परम करुणाकर थे ।

कृष्ण का धर्मप्रचार – कार्यप्रधान था न कि उपदेशप्रधान । शिशुपाल जब तक कृष्ण के प्रति अत्याचार करता रहा, वे सहते रहे । परन्तु जब शिशुपाल पाण्डव यज्ञ का ध्वंस करने और धर्म–राज्य स्थापना में विघ्न डालने पर तत्पर हो गया तो कृष्ण ने उसका वध कर दिया । क्षमा और दण्ड दोनों में कृष्ण आदर्श पुरुष थे ।

जैन दृष्टि से कृष्ण भविष्य में होनेवाले आगामी चौबीस तीर्थंकरो में ग्यारहवें नम्बर के अमम नामक तीर्थंकर होंगे । यह बात तो उनकी आत्मा को भविष्य की महत्ता के हिसाब से जैन शैली से रखने में आई है । किन्तु यही आत्मा श्रीकृष्ण स्वरूप में भी जैन दृष्टि से एक बहुत उच्च कोटि की आत्मा स्वीकारने में आई है ।

कोई व्यक्ति यदि चतुर राजनीतिज्ञ हो और धर्मात्मा भी हो तब उस व्यक्ति का स्वरूप कैसा होगा ? यह बात जानने के लिए श्रीकृष्ण का हिन्दी जैन साहित्य में वर्णित स्वरूप एक उत्तम उदाहरण है । भागवत तथा महाभारत के कृष्ण की तुलना में जैन साहित्य में वर्णित कृष्ण का स्वरूप ज्यादा न्यायपूर्ण तथा तर्कसंगत है । जैन साहित्य में कृष्ण के कपट तथा झूठ को भी जैन दृष्टि से तर्कसंगत तथा सत्य माना जा सकता है जबकि वैदिक दृष्टि से ऐसा नहीं है । वैदिक दृष्टि में कृष्ण के झूठ, कपट, छल इत्यादि को ईश्वर की लीला बताकर न्याय देने का प्रयत्न किया है जबकि जैन परम्परा में श्रीकृष्ण के प्रति खूब औचित्य एवं न्यायपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया गया है । कृष्ण का सत्य, न्याय, नीति, दया इत्यादि "अनुबंध" (परिणाम) के विचार के ऊपर आधारित है । कृष्ण का सत्य जैन परिभाषा के अनुसार अनुबंध सत्य है । कृष्ण के मन में एक ही न्याय, एक ही सत्य,

एक ही राजनीति थी। उनका एक ही उद्देश्य था कि जगत के ऊपर दुष्टों का आधिपत्य समाप्त करना। उसको समाप्त करने के लिए जो कुछ करना पड़े वही सत्य, वही नीति, वही धर्म। जैन शैली धर्म-क्षेत्र में भी अनुबंध सत्य, अनुबंध न्याय, अनुबंध नीति इत्यादि को ही सत्य, न्याय और नीति मानती है। कुरुक्षेत्र की युद्ध-नीति में तथा पापियों का नाश करने में श्रीकृष्ण ने अनुबंध सत्य, न्याय, नीति इत्यादि का विचार करके ही सारे निर्णय लिए तो इसमें कोई नवीनता नहीं है।

अन्त में यह कहना शेष है कि कृष्ण सर्वत्र, समकालीन, सर्वगुणमयी अभिव्यक्ति में उज्ज्वलतम है। वे अपराजेय, अपराजित, विशुद्ध, पुण्यमय, प्रीतिमय, दयामय, अनुष्ठेय, कर्म में अपराङ्मुख, धर्मात्मा, वेदज्ञ, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, लोक-हितैषी, न्यायनिष्ठ, क्षमाशील, निरपेक्ष, ज्ञाता, निर्मम, निरहंकार, योगी, तपस्वी हैं। उन्होंने शक्ति द्वारा निज कर्म का निर्वाह किया, परन्तु उनका चरित्र अतिमानवीय है। इस प्रकार मानवीय शक्ति द्वारा अतिमानवीय चरित्र का विकास होने से उनमें ईश्वरत्व का अनुमान किया जाता है। जैन हिन्दी साहित्य-वैष्णव साहित्य में वर्णित कृष्ण के श्रृंगारी नायक के स्वरूप के विकार से दूर रहा। उसमें कृष्ण एक उदात्त, वीर, एवम् धर्मनिष्ठ नायक के रूप में प्रतिष्ठित रहे। कृष्ण के स्वरूप चित्र की दृष्टि से जैन साहित्य की यह एक ऐतिहासिक देन है।

परिशिष्ट–१

: संदर्भ ग्रन्थ सूची :

संस्कृत (मूल ग्रन्थ) –

१. आदि पुराण : आचार्य जिनसेन–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

२. उत्तर पुराण (महापुराण) : आचार्य गुणभद्राचार्य–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ।

३. उत्तर पुराण : सकलकीर्ति (अप्रकाशित प्रति : उपलब्ध–आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर) ।

४. ऋग्वेद ।

५. ऐतरेय ब्राह्मण ।

६. ऐतरेय आरण्यक ।

७. कृष्ण कथा : प्रतिष्ठा सोम ।

८. छान्दोग्य उपनिषद ।

९. त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित (मूल) : आचार्य हेमचन्द्र ।

१०. नेमिजिन चरित : ब्रह्मनेमिदत्त ।

११. पाण्डव चरित (महाकाव्यम्) : मल्लधारी देवप्रभसूरि ।

१२. पाण्डव पुराण : शुभचन्द्र ।

१३. पाण्डव पुराण : श्रीभूषण (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध दि. जैन मंदिर, जयपुर) ।

१४. प्रद्युम्न चरित : महासेन ।

१५. प्रद्युम्न चरित्र : रत्नचन्द्रमणि (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध दि. जैन मंदिर, जयपुर) ।

१६. प्रद्युम्न रासो : ब्रह्मराय मल्ल (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध – आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर) ।

१७. भगवद् गीता ।

१८. महाभारत ।

१९. श्रीमद्भागवत पुराण ।
२०. शिशुपाल–वध ।
महाकाव्यम् : महाकवि माघ ।
२१. हरिवंश पुराण : वैष्णव पुराण ।
२२. हरिवंश पुराण (जैन) : आचार्य जिनसेन ।
२३. हरिवंश पुराण : ब्रह्मजिनदास (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध–आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर) ।
२४. हरिवंश पुराण : ब्रह्म नेमिदत्त (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध–आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर) ।

प्राकृत, पाली और अपभ्रंश के मूल ग्रन्थ :–

१. अन्तकृद्दशांग (प्राकृत) : आचार्य हस्तीमलजी, म.सा. ।
२. अन्तगड्डदशा : जैन संस्कृति रक्षक संघ, सैलाना ।
३. आवश्यक निर्युक्ति : आचार्य भद्रबाहु ।
४. उत्तराध्ययन सूत्र (प्राकृत) ।
५. कण्ह चरित (कृष्ण चरित्र) : देवेन्दसूरि ।
६. कल्पसूत्र (प्राकृत) : आगम प्रभाकर मुनि पुष्पविजयजी ।
७. चउपन्न महापुरिस चरिय (प्राकृत) : आचार्य शीलांक ।
८. जातक चतुर्थ खण्ड (पालि) ।
९. जातक कथा (पालि) : भदन्त आनन्द कौशल्यायन ।
१०. णेमिणाह चरिउ : लखमदेव (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध दि. जैन मंदिर, पाठोदी) ।
११. णेमिणाह चरिउ (रिट्ठणेमि चरिउ अथवा हरिवंश पुराण : (रइधु, हस्तलिखित प्रतिः उपलब्ध – जैन सिद्धान्त भवन, आरा ।)
१२. तिलोय पण्णति (प्राकृत) ।
१३. निरयावलिका (प्राकृत) ।
१४. पाण्डव पुराण (अपभ्रंश) : यशकीर्ति ।
१५. प्रश्न व्याकरण (प्राकृत) ।
१६. प्रद्युम्न चरित (अपभ्रंश) : महाकवि सिंह (अप्रकाशित प्रतिलिपिः उपलब्ध : आमेर शास्त्र भण्डार ।

१७. भवःभावना (प्राकृत) : मल्लधरी हेमचन्दसूरि ।
१८. रिट्ठणेमि चरिउ (अपभ्रंश) : स्वयंभू (हस्तलिखित) ।
१९. समवायांगसूत्र (प्राकृत) ।
२०. ज्ञाताधर्म कथा (प्राकृत) ।
२१. हरिवंश पुराण : यशकीर्ति (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध दि. जैन मंदिर, जयपुर) ।
२२. हरिवंश पुराण : श्रुतकीर्ति (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर) ।
२३. हरिवंश पुराण : महाकवि धवल, (अप्रकाशित प्रतिः उपलब्ध दि. जैन मंदिर, जयपुर) ।
२४. हरिवंश पुराण (अप्रभंश) : तिसट्ठि महापुरिष्णुणालंकास पुष्पदन्त ।

हिन्दी (मूल ग्रन्थ) :–

१. अरिष्टनेमि चरित्र : काशीनाथ जैन स्वंयमू (हिन्दी अनुवादः डॉ. देवेन्द्रकुमार) ।
२. अरिहन्त अरिष्टनेमि और वासुदेव कृष्ण : श्री चन्द रामपुरिया ।
३. आगम साहित्य का पर्यालोचन : मुनि श्री कन्हैयालाल (कमल) ।
४. उत्तर पुराण : खुशालचन्द काला (हस्तलिखित प्रतिः उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर) ।
५. कृष्ण चरित : चिन्तामणि विनायक वेद ।
६. कृष्ण नीति : सोमनाथ (राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला) ।
७. कृष्ण चरित्र : समुद्रगुप्त ।
८. कृष्ण चरित्र : देवेन्द्र सूरि ।
९. कृष्ण क्रीड़ा काव्य : सोमसुन्दर सूरि ।
१०. कृष्ण सखी गीत : नरसिंह ।
११. गजसुकुमार रास : देवेन्द्र सूरि ।
१२. जैन साहित्य और इतिहास : नाथूराम प्रेमी ।
१३. जैन धर्म : पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री ।
१४. जैन धर्म का मौलिक इतिहास : आचार्य हस्तीमलजी ।

१५. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास : डॉ. गुलाबचन्द्र चौधरी ।
१६. जैन श्रीकृष्ण कथा : राजेन्द्रमुनि शास्त्री ।
१७. त्रिषष्टि जीव महापुरुष वर्णन : बनारसीदास ।
१८. नेमिनाथ चरित्र : काशीनाथ जैन ।
१९. नेमिचन्दिका : मनरंगलाल पालिवाल (हस्तलिखित) ।
२०. नेमिनाथ फागु : जयशंकर सूरि (हस्तलिखित) ।
२१. नेमिश्वर रास : नेमिचन्द्र (हस्तलिखित) ।
२२. नेमिनाथ रास : सुमतिगणि (हस्तलिखित) ।
२३. नेमिनाथ चरित्र : अजयराज पाटनी (हस्तलिखित) ।
२४. नेमिश्वर की बेलि : कवि ठाकुरसी (हस्तलिखित) ।
२५. नेमिश्वर चन्द्रायण : नरेन्द्र कीर्ति (हस्तलिखित) ।
२६. नेमिनाथ चरित्र : अजयराज पाटनी (हस्तलिखित) ।
२७. पाण्डव पुराण : बुलाकीदास ।
२८. परमात्म प्रकाश : दोलतरामजी की हिन्दी टीका ।
२९. पाण्डव यशोरसायन : मुनिश्री मिश्रीमलजी ।
३०. प्राचीन भारत की सभ्यता और संस्कृति : दामोदर धर्मानन्द कौसम्बी ।
३१. प्रद्युम्न चरित : मन्नालाल (हस्तलिखित) ।
३२. प्रद्युम्न रास : ब्रह्मरायमल्ल (हस्तलिखित) ।
३३. प्रद्युम्न प्रबन्ध : देवेन्द्र कीर्ति (हस्तलिखित) ।
३४. प्रद्युम्न चरित : सधारु ।
३५. बलभद्र चौपाई : यशोधर (हस्तलिखित) ।
३६. बलभद्र बेलि : कवि सालिग (हस्तलिखित) ।
३७. भगवान नेमिनाथ और पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण : मुनि चौथमलजी ।
३८. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन देवेन्द्रमुनि शास्त्री ।
३९. शाम्ब प्रद्युम्न रास (हस्तलिखित) ।
४०. हरिवंश पुराणं : शालिवाहन (हस्तलिखित) प्रतिः उपलब्ध आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर ।

४१. हरिवंश पुराण : खुशालचन्द काला (हस्तलिखित प्रतिः उपलब्ध दि. जैन मंदिर, उदयपुर)।
४२. हिन्दी जैन साहित्य : नेमिचन्द शास्त्री।

हिन्दी (समीक्षा ग्रन्थ) –

१. अपभ्रंश साहित्य : डॉ. हरिवंश कोछड।
२. अतीत का अनावरण : मुनि श्री नथमलजी।
३. अरिष्टनेमि : धीरजलाल टोकरशी शाह।
४. अरिष्टनेमि चरित्र : श्री रत्नप्रेमी सुरि।
५. अथर्ववेद।
६. अमम स्वामी चरित्र : मुनि रत्नसूरि रचित : अनुवादक – भानुचन्द्र विजय।
७. आदिकाल की प्रमाणिक रचनाएं। : डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त।
८. उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन : मुनि नथमलजी।
९. कल्पसूत्र : आगम प्रभाकर मुनि पुष्पविजयजी।
१०. कल्पसूत्र : देवेन्द्रसूरि।
११. कल्पसूत्र कल्प संबोधिका टीका : उपाध्याय विनय विजयजी।
१२. कथाकोष प्रकाश : जिनेश्वर सूरि।
१३. कठोपनिषद।
१४. कान्ह चरित्र : देवेन्द्र सूरि।
१५. कृष्णावतार (भाग–४) : क.मा. मुंशी।
१६. श्रीकृष्णोदय : वेदप्रकाश शर्मा।
१७. कृष्ण चरित्र : बंकिमचन्द।
१८. कृष्ण मेरी दृष्टि में : आचार्य रजनीश।
१९. कृष्णायन : द्वारिकाप्रसाद मिश्र।
२०. कृष्ण प्रसंग : कविराज गोपीनाथ।
२१. कृष्णलीला रास : सदानन्द।
२२. कृष्ण बेलि : पृथ्वीराज राठोड़।
२३. कृष्ण रुक्मिणी बेली : पृथ्वीराज।

२४. गीता रहस्य अथवा कर्मयोग : बाल गंगाधर तिलक ।
२५. चार तीर्थंकर : पं. सुखलालजी सिंघवी ।
२६. चैतन्य चरितामृत : सुबलशायाम ।
२७. चौप्पन महापुरुषौनां चरित्रो : (अनुवाद) आचार्य हेमसागर ।
२८. छान्दोग्य उपनिषद : पं. सुखलालजी सिंघवी ।
२९. जैन साहित्य का इतिहास : पूर्व पीठिका : पं. कैलाशचन्दजी ।
३०. जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज : डॉ. जगदीशचन्द्र जैन ।
३१. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास : कथा साहित्य, काव्य साहित्य वोल्यूम ६, ७ (पार्श्वनाथ विद्याआश्रम, बनारस) ।
३२. नेमि चरित्र : कवि विक्रम ।
३३. पद्म पुराण
३४. प्राकृत साहित्य : जगदीशचन्द्र जैन ।
३५. ब्रह्मवैवर्त पुराण ।
३६. ब्रह्माण्ड पुराण ।
३७. भगवत गीता : परिचयात्मक निबंध डॉ. राधाकृष्णन ।
३८. भविष्य पुराण ।
३९. भारतीय संस्कृति और अहिंसा : धर्मानन्द कौसाम्बी ।
४०. महाभारत कथा : चक्रवर्ती राज गोपालाचार्य ।
४१. मध्यकालीन धर्म–साधना : डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ।
४२. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति : गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ।
४३. महाभारत के प्रेरणा प्रदीप चरित्र : उपाध्याय श्री पुष्कर मुनि ।
४४. महाभारत परिचय ग्रन्थ : गीताप्रेस, गोरखपुर ।
४५. मीरां की प्रेम साधना : भुवनेश्वरनाथ मिश्र ।
४६. भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य : भगीरथ मिश्र ।
४७. भारतीय संस्कृति को जैन धर्म का योगदान : डॉ. हीरालाल जैन ।

४८. रइधु साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन : डॉ. राजाराम जैन ।
४९. राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्यः रामचन्द्र शुक्ल ।
५०. राजस्थानी वेलि साहित्य : डॉ. नरेन्द्र भानावत ।
५१. रीतिकालीन हिन्दी जैन काव्य : डॉ. किरन जैन ।
५२. लघु त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र : श्री मेघविजयजी ।
५३. वसुदेव हिण्डी (भाग १, २) : पुष्पविजयजी ।
५४. वसुदेव हिण्डी : डॉ. भोगीलाल सांडेसरा ।
५५. वायुपुराणं ।
५६. वासुदेव श्रीकृष्ण अने जैन साहित्य । : प्रो. हीरालाल रसिक्रलाल कापडिया ।
५७. संस्कृत जैन साहित्यनो इतिहास (भाग १, २) । : हीरालाल रसिकदास कापडिया ।
५८. संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला ।
५९. सूर निर्णय : द्वारकादास पारेख ।
६०. स्कन्ध पुराण ।
६१. शिव पुराण ।
६२. हरिवंश पुराण का सांस्कृतिक अध्ययन : श्रीमती वीणापाणि ।
६३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ. रामकुमार वर्मा ।
६४. हिन्दी और मलयालम में कृष्ण भक्ति काव्य : डॉ. भास्करन नायर ।
६५. हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य : डॉ. गोविन्दराम शर्मा ।
६६. हिन्दी के आदि और मध्यकालीन फागु कृतियाँ : संपा. गोविन्द रजनीश ।
६७. हिन्दी रास काव्य : डॉ. हरीश ।

६८. हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ।

विदेशी भाषाओं के समीक्षात्मक ग्रन्थ

१. अर्ली हिस्ट्री आफ दी वैष्णव सेक्ट : बाय राय चौधरी ।
२. रिलीजियन्स आफ इंडिया : हाकिन्स ।
३. वैष्णविज्म-शैविज्म : डॉ. भण्डारकार ।

कोष :

१. अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग-७ : राजेन्द्र सूरि (रतलाम) ।
२. अभिधान चिन्तामणि : हेमचन्द्राचार्य ।
३. भारतीय काव्यशास्त्र कोष : डॉ. नगेन्द्र ।
४. भारतीय काव्यशास्त्र कोष : डॉ. राजवंश ।
५. भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोष : रामचन्द्र पाठक ।
६. साहित्य कोष : धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल, लि. वाराणसी ।
७. हिन्दी विश्वकोष : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
८. प्राकृत प्रोपर नेमस डिक्सनरी : डॉ. एम. एल. मेहता, डॉ. चन्द्राकर ।
९. पालि प्रोपर नेमस डिक्सनरी : मलन साकर ।
१०. जैन कथा रत्नकोष : १३८६ ।

पत्र-पत्रिकाएँ :-

१. कल्याण का कृष्णाक (कल्याण विशेषांक) : गीताप्रेस, गोरखपुर ।
२. श्रीकृष्ण वचनामृतांक : वर्ष ३८, अंक गीता प्रेस, गोरखपुर ।
३. जयवाणी : आचार्य जयमलजी म. सन्मति, ज्ञानपीठ, आगरा ।
४. जैन दर्शन और संस्कृति परिषद शोध पत्र । : जैन श्वे. तेरापंथी महासभा, कलकत्ता ।
५. जिनवाणी (पत्रिका) : सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर ।

नाम : डॉ. श्रीमती प्रीतम सिंघवी

जन्म स्थान : उदयपुर, राजस्थान

शिक्षा : बी. ए. उदयपुर विश्वविद्यालय.
एम. ए. गुजरात विश्वविद्यालय
एन. डब्ल्यू डी. राजस्थान महिला विद्यालय, उदयपुर
पी. एच. डी. गुजरात विश्वविद्यालय अहमदाबाद.

विशेष : अध्ययन एवं शोध-कार्य में विशेष रुचि पिछले दो वर्षों से 'ममता से मोक्ष' विषय पर प्रो. मालवणिया साहब के मार्ग दर्शन में पोस्ट डाक्टरेट कर रही है। इसके उपरान्त खुशालचन्द काला रचित हिन्दी हरिवंश पुराण का सम्पादन भी कर रही है।

Dr. (Smt.) Pritam Singhvi's present study attempts an over-all historical-comparative survey of the Kṛṣṇa-carita in the long Hindu and Jain literary traditions. In the earlier section the main events in Kṛṣṇa's life are summarized on the basis of well-known source-works in Sanskrit and Prakrut. This provides a frame for examining the continuatin of the traditions in the pre-Hindi, Early Hindi and Modern Hindi works in the subject.

The specific value of this latter section lies in presentig a systematic, detailed account of new developments in the Kṛṣṇa-carita traditions.

We can certainly hope that Dr. Singhvi will continu to work in this less explored area and urge her in particular to undetake editing of some unpublished Early Hindi text relating to the Jain Harivansa.

H.C. Bhayani
Hon. Professor, L.D. Institute,
Ahmedabad.